UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

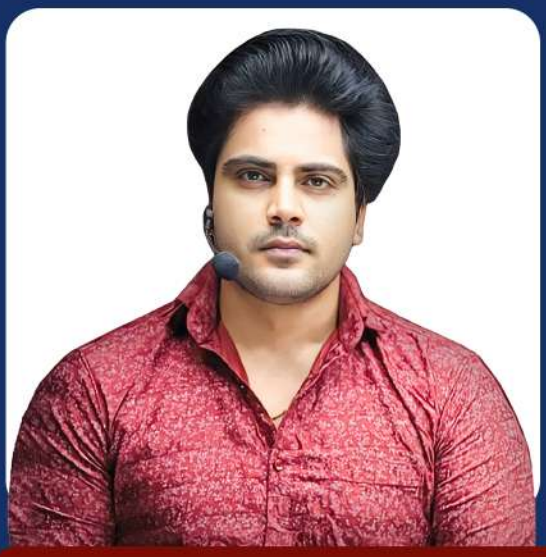

SACHIN CHOUDHARY

About the Author

In the realm of Education, there are rare individuals who not only impart knowledge but also ignite a flame of Ambition and Empowerment within their students. Sachin Choudhary sir stands tall among these luminaries, a Renowned and Experienced teacher.

He has qualified many Government Exams. Not only has he been a part of many government teaching training programs but also a guiding light for his students. Many of his students have cracked numerous Government Exams. A lot of his students are currently working in different Government Departments. As teaching is his passion, his aim has always been to provide quality education with the best content. He believes in hard work and honesty.

CH-1

वैयक्तिक भिन्नता (Individual difference)

वैयक्तिक भिन्नता (Individual differences) –

"गाल्टन (Galton)" के समक्ष से ही व्यक्तिगत भिन्नताओं का अध्ययन आधुनिक मनोविज्ञान (Psychology) का मुख्य अध्ययन क्षेत्र रहा है।

आप अपने आस–पास बहुत से ऐसे लोगों को पाते हैं जो चिंतन (Think) करने, सीखने (Learn) तथा अन्य बहुत से कार्यों को अलग–अलग ढंग से करते हैं। इसका अर्थ है कि सभी लोगों में भिन्नताएँ होती हैं। ऐसा केवल एक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि सभी क्षेत्रों (Fields) में देखने को मिलता है। प्रश्न यह उठता है कि ये भिन्नताएँ कैसे उत्पन्न होती है और कैसे इनका मूल्यांकन किया जाता है।

मनोवैज्ञानिकों (Psychologists) के द्वारा बहुत से मनोवैज्ञानिक गुणों (Qualities) जैसे– बुद्धि (Intelligence), अभिरुचि (Interest), अभिक्षमता (Aptitude), व्यक्तित्व (Personality), मूल्य (Value) आदि को वैयक्तिक भिन्नता (Individual Difference) के अन्तर्गत शामिल किया जाता है।

मानव जीवन में व्यक्तिगत भिन्नताएँ (Individual differences in human life) –

वस्तुओं की तरह ही मनुष्य में भी विविधता (Diversity) पाई जाती है। प्रत्येक व्यक्ति भिन्न–भिन्न विशेषताओं का मिश्रण (Mixture) होता है। कहीं न कहीं इसी भिन्नता के कारण हमारा पर्यावरण हर चीज से भरपूर होता है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से शारीरिक (Physically) विशेषताओं में भिन्न होता है जैसे– ऊँचाई, वजन, रंग इत्यादि। वहीं दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक (Psychological) रूप से भिन्नता पाई जाती है जैसे कोई कम सृजनशील (Creative) है कोई अधिक, कोई कम बुद्धिमान (Intelligent) है कोई अधिक।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का यह मत है कि हमारा व्यवहार (Behaviour) स्थितिपरक (Situation based) कारकों (Factors) से ज्यादा निर्धारित होता है, जिसे स्थितिवाद (Situationism) कहते हैं। अर्थात् किसी भी व्यक्ति का व्यवहार (Behaviour) उसकी परिस्थिति (Situation) या उसकी वर्तमान दशाओं (Condition) से प्रभावित होता है।

उदाहरणार्थ :– आप बहुत लापरवाह हैं और आपको एक आयोजन (Program) कराने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। ऐसी स्थिति में आप एक आयोजक के रूप में जिम्मेदारी से काम करते हैं। इसका तात्पर्य है कि वर्तमान परिस्थिति (Situation) से आप प्रभावित हुए और अपने व्यवहार में परिवर्तन किया।

मनोवैज्ञानिक गुणों का मूल्यांकन (Assessment of Psychological Attributes) –

मनोवैज्ञानिक गुणों को समझने का पहला चरण (Step) है मूल्यांकन (Assessment), जिसके द्वारा मनोवैज्ञानिक गुणों का मापन (Measurement) किया जाता है। मूल्यांकन औपचारिक (Formal) तथा अनौपचारिक (Informal) दो तरीके से होता है। औपचारिक मूल्यांकन (Formal Assessment) मानकीकृत (Standardised), वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा व्यवस्थित (Organised) होता है। इसके लिए मनोवैज्ञानिक को प्रशिक्षित (Trained) भी किया जाता है।

अनौपचारिक मूल्यांकन (Informal Assessment) व्यक्ति से व्यक्ति भिन्न (Person to person varies) होता है अर्थात् जिसका मूल्यांकन किया जाना है तथा जिसके द्वारा किया जाना है इन व्यक्तियों के बदल जाने से यह बदल जाता है।

मूल्यांकन (Assessment) करने के बाद प्राप्त सूचना (Information) के आधार पर उस व्यक्ति विशेष के द्वारा भविष्य में किये जाने वाले व्यवहार (Behaviour) का पूर्वकथन (Assumption) कर सकते हैं। यदि कुछ व्यवहारिक कारण ऐसे हैं जिसमें बदलाव की आवश्यकता है तो उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

मूल्यांकन (Assessment) किस गुण का किया जाना है, यह हमारे उद्देश्य पर निर्भर करता है। जैसे– यदि कोई व्यक्ति अपने परिवार के साथ समायोजन (Adjustment) नहीं कर पा रहा है तो उसके व्यक्तित्व (Personality) के गुणों के मूल्यांकन पर विचार कर सकते हैं। यदि कोई विद्यार्थी (Student) परीक्षा में अच्छा निष्पादन (Performance) नहीं कर पा रहा है तो उसकी बौद्धिक (Intellectual) शक्ति व कमजोरी का मूल्यांकन (Assessment) करना होगा।

यदि आप किसी व्यक्ति का पूर्ण मूल्यांकन करना चाहते हैं तो आपको विभिन्न क्षेत्रों का मूल्यांकन करना होगा जैसे– संज्ञानात्मक (Cognitive), सांवेगिक (Emotional), सामाजिक (Social) आदि।

मनोवैज्ञानिक गुणों के क्षेत्र (Domains of Psychological Attributes) –

मनोवैज्ञानिक गुण सामान्यतया बहुविमात्मक (Multi-dimensional) होते हैं। यदि आप किसी व्यक्ति का पूर्ण मूल्यांकन करना चाहते हैं तो आपको यह मूल्यांकन करना होगा कि वह विभिन्न क्षेत्रों, जैसे– संज्ञानात्मक (Cognitive), सामाजिक (Social) तथा सांवेगिक (Emotional) आदि में कैसा व्यवहार (Behave) या निष्पादन (Performance) करता है।

अब कुछ महत्वपूर्ण गुणों की बात करते हैं जो मनोवैज्ञानिक परीक्षणों (Pshychological tests) पर (Based) आधारित है।

1– बुद्धि (Intelligence) –

बुद्धि (Intelligence) एक क्षमता (Potential) या मानसिक क्षमता (Mental ability) है; जिसके द्वारा हम सोचते हैं, पर्यावरण से समायोजन (Adjustment) करते हैं तथा किसी भी परिस्थिति (Situation) को समझकर उस पर प्रतिक्रिया (React) करते हैं।

बुद्धि (Intelligence) का क्षेत्र व्यापक (Broad) है, इसलिए किसी एक आधार (Base) पर आप किसी की योग्यता (Ability) का आंकलन (Assessment) नहीं कर सकते हैं।

उदाहरणार्थ :– यदि कोई विद्यार्थी पढ़ाई में अच्छा प्रदर्शन (Performance) नहीं करता है तो इसका यह बिल्कुल मतलब नहीं है कि वह अन्य क्षेत्रों (Fields) में भी अच्छा नहीं होगा। वह खेल में या किसी अन्य क्षेत्र में अच्छा हो सकता है।

2– अभिक्षमता (Aptitude) –

अभिक्षमता (Aptitude) का अर्थ है किसी व्यक्ति की किसी कौशल (Skills) को अर्जित (Acquire) करने की योग्यता (Potential)। उस विशिष्ट कौशल (Skill) या क्षेत्र (Field) को जानने के लिए या उसकी योग्यता (Potential) को जाँचने (Test) के लिए अभिक्षमता परीक्षण (Aptitude test) किया जाता है।

जैसे– यदि किसी व्यक्ति की भाषा पर बहुत अच्छी पकड़ (good at) है तो वह एक अच्छे प्रशिक्षण (Training) की मदद से एक अच्छा वक्ता (Speaker) या लेखक (Writer) बन सकता है।

3– अभिरुचि (Interest) –

कोई एक ऐसा विशिष्ट कार्य (Special work) या क्रिया (Activity) जिसको करने में आपको बहुत आनन्द आता है अर्थात् जिसे आप वरीयता (Priority) देते हैं वही कार्य आपकी अभिरुचि (Interest) के अन्तर्गत आता है। यदि हम किसी विद्यार्थी की अभिरुचि (Interest) का मूल्यांकन (Assessment) करते हैं तो हमें यह समझने में मदद मिलती है कि वह विद्यार्थी कौन से विषय में रुचि रखता है। इसी आधार पर पठन–पाठन की योजना बनायी जा सकती है।

4– व्यक्तित्व (Personality) –

किसी व्यक्ति की वह स्थायी विशेषतायें/गुण (Qualities) जो उसे अन्य से भिन्न बनाते हैं। व्यक्ति विशेष के इन गुणों को जानने के लिए व्यक्तित्व परीक्षण (Personality test) किया जाता है।

जैसे– व्यवहार (Behaviour) कैसा है, संचार कौशल (Communication skill) कैसा है, इत्यादि।

इस परीक्षण के द्वारा हम यह पूर्वकथन (Assumption) कर सकते हैं कि वह अपने जीवन में कैसा व्यवहार करेगा।

5– मूल्य (Value) –

मूल्य (Value), किसी व्यक्ति के वह स्थायी विश्वास/विचार होते हैं जो जीवन में व्यवहारों के लिए एक मानक (Standard) निर्धारित करते हैं।

मूल्य परीक्षण (Value test) के माध्यम से व्यक्ति की विशिष्टता (Speciality) का पता लगाया जाता है जैसे– कोई व्यक्ति धार्मिक कार्यों में संलग्न रहता है तो वह धार्मिक मूल्य रखता है। वैसे ही कोई राजनीतिक या सामाजिक (Social) मूल्यों वाला व्यक्ति हो सकता है।

मूल्यांकन की विधियाँ (Assessment Methods) –

मूल्यांकन (Assessment) के लिए अनेक विधियाँ (Methods) प्रयोग किये जाते हैं; उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

1– मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological test) –

व्यक्ति की व्यवहारिक (Behavioural) तथा मानसिक (Mental) विशेषताओं का वस्तुनिष्ठ (Objective) व मानकीकृत (Standardised) मापन (Measure) होता है।

बुद्धि (Intelligence), व्यक्तित्व (Personality) तथा अभिक्षमता (Aptitude) आदि सभी के मापन (Measure) के लिए वस्तुनिष्ठ (Objective) परीक्षण (Test) किये जाते हैं। इन परीक्षणों (Tests) का उपयोग क्लिनिकल निदान (Clinical diagnosis), निर्देशन (Guidance), कार्मिक चयन (Personnel selection), स्थानन (Placement) तथा प्रशिक्षण (Training) में किया जाता है।

2– साक्षात्कार (Interview) –

इस परीक्षण (Test) में वार्तालाप (One-to-one) द्वारा या प्रश्न–उत्तर वार्तालाप द्वारा सूचनाएँ (Information) इकत्र की जाती हैं।

जैसे– जब कोई विक्रेता (Salesperson) घर–घर जाकर किसी उत्पाद। वस्तु (Product) की उपयोगिता (Usefulness) के संबंध में सर्वेक्षण (Survey) करता है।

जब कोई पत्रकार (Journalist) राष्ट्रीय (National) या अंतर्राष्ट्रीय (International) महत्व के विषयों (Subject) पर महत्वपूर्ण व्यक्तियों का साक्षात्कार (Interview) करता है।

3– व्यक्ति अध्ययन (Case Study) –

किसी भी व्यक्ति का गहनता (Indepth) से अध्ययन (Study), व्यक्ति अध्ययन (Case study) कहलाता है। इसमें व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक गुणों (Psychological attributes), मनोसामाजिक (Pshchosocial) व भौतिक पर्यावरण (Physical environment) के संदर्भ (Context) में उसके मनोवैज्ञानिक इतिहास (Psychological history) का अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति अध्ययन (Case study) में विभिन्न विधियों जैसे– साक्षात्कार (Interview), प्रेक्षण (Observation), प्रश्नावली (Questionnaire) व मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psycha) का उपयोग करके सूचना एकत्र की जाती है।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

4– प्रेक्षण (Observation) –

इसमें व्यक्ति के विभिन्न परिस्थितियों (Situation) में दिखने वाले व्यवहार (Behaviour) का व्यवस्थित (Systematic), संगठित (Organised) तथा वस्तुनिष्ठ (Objective) अध्ययन किया जाता है।

मातृ–शिशु अंतः क्रिया (Mother child interaction) का अध्ययन, इस प्रणाली द्वारा आसानी से किया जा सकता है।

याद रहे इस प्रणाली में प्रेक्षण (Observation) करने वाले प्रेक्षक (Observation) का बहुत कम नियंत्रक (Control) होता है।

5– आत्म प्रतिवेदन (Self-report) –

इस विधि में व्यक्ति स्वयं अपने व्यवहार (Behaviour), विश्वास (Beliefs) आदि के बारे में सूचनाएँ एकत्र करता है। इन सूचनाओं के किसी साक्षात्कार (Interview) या प्रश्नावली (Questionnaire) आदि के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

मानव व्यवहार में यदि व्यक्तिगत भिन्नताओं (Individual Difference) की बात करें तो वह बहुत से गुणों (Qualities) पर निर्भर करती हैं जिनमें से बहुत से महत्वपूर्ण कारक (Intelligence)।

बात करते हैं बुद्धि (Intelligence) के गुणों/अवधारणा (Concept) के बारे में।

बुद्धि (Intelligence)

यदि हम कुछ व्यक्तियों की भिन्नता के बारे में जानना चाहते हैं तो उसे जानने के लिए बुद्धि (Intelligence) सबसे महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। बुद्धि पारस्परिक भिन्नता को जानने का सबसे बेहतरीन कारक है।

बुद्धि क्या है? (What is intelligence) –

साधारण भाषा में किसी को जानने/समझने की क्षमता, चाहे वह कोई व्यक्ति/वस्तु हो या फिर कोई परिस्थिति।

जिसके द्वारा भी आप सीखते हैं (Learning) समझते हैं (Understanding), जानते हैं (Knowing) तथा प्रेक्षण (Observation) करते हैं, उसे बुद्धि (Intelligence) कहा जाता है। बुद्धि की क्षमता (Capacity) के अनुसार ही आप स्वयं को परिस्थिति (Situation) व पर्यावरण (Environment) के अनुकूल बनाते हैं।

"अल्फ्रेड बिने (Alfred Binet)" उन मनोवैज्ञानिकों (Psychologists) में से एक हैं जिन्होंने सर्वप्रथम बुद्धि के गुणों को परिभाषित किया। उनके अनुसार बुद्धि (Intelligence) एक योग्यता (Ability) है– तर्क (Arguement) करने की, बोध (Understand) करने की, निर्णय लेने की (Decision making)। इसे ही एक–कारक सिद्धांत (One factor theory) भी कहा जाता है।

वहीं बुद्धि परीक्षण (Intelligence test) के जनक "वेश्लर (Weshler)" का मत है कि पर्यावरण से अनुकूलन किस प्रकार करना है यह आपकी बुद्धि पर निर्भर करता है। वह बुद्धि को व्यक्ति की समग्र क्षमता (Capacity) बताते हुए कहते हैं कि बुद्धिमान व्यक्ति विवेक से सोचते हैं और पर्यावरण (Environment) के अनुरुप (Aceording) व्यवहार करते हैं।

"गार्डनर (Gardner)" & "स्टर्नबर्ग (Sternberg)" के अनुसार, एक बुद्धिमान व्यक्ति न केवल पर्यावरण को अपनाता है बल्कि उसमें समय व आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन भी करता है।

बुद्धिमान व्यक्ति के गुण (Attributes of an intelligent person) –

- ❖ एक बुद्धिमान व्यक्ति सदैव मानसिक रूप से (Mentally) सतर्क (Alert) रहता है।
- ❖ शीघ्र सीखने की क्षमता व योग्यता रखता है।
- ❖ किसी भी तथ्य (Point) को आसानी से समझकर उस पर प्रतिक्रिया (Reaction) देता है।
- ❖ बुद्धिमान व्यक्ति तथ्यों (Points/facts) को तार्किक रूप से सोचता है।
- ❖ वह परिस्थिति को समझकर ही निर्णय (क्मबपेपवद) लेता है।

बुद्धि के सिद्धांत (Theories of Intelligence) –

यह जानने के लिए कि बुद्धि एक एकल योग्यता है या बहुल योग्यताएं इसमें है, क्या बुद्धि का केवल एक प्रकार है या बुद्धि के कई प्रकार होते हैं, काफी प्रयास किये गये हैं। इन प्रयासों ने बुद्धि (Intelligence) के विभिन्न सिद्धांतों के विकास को दिशा दिखाई है। बुद्धि का अध्ययन करने के लिए मुख्य रूप से तीन उपागम या सिद्धांत (Theories) हैं–

(1) मनोमितिक/संरचनात्मक उपागम (Psychometric approach)
(2) सूचना प्रक्रमण उपागम (Informatioj processing approach)
(3) संज्ञानात्मक विकास उपागम (Cognitive development approach)

(1) मनोमितिक/संरचनात्मक उपागम (Psychometric approach)––

इस प्रकार में बुद्धि को बहुत सी योग्यताओं (Abilities) का एक समुच्चय (Set) माना गया है अर्थात् बुद्धि अपने आप में बहुत से अन्य गुणों/क्षमताओं का मिश्रण है।

कोई व्यक्ति अपनी बहुत सी abilities को use करके एक निष्कर्ष पर पहुँचता है और यह पूरा process, निष्पादन (Performance) कहलाता है।

इसके अन्तर्गत "चार्ल्स स्पीयरमैन" का द्विकारक सिद्धांत (Charles Spearman's two factor theory), थर्सटोन का प्राथमिक मानसिक योग्यताएं (Thurstone's theory of primary mental abilities), "गिलफोड" का कारक विश्लेषण पर आधारित बुद्धि संरचना मॉडल (Guilford's structure of intellect model) व "गार्डनर" का बहु–बुद्धि सिद्धांत (Gardner's multiple intelligence theory) सभी सिद्धांत शामिल हैं।

(2) सूचना प्रक्रमण उपागम (Information processing approach)––

यह उपागम किसी व्यक्ति विशेष की समस्या समाधान (Problem solving) तथा तार्किक (Argument) रूप से की गई प्रक्रिया होती है।

इसमें "रॉबर्ट स्टर्नबर्ग" का त्रिचापीय सिद्धांत (Sternberg's triarchic theory) तथा "जे0पी0 दास" का Pass (Planning, attention, simultaneous & successive) मॉडल शामिल हैं।

(3) संज्ञानात्मक विकास उपागम (Psychometric approach)––

संज्ञानात्मक उपागम बुद्धि के क्रियात्मक महत्व एवं विकास पर बल देता है। "जीन पियाजे" का बुद्धि का सिद्धांत (Jean Piaget's intelligence theory) बुद्धि का अध्ययन करने के लिए सर्वाधिक सशक्त संज्ञानात्मक विकासात्मक उपागम (Cognitive development approach) है।

(1) स्पीयरमैन का बुद्धि द्विकारक सिद्धांत (Two-factor theory Spearman)––

यह कारक विश्लेषण (Analysis) की सांख्यिकीय विधि (Statistical Method) पर आधारित था। उन्होंने बताया कि बुद्धि के अंतर्गत एक सामान्य कारक (g-factor)

(g-general) तथा कुछ विशिष्ट कारक (S-factor) (S-specific) होते हैं। सा–कारक के अन्तर्गत वे सभी मानसिक क्रियायें (Mental activity) होती हैं जो प्राथमिक (Primary) हैं और जिनका प्रभाव सभी प्रकार के कार्यों के निष्पादन (Performance) पर पड़ता है। उन्होंने बताया कि प्रत्येक व्यक्ति में सा–कारक (g-factor) के साथ–साथ कई विशिष्ट योग्यताएं (Specific abilities) भी होती हैं। इन्हीं विशिष्ट योग्यताओं को उन्होंने वि–कारक (S-factor) कहा।

"स्पीयरमैन" ने अपनी किताब "The abilities of man" में बताया कि सभी बौद्धिक गतिविधियाँ (Intellectual activities) एक एकल (Single) सामान्य कारक साझा करती है जो एक व्यक्ति के द्वारा अपने जीवन में की जाने वाले सभी गतिविधियों में रहता है। स्पीयरमैन ने इस सामान्य कारक (g-factor) को मानसिक शक्ति (Mental power) कहा है जो जन्मजात (By birth) होता है।

g-factor व्यक्ति का ही एक हिस्सा है कि वे कौन हैं। लोग विविध स्तरों की सामान्य बुद्धि (General intelligence) रखते हैं। इस सामान्य बुद्धि के आधार पर हम एक व्यक्ति को मंद बुद्धि या बुद्धिमान कहते हैं। यह 'g' किसी भी बुद्धि परीक्षण (Intelligence test) में एक व्यक्ति के अंकों के लिए प्रमुख निर्धारक है। S-factor विभिन्न योग्यताओं (abilities) के लिए विशिष्ट होता है। जैसे– गणित का परीक्षण (Math's test), स्थानिक संबंध (Spatial relation), मौखिक प्रवाह (Verbal flow), इन बुद्धियों में से प्रत्येक एक अलग S की माप करते हैं अर्थात् अपनी विशिष्टतायें रखते हैं।

किसी व्यक्ति का स्थानिक बुद्धि परीक्षण (Spatial inteligence test) में प्रदर्शन उस व्यक्ति की सामान्य बुद्धि (g) तथा स्थानिक योग्यता (Specific ability) के मेल से प्रदर्शित होगा।

नोट :– "स्पीयरमैन" ने सामान्य बुद्धि पर अधिक बल दिया, इसी कारण इन्हें विरोध का सामना करना पड़ा।

(2) थर्सटोन का बुद्धि का सिद्धांत (Thurstone's theory of Intelligence)––

इसे प्राथमिक मानसिक योग्यताओं का सिद्धांत (Theory of Primary mental abilities) भी कहा जाता है। थर्सटोन ने कहा कि बुद्धि सात विशिष्ट प्राथमिक मानसिक योग्यताओं (PMA- Primary mental abilities) का एक संयोजन है। वे सात कारक निम्नलिखित हैं:–

(1) आगमनात्मक तर्कना (Inductive Reasoning) – यह कारक दी गई सूचना से सामान्य नियमों व सिद्धांतों को पाने की योग्यता (Ability) है।

(2) स्मृति (Memory) – यह याद रखने व स्मरण करने की योग्यता है। जैसे– घटनाएँ (Incident), तारीख (Date), फॉर्मूला आदि।

(3) संख्यात्मक योग्यता (Numerical ability) – यह अंकगणित की समस्याओं को हल करने की योग्यता है। यह आपकी इस योग्यता को बताता है कि किस प्रकार आप शीघ्रता (Fast) एवं सटीकता (Accuracy) के साथ अंकों का प्रयोग करके गणितीय समस्याओं का उत्तर देते हैं।

(4) प्रात्यक्षिक गति (Perceptual Speed) – यह देखकर वस्तुओं के बीच विभिन्नताओं व समानताओं को देखकर प्रात्यक्षिक विवरणों (Perceptual data) को शीघ्रता एवं सटीकता (Accuracy) से समझने तथा ग्रहण करने की योग्यता है।

प्रात्यक्षिक विवरण अर्थात् एक निर्धारित समय में जो विवरण आपके सामने है।

(5) स्थानिक/देशिक संबंध (Spatial relation) – यह संबंध को समझने की योग्यता है। यह विभिन्न रेखागणित तरीकों (Geometrical Methods), स्वरूपों तथा अतंराल में काल्पनिक पदार्थों को देखने एवं कुशलतापूर्वक प्रयोग करने की क्षमता है।

(6) **वाचिक बोध (Verbal understanding)** – यह पढ़ने की समझ–बूझ, शब्दों, संप्रत्ययों (Concepts) तथा विचारों को परिभाषित करना व समझना एवं मौखिक तर्क (Verbal argument) की योग्यता है।

(7) **शब्द प्रवाह (Word flow)** – यह शब्दों को शीघ्रता से उत्पन्न करने जैसे उच्चारण करने, शब्द समस्याओं को शीघ्र हल करने की योग्यता है। शब्दों के चयन में शीघ्रता व प्रवाह के साथ उपयोग करने की योग्यता।

नोट :– "थर्सटोन" का मत है कि यह सभी 7 कारक एक–दूसरे से स्वतंत्र हैं। वे एकल बुद्धि–लब्धि (IQ) के बजाय व्यक्ति के लिए एक संज्ञात्मक योग्यता प्रोफाइल को प्रस्तावित करते हैं।

गिलफोर्ड का बुद्धि–संरचना का सिद्धांत (Guilford's Intelligence Structure Theory)––

"गिलफोर्ड" का मानना था कि बुद्धि बहु गतिविधियों का एक संयोजन है। यह मॉडल कारक विश्लेषण पर आधारित था। उन्होंने कुल 180 कारकों के साथ मॉडल प्रस्तावित किया था। यह मॉडल एक 'क्यूब' की तरह प्रस्तुत किया गया जिसमें हर एक साइड में एक आयाम (5x6x6 =180 विशिष्ट योग्यताएं) हैं।

इस मॉडल में सभी मानसिक योग्यताओं को तीन आयामों में व्यवस्थित किया गया– विषयवस्तु (Content), संक्रिया (Operation) व उत्पाद (Product)।

विषयवस्तु आयाम, जिसमें सूचना का विस्तृत क्षेत्र शामिल है; संक्रिया आयाम, जिसमें सामान्य संज्ञानात्मक (Cognitive) या मानसिक योग्यताएं शामिल हैं। उत्पाद आयाम जिसमें विशिष्ट विषयवस्तु के लिए प्रयोग किये गये विशेष संक्रिया का परिणाम शामिल है।

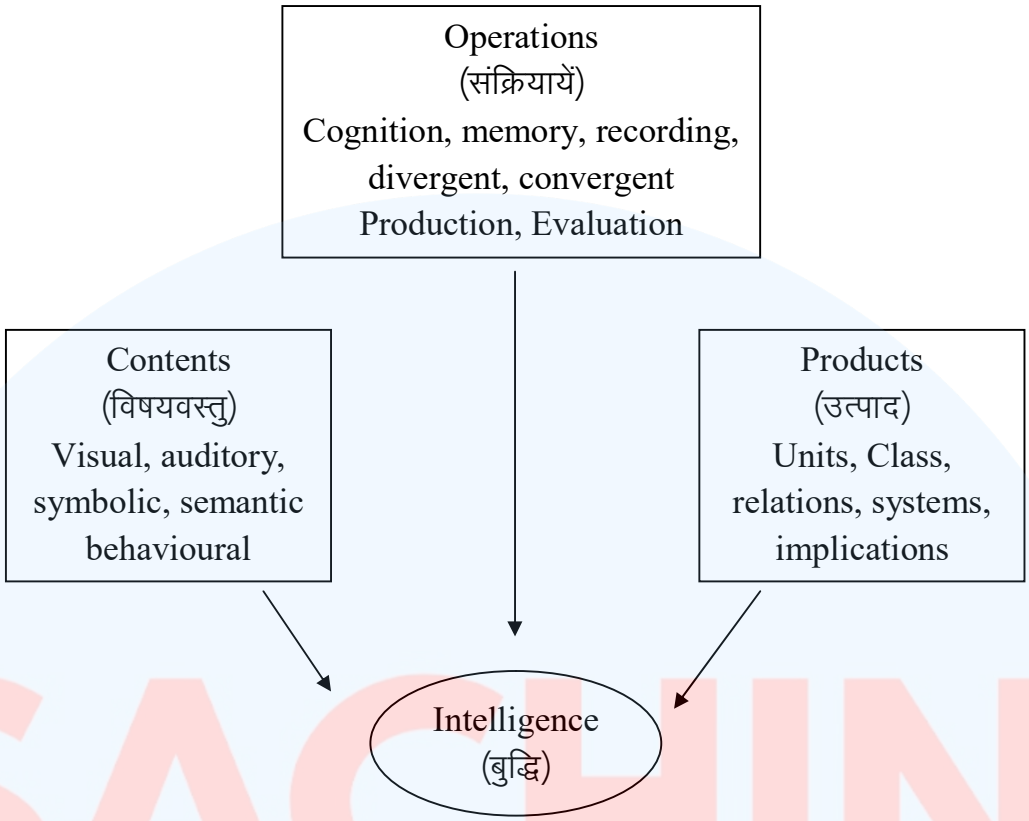

(1) विषय वस्तु आयामा (Content dimension)––

इसमें सूचना के विस्तृत (large) क्षेत्र शामिल हैं जिसमें मानव बौद्धिक संक्रियाओं (Intellectual operation) का अनुप्रयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत पाँच श्रेणियाँ आती हैं–

(1) चाक्षुष (Optic) –

देखने के द्वारा ग्रहण की गई सूचना या एक प्रतिक्रिया (Reaction) के रूप में रेटिना के उद्दीपन (Stimulation) से उत्पन्न होने वाली सूचना।

(2) श्रवणात्मक (Auditory) –

सुनने के द्वारा ग्रहण की गई सूचना या आंतरिक कान के कोक्लिया (Cochlea) के उद्दीपन से एक ध्वनि के रूप में उत्पन्न सूचना।

(3) प्रतिकात्मक (Symbolic) –

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

प्रतीक या चिन्ह के रूप में ग्रहण की गई वह सूचना जो किसी अन्य के लिए होती है, उनका स्वयं में कोई अर्थ नहीं होता है।

जैसे– अरबी संख्याएं, वर्णमाला के अक्षर आदि।

(4) अर्थ विषयक (Meaningful) –

विचारों तथा मौखिक अर्थ से संबंधित है। जिस किसी विषय के बारे में आप सोच रहे हैं या बोल रहे हैं, उसके अर्थ से संबंधित है।

(5) व्यवहारात्मक (Behavioral) –

लोगों के कार्य या व्यवहार के रूप में ग्रहण की गई सूचना इसके अंतर्गत आती हैं। इसका मुख्य कारक व्यवहार है।

(2) संक्रिया (Operational dimension)––

संक्रिया का तात्पर्य बुद्धि द्वारा की जाने वाली क्रियाओं से है। इसके अंतर्गत छः बौद्धिक प्रक्रियाएं शामिल हैं–

(1) संज्ञान (Cognition) –

सूचना को समझने, बोध करने (Understanding), खोजने व जागरूक (aware) होने की योग्यता।

(2) स्मृति अभिलेखन (Memory recording) –

सूचना को संकेतिक शब्दों में बदलने की योग्यता है। प्राप्त सूचना को समझकर उसे बौद्धिक रूप से संकेतों में बदलते हैं।

(3) स्मृति प्रतिधारण (Memory Retention) –

प्राप्त सूचना को याद/स्मरण करने की योग्यता।

(4) अपसारी उत्पादन (Divergent Production) –

एक समस्या के लिए अनेक समाधान उत्पन्न करने की योग्यता या सृजनात्मकता (Creativity) समस्या को कई पहलुओं से समझकर उसके परिणाम/हल तक पहुँचना।

(5) अभिसारी उत्पादन (Convergent Production) –

एक समस्या का एक ही तरीके से समाधान निकालना। किसी एक ही नियम का पालन करते हुए समस्या समाधान करना।

(6) मूल्यांकन (Evaluation) –

यह निर्णय लेना कि प्राप्त सूचना सटीक, संगत (relevant) या वैध है कि नहीं। प्राप्त सूचना के सभी तथ्यों को परख कर निर्णय लेना।

(2) उत्पाद आयाम (Product dimension)––

उत्पाद का अर्थ उस स्वरूप से होता है जिसमें व्यक्ति सूचनाओं का प्रक्रमण (Process) करता है। इसमें 6 प्रकार के उत्पाद होते हैं–

(1) इकाई (Unit) –

यह सूचना या ज्ञान की एक ही वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है।

(2) वर्ग (Group) –

यह कुछ सामान्य विशेषताओं/गुणों को साझा करने वाले आइटम का एक सेट (set) है।

(3) संबंध (Relation) –

वस्तुओं या चर (variable) के बीच एक संबंध का प्रतिनिधित्व करता है– जो कि विपरीत, संयोजन या समरूपता हो सकता है।

(4) **व्यवस्था (Arrangement) –**

सहभागिता वाले भागों के साथ नेटवर्क या क्षेत्र का एक संगठन या व्यवस्था।

(5) **रूपांतरण (Conversion) –**

दृष्टिकोण में परिवर्तन से नया ज्ञान सृजन करना जैसे– किसी शब्द में अक्षरों के क्रम को उलट देना।

(6) **निहितार्थ (Implication) –**

यह ज्ञान से भविष्यवाणी, निष्कर्ष, परिणाम को सूचित करता है।

कैटेल का बुद्धि का सिद्धांत (Cattell's theory of intelligence)––

"कैटेल" ने बताया कि दो प्रकार की बुद्धि 'G' की रचना करती है– फ्ल्यूडड बुद्धि (Gf) general fluid व क्रिस्टलाइज्ड बुद्धि (General Crystallized) फ्ल्यूड बुद्धि अमूर्त व तार्किक चिन्तन की योग्यता से संबंधित है, जिसमें किसी पूर्व ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है। यह एक नवीन समस्या विश्लेषण करने, संबंध व तरीके का ग्रहण करने, जो समस्या का आधार होता है तथा तर्क का प्रयोग करते हुए इसका समाधान करना। जीवन प्रारंभिक में यह तेजी से बढ़ता है परन्तु फ्ल्यूड बुद्धि के जीवन के बाद के वर्षों में कम होने की प्रवृत्ति होती है। इसे पहेली हल करने, ब्लाक डिजाइन तथा स्पानिक (Spatial) दृश्यीकरण के द्वारा मापा जाता है। 'दि कैटेल कल्चर फेयर आई क्यू टेस्टस' तथा 'दि रैवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज Gf के माप हैं।'

फ्ल्यूड बुद्धि की तुलना में जो कि अधिक आनुवंशिक है, क्रिस्टलाइज्ड बुद्धि (Gc), पहले के अधिगम व अनुभव पर निर्भर होती है और यह अर्जित की जाती है। इस प्रकार Gc उम्र व अनुभव के साथ बढ़ती है तथा Gf धीरे–धीरे कम होती है।

क्रिस्टलाइज्ड बुद्धि (Gc) उस ज्ञान से संबंधित है जिसे व्यक्ति अधिगम, पूर्व अनुभव, संस्कृति के द्वारा प्राप्त करता है तथा उस अर्जित ज्ञान को प्रयोग करने की

योग्यता रखता है। यह उम्र के साथ बदलती है। जितना अधिक ज्ञान आप अर्जित करेंगे, यह उतनी ही सशक्त होगी। सामान्य ज्ञान के परीक्षण, भाषा का प्रयोग द्वारा इसे मापा जा सकता है।

गार्डनर का बहु–बुद्धि का सिद्धांत (Gardner's multiple intelligence theory)––

"गार्डनर" के अनुसार, बुद्धि कोई एक तत्व नहीं है बल्कि कई भिन्न–भिन्न प्रकार की बुद्धियों का अस्तित्व होता है। प्रत्येक बुद्धि एक दूसरे से स्वतंत्र रहकर कार्य करती है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति में किसी एक बुद्धि की मात्रा अधिक हो ता यह अनिवार्य रूप से इसका संकेत नहीं है कि उस व्यक्ति में किसी अन्य प्रकार की बुद्धि भी अधिक होगी, कम होगी या कितनी होगी।

"गार्डनर" ने यह भी बताया कि किसी समस्या का समाधान खोजने के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की बुद्धियाँ आपस में अंतः क्रिया (Interworking) करते हुए साथ–साथ कार्य करती हैं। हम सब विशिष्ट रूप में प्रतिभाशाली हैं अतः हम नहीं कह सकते कि एक व्यक्ति अधिक बुद्धिमान है तथा दूसरा व्यक्ति कम बुद्धिमान है। उदाहरण के लिए एक विशेष समाज में एक प्रकार के बुद्धि को उच्च महत्व दिया जाता है जबकि दूसरे समाज में इसका महत्व कम हो सकता है।

"गार्डनर" के प्रस्तावित नौ प्रकार की बुद्धि के बारे में चर्चा करते है–

(1) भाषागत बुद्धि (Linguistic)
(2) तार्किक गणितीय बुद्धि (Logical-mathematical)
(3) संगीतात्मक बुद्धि (Musical)
(4) शारीरिक गतिसवेदी (Bodily-kinesthetic)
(5) देशिक बुद्धि (Spatial)
(6) अंतर्वेयक्तिक बुद्धि (Interpersonal)
(7) अंतः वैयक्तिक बुद्धि (Intra personal)

(8) **प्रकृतिवादी बुद्धि (Naturalistic)**

(9) **अस्तित्वपरक बुद्धि (Existential)**

(1) भाषागत बुद्धि (Linguistic) –

यह अपने विचारों को प्रकट करने तथा दूसरों के विचारों को समझने हेतु प्रवाह (Fluently) तथा नम्यता (Flexibly) के साथ भाषा का उपयोग करने की क्षमता है। जिन व्यक्तियों में यह बुद्धि अधिक होती है वे 'शब्द कुशल' होते हैं। लेखकों, शिक्षकों तथा कवियों में यह बुद्धि अधिक मात्रा में होती है।

(2) तार्किक गणितीय बुद्धि (Logical-mathematical) –

इस प्रकार की बुद्धि की अधिक मात्रा रखने वाले व्यक्ति तार्किक (Argument) तथा आलोचनात्मक (Critical) चिंतन कर सकते हैं। वे अमूर्त चिन्तन कर सकते हैं। गणितीय समस्याओं के हल के लिए प्रतीकों (Symbol) का बहुत अच्छी तरह से उपयोग कर लेते हैं। इस प्रकार की बुद्धि आमतौर पर वैज्ञानिकों आदि में पाई जाती है।

(3) संगीतात्मक बुद्धि (Musical) –

सांगीतिक अभिरचनाओं को उल्लंघन करने, उनका सृजन करने की क्षमता। स्वर, लय, ताल की इन्हें बहुत अच्छी समझ होती है। यह बुद्धि गायकों व नर्तकों में आमतौर पर अधिक होती है।

(4) शारीरिक–गतिसंवेदी बुद्धि (Bodily-kinaesthetic) –

किसी वस्तु या उत्पाद के निर्माण के लिए या मात्र शारीरिक प्रदर्शन के लिए सम्पूर्ण शरीर या किसी एक या एक से अधिक अंग का उपयोग करने की क्षमता। नर्तक, धावक, खिलाड़ी आदि में इस बुद्धि की अधिक मात्रा पाई जाती है।

(5) देशिक (Spatial) बुद्धि –

यह मानसिक बिंबो (mental images) को बनाने, उपयोग करने तथा उनमें परिमार्जन (transform) करने की योग्यता है। विमान चालक, नाविक, चित्रकार, मूर्तिकार आदि में यह बुद्धि अधिक होती है।

(6) अंतर्वेयक्तिक बुद्धि (Interpersonal) –

यह दूसरे व्यक्तियों के उद्देश्यों, इच्छाओं, भावनाओं तथा व्यवहारों का सही बोध करते हुए उनकेसाथ अच्छे संबंध बनाने की योग्यता है। मनोवैज्ञानिक, डॉक्टर, नेता आदि में यह बुद्धि अधिक पाई जाती है।

(7) शारीरिक–गतिसंवेदी बुद्धि (Bodily-kinaesthetic) –

इस बुद्धि के अंतर्गत व्यक्ति को अपने गुणों व कमजोरियों का ज्ञान और उस ज्ञान का दूसरों व्यक्तियों के साथ सामाजिक अंतः क्रिया में उपयोग करने की योग्यता है। दार्शनिक (Philosopheres), आध्यात्मिक गुरु (Spiritual leader) में इस प्रकार की बुद्धि देखने को मिलती है।

(8) प्रकृतिवादी बुद्धि (Naturalistic) –

यह बुद्धि बताती है कि पर्यावरण को हम कितना जानते हैं अर्थात् पर्यावरण से बहुत गहरा संबंध। विभिन्न पशु–पक्षियों व वनस्पतियों के सौंदर्य का बोध करने में यह बुद्धि सहायक होती है। किसान, पक्षी विज्ञानी, शिकारी आदि में यह बुद्धि अधिक मात्रा में होती है।

(9) अस्तित्वपरक बुद्धि (Existential) –

यह नौवीं बुद्धि है। यह मानव अस्तित्व के बारे में, व्यक्ति के जीवन के अर्थ से परे गहन प्रश्नों जैसे, मृत्यु के बाद क्या होता है, हम दुनिया में क्यूँ आते हैं इत्यादि को सामना करने की संवेदनाशीलता और क्षमता से संबंधित है। ब्रह्माण्ड विज्ञानी तथा दार्शनिक, बुद्धि के इस पहलू में उच्च स्तरीय होते हैं।

नोट –

इस सिद्धांत को एक प्रयोगात्मक कार्यक्रम में प्रयोग किया गया जिसे वर्णक्रम परियोजना (Project spectrum) – (1984–1993) कहा गया।

स्टर्नबर्ग का बुद्धि का त्रिचापीय सिद्धांत (Sternberg's triarchic theory of intelligence)–

1985 में यह सिद्धांत प्रस्तुत किया गया। इसके अनुसार 'बुद्धि वह योग्यता है जिससे व्यक्ति अपने पर्यावरण के प्रति अनुकूलित (adopt) होता है, अपने व अपने समाज और संस्कृति के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पर्यावरण के कुछ पक्षों का चयन करता है व उन्हें परिवर्तित करता है।

"स्टनबर्ग" ने 'बुद्धि' के त्रिचापीय सिद्धांत की संरचना की जो बताती है कि तीन प्रकार की बुद्धि है।

(1) घटकीय / विश्लेषणीय बुद्धि (Componential)

(2) अनुभवजनित / सृजनात्मक बुद्धि (Experiential)

(3) संदर्भीय / प्रायोगिक बुद्धि (Contextual)

त्रिचापीय सिद्धांत

घटकीय उपसिद्धांत	आनुभाविक उपसिद्धांत	सांदर्भिक उपसिद्धांत
• अधिघटक	• नवीनता	• अनुकूलन
• प्रदर्शन	• स्वचालन	• चयन
• ज्ञान अर्जन		• आकार देना

(1) घटकीय बुद्धि (Componential intelligence)–

इस बुद्धि के अन्तर्गत व्यक्ति किसी समस्या का समाधान करने के लिए प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करता है। यह शैक्षिक उपलब्धि से अधिक संबंधित है। इस बुद्धि के तीन घटक होते हैं– पहला घटक **अधिघटक**, जिसके द्वारा व्यक्ति योजनाएँ बनाता है कि उसको क्या करना है, कैसे करना है। इसमें अवधान (Attention), कोडिंग, स्मरणशक्ति आदि का प्रयोग होता है। ज्ञान अर्जन घटक, ज्ञान का अर्जन करते हैं और विभिन्न रणनीतियों का प्रयोग करने में सहायता करते हैं।

(2) प्रयोगात्मक बुद्धि (Experiential)–

वह बुद्धि जिसके द्वारा व्यक्ति किसी नई समस्या के समाधान हेतु अपने पूर्व अनुभवों का सृजनात्मक रूप से उपयोग करता है। इसमें दो घटक शामिल है– स्वचालन और नवीनता। स्वचालन का अर्थ है कि सूचना प्रक्रिया के कुछ पहलू स्वचालित होते हैं, उन्हें अत्यधिक प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। यह व्यक्ति को नवीन विचारों को लाने में संज्ञानात्मक संशोधनों (Amendment) का प्रयोगकरने के योग्य बनाता है।

(3) सांदर्भिक बुद्धि (Contextual intelligence)–

वह बुद्धि जिसके द्वारा व्यक्ति अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन में आने वाली पर्यावरणी माँगों से निपटता है। यह जीवन में प्रभावपूर्ण तरीके से कार्य करने के लिए सूचना का प्रयोग करने की योग्यता है। इसमें अनुकूलन, आकार देने एवं चयन के घटक/सिद्धांत शामिल हैं। अनुकूलन तब घटित होता है जब व्यक्ति नए परिवेश में समायोजन करने के लिए स्वयं में परिवर्तन करता है। **आकार** बनना तब घटित होता है जब व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार अपने परिवेश में परिवर्तन लाता है। **चयन** तब होता है जब एक पूर्णतया नये परिवेश से अप्रभावी पुराने परिवेश से बदल दिया जाता है।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

बुद्धि का पास (Pass) (Model of Pass Intelligence)

बुद्धि के इस मॉडल को जे0पी0 दास, जैक नागलीरी व किर्बी ने (1994) में विकसित किया। PASS का तात्पर्य है– योजना (Planning), भाव–प्रबोधन–अवधान (Arousal-Attention), सहकालिक (Simultaneous) तथा आनुक्रमिक प्रक्रमण (Successive Processing)। यह सिद्धांत लूरिया के मस्तिष्ककी तीन क्रियात्मक यूनिट की अवधारणा पर आधारित है। **पहली यूनिट** कोर्टिकल (वल्कुटीय) भाव प्रबोधन व अवधान (Cortical asousal & attention) पर आधारित है तथा मस्तिष्क स्तंभ व जालीदार सक्रिय प्रणाली में स्थित है। यह व्यक्ति को सूचना का प्रक्रमण (Process) करने के योग्य बनाता है।

उदाहरण के लिए– जब आपके अध्यापक कहते हैं कि अमुक दिन आप सबकी परीक्षा हैं तो आपका भाव प्रबोधन बढ़ जाता है और आप विशिष्ट अध्यायों पर अधिक ध्यान देने लगते हैं।

दूसरी यूनिट में सूचनाओं की कोडिंग या तो सहकालिक (Simultaneous) या आनुक्रमिक प्रक्रमण शामिल हैं। यह मस्तिष्क के आक्किपेटल (Occipetal) तथा पैरीटल (Parietal) लॉब से संबंधित है।

उदाहरण के लिए– रैवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिसेस (RPM) परीक्षण में परीक्षार्थी को एक अपूर्ण डिजाइन दिखाया जाता है और उसे दिये विकल्पों में से उस विकल्प को चुनना होता है जो दिए गए डिजाइन को पूरा कर सके। सहकालिक प्रक्रमण द्वारा दिये गए अमूर्त चित्रों के पारस्परिक संबंधों को समझने में सहायता मिलती है।

गिनती सीखना, वर्णमाला सीखना आदि इस प्रक्रमण के Examples हैं।

उदाहरण के लिए– यदि आपके अध्यापक आपकी परीक्षा लेने के लिए कहते हैं तो आपको इसकी योजना बनाते हुए लक्ष्य निर्धारित करना होता है। आप पढ़ने के लिए एक Time-Table बना लेते हैं। आगे इसी तरह आप अपनी परीक्षा तक, लक्ष्य को पाने का प्रयास करते हैं।

इन सभी प्रक्रियाओं का स्वरूप अंतः क्रियात्मक (Interactive) तथा गतिशील (dynamic) होता है। दास व नागलीरी ने एक परीक्षण माला विकसित की जिसे **संज्ञानात्मक मूल्यांकन प्रणाली (Cognitive assessment system)** कहा गया और यह 5–18 वर्ष तक के व्यक्तियों का संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का मापन कर सकती है।

बुद्धि में व्यक्तिगत भिन्नताएँ (Individual difference in Intelligence)

कुछ लोग कम बुद्धिमान होते हैं तथा कुछ अधिक बुद्धिमान होते हैं और यह सब होता है आनुवंशिका और पर्यावरण के कारण।

बुद्धि–आनुवंशिकता व पर्यावरण की अंतःक्रियाँ–

बुद्धि पर आनुवंशिकता व पर्यावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है। बुद्धि पर आनुवंशिकता के प्रभावों के प्रमाण मुख्य रूप से जुड़वा बच्चों के अध्ययन से प्राप्त होते हैं। इन अध्ययनों से यह पाया गया कि बुद्धि गोद लेने वाले माता–पिता की अपेक्षा जन्म देने वाले माता–पिता के अधिक समान होती है। जैसे–जैसे बच्चों की आयु बढ़ती है उनका बौद्धिक स्तर गोद लेने वाले माता–पिता की बुद्धि के स्तर के पास पहुँचता जाता है।

''बुद्धि आनुवंशिकता व पर्यावरण की जटिल अंतःक्रिया (Interaction) का परिणाम होती है।''

बुद्धि की विभिन्न परिभाषायें (Definitions)–

(1) थॉर्नडाइक के अनुसार–

''वास्तविक परिस्थिति के अनुसार अपेक्षित प्रतिक्रिया (Reaction) की योग्यता ही बुद्धि है।''

(2) टरमैन के अनुसार–

''अमूर्त (Abstract) वस्तुओं के विषय में सोचने की योग्यता ही बुद्धि है।''

(3) वकिंघम के अनुसार–

''सीखने की शक्ति ही बुद्धि है।''

(4) बिने व साइमन के अनुसार–

''निर्णय, सद्भावना, समझने की योग्यता, तर्क करने व वातावरण में अपने को व्यवस्थित करने की शक्ति ही बुद्धि है।''

(5) गाल्टन के अनुसार–

''बुद्धि, पहचानने व सीखने की शक्ति है।''

(6) वुडवर्थ के अनुसार–

''बुद्धि कार्य करने की एक विधि है।''

बुद्धि के प्रकार (Types of Intelligence)

थॉर्नडाइक व गैरेट ने बुद्धि को तीन भागों में बाँटा है–

(1) अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence)–

ऐसी बौद्धिक योग्यता जिसकी सहायता से शाब्दिक, सांकेतिक व गणितीय समस्याओं का समाधान किया जाता है।

कवि, चित्रकार आदि में यह बुद्धि पाई जाती है।

(2) मूर्त या स्थूल बुद्धि (Concreate intelligence)–

इस बुद्धि के द्वारा व्यक्ति विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का व्यवहारिक व सही प्रयोग करने की क्षमता अर्जित करता है। हम अपने जीवन में अधिकतर कार्य इसी बुद्धि की सहायता से करते हैं।

(3) सामाजिक बुद्धि (Social intelligence)–

वे बौद्धिक योग्यतायें जिनका उपयोग करके व्यक्ति सामाजिक परिवेश के साथ समायोजन (Adjustment) स्थापित करता है।

बुद्धि का मूल्यांकन व परीक्षण (Evaluation & Test of Intelligence)

सबसे पहले 1905 में बिने व साइमन ने बुद्धि के मापन का प्रयास किया। उन्होंने मानसिक आयु (Mental, age, MA) व कालानुक्रमिक आयु (Chronological, age, CA) का Concept दिया।

मानसिक आयु के माप का अर्थ है कि किसी व्यक्ति का बौद्धिक विकास अपने आयु वर्ग के अन्य व्यक्तियों की तुलना में कितना हुआ है। यदि किसी बच्चे की मानसिक आयु 6 वर्ष है, इसका अर्थ है किसी बुद्धि परीक्षण पर उस बच्चे का Performance, 5 वर्ष के बच्चे के average performance के बराबर है।

कालानुक्रमिक आयु, जन्म लेने के बाद बीत चुकी अवधि के बराबर होती है।

एक तीव्र बुद्धि बच्चे की MA, उसकी CA से 2 वर्ष कम है तो **बिने** व **साइमन** ने इसे बौद्धिक मंदता (Mental retardation) कहा है।

1912 में विलयम स्टर्न ने बुद्धि लाब्धि (IQ- Intellgence Quotient) का (Concept) दिया।

$$\text{बुद्धि लाब्धि (I.Q.)} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{कालानुक्रमिक आयु}} \times 100$$

$$I.Q. = \frac{M.A.}{C.A.} \times 100$$

Example :- If. C.A. = 10 yrs

M.A. = 12 yrs

then I.Q. $\frac{12}{10} \times 100$

I.Q. = 120

टरमन का वर्गीकरण (Classification of Terman)

I.Q. Range	Label
140 से ऊपर	Genius (प्रतिभाशाली)
120 – 140	Very Superior (अतिश्रेष्ठ बुद्धि)
110 – 120	Superior (श्रेष्ठ बुद्धि)
90 – 110	Average (औसत बुद्धि)
80 – 90	Dull (मन्द बुद्धि)
70 – 80	Feeble (कमजोर बुद्धि)
50 – 70	Morons (क्षीण बुद्धि)
25 – 50	Stupid (मूर्ख बुद्धि)
0 – 25	Idiot (जड़ बुद्धि)

बुद्धि में विचलन (Variable in intelligence)

बौद्धिक न्यूनता (Intellectual deficiency)

कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिन्हें बहुत साधारण कौशलों को सीखने में भी बहुत कठिनाई होती है। ऐसे बच्चों को जिनमें बौद्धिक न्यूनता होती है उन्हें ''बौद्धिक रूप से अशक्त'' कहा जाता है। इन बच्चों के I.Q. , 70 से कम होती है उनकी बौद्धिक प्रकार्यात्मकता (Intellectual functioning) सामान्य से पर्याप्त कम समझी जाती है।

बौद्धिक अशक्तता के विभिन्न वर्ग होते हैं–

- निम्न (IQ - (55-70)
- सामान्य (35-40 - 50-55)
- तीव्र (20-25 - 35-40)
- अतिंगभीर (20 - 25 से कम)

बौद्धिक प्रतिभाशालिता (Intellectual giftedness)

अपनी उत्कृष्ट योग्यताओं के कारण बौद्धिक रूप से प्रतिभाशाली व्यक्तियों का Performance श्रेष्ठ प्रकार का होता है। प्रवीणता (talent) तथा प्रतिभा (giftedness) शब्दों का समान अर्थों में उपयोग किया जाता है परंतु इन दोनों के अर्थ भिन्न हैं। **प्रतिभा** का अर्थ उस असाधारण सामान्य प्रकार की योग्यता से है जो विस्तृत क्षेत्र के कार्यों में किये गये श्रेष्ठ Performance में दिखाई पड़ती है। जबकि **प्रवीणता** का अर्थ किसी Specific या संकुचित क्षेत्र में श्रेष्ठ योग्यता से होता है।

अध्यापकों की दृष्टि से प्रतिभाशालिता उसकी उच्च योग्यता (High Creativity) तथा उच्च प्रतिबद्धता (High commitment) जैसे गुणों के संयोजन पर निर्भर करती है।

प्रतिभाशाली बच्चों की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

- सूचना Process की उच्च गति
- स्वतंत्र प्रकार का चिंतन
- उन्नत तार्किक चिंतन, प्रश्न करने की प्रवृत्ति
- समस्या समाधान की योग्यता

बुद्धि परीक्षणों के प्रकार (Types of Intelligence tests)

आम तौर पर यह तीन प्रकार के होते हैं–

(1) वैयक्तिक व समूह परीक्षण
(2) शाब्दिक, अशाब्दिक व निष्पादन परीक्षण
(3) संस्कृति–निष्पक्ष व संस्कृति–अभिनत

(1) वैयक्तिक व समूह बुद्धि परीक्षण (Individual & Group test)–

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण वह होता है जिसके द्वारा एक समय में एक ही व्यक्ति का बुद्धि परीक्षण किया जाता है। **समूह बद्धि परीक्षण** को एक साथ बहुत व्यक्तियों को समूह में दिया जा सकता है।

(2) शाब्दिक, अशाब्दिक व निष्पादन परीक्षण (Verbal, non-verbal & performance test)–

शाब्दिक परीक्षणों में परीक्षार्थी को मौखिक या लिखित रूप में शाब्दिक अनुक्रियाएँ करनी होती हैं। यह केवल साक्षर व्यक्ति को ही दिया जा सकता है। **अशाब्दिक परीक्षणों** में एकांशो के रूप में चित्रों का उपयोग किया जाता है जिसमें परीक्षार्थी को अपूर्ण प्रतिरूप दिखाया जाता है और उसे विकल्पों में से एक का चयन करना होता है।

निष्पादन परीक्षण में परीक्षार्थी को कोई कार्य संपादित करने के लिए कुछ वस्तुओं का प्रहस्तन (Manipulate) करना होता है। जैसे– कोह के ब्लॉक डिजाइन परीक्षण में लकड़ी के कई घनाकार टुकड़े होते हैं जिन्हें मिलाकर एक डिजाइन बनाना होता है।

(3) संस्कृति–निष्पक्ष व संस्कृति–अभिनत परीक्षण (Culture-fair & Culture-biased test)–

बहुत से बुद्धि परीक्षण उस संस्कृति के प्रति biased होते हैं जिसमें वो विकसित किये जाते हैं। जैसे– अमेरिका व यूरोप में विकसित बुद्धि परीक्षण नगरीय व मध्यवर्गीय, सांस्कृतिक लोकाचार का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए उस देश के शिक्षित मध्यवर्गीय श्वेत व्यक्ति सामान्यतः अच्छा Performance कर लेते हैं, परन्तु इन परीक्षणों के प्रश्न एशिया या अफ्रीका के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Perspective) का ध्यान नहीं रखते हैं।

संस्कृति व बुद्धि (Culture & Intelligence)–

व्यक्ति का सांस्कृतिक पर्यावरण बुद्धि के विकसित होने में एक संदर्भ प्रदान करता है। वाइगाट्सकी का कथन है कि संस्कृति एक ऐसा सामाजिक संदर्भ प्रदान करती है जिसमें व्यक्ति रहता है, विकसित प्रदान करती है और अपने आस–पास के जगत को समझता है। रीति–रिवाज, विश्वास, अभिवृत्तियों के अनुरूप ही किसी व्यक्ति की बुद्धि ढलने की संभावना होती है। "**स्टर्नबर्ग**" के अनुसार बुद्धि, संस्कृति का उत्पाद होती है।

सांवेगिक बुद्धि (Emotional Intelligence)–

सांवेगिक बुद्धि का Concept सामानय बुद्धि की भारतीय परम्परा की अवधारणा से निर्मित है। सांवेगिक बुद्धि अनेक कौशलों जैसे– अपने व दूसरे व्यक्तियों के संवेगों का परिशुद्ध मूल्यांकन, प्रकटीकरण तथा संवेगों का regulation आदि का एक set है। यह बुद्धि का भावात्मक पक्ष है। सांवेगिक बुद्धि का Concept **सैलोवी** व "**मेयर**" ने प्रस्तुत किया था।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

अभिक्षमता (Aptitude)–

क्रियाओं के किसी विशिष्ट क्षेत्र की विशेष योग्यता को कहते हैं। ''किसी विशेष क्षेत्र के ज्ञान या कौशल के अर्जन करने की क्षमता है Aptitude कहलाती है।

अभिरुचि (Interest)–

किसी विशेष कार्य को करने की Priority है, अभिरुचि। अभिरुचि एक आन्तरिक प्रेरक शक्ति है जो हमें ध्यान देने के लिए किसी व्यक्ति/वस्तु/क्रिया के प्रति प्रेरित करती है।

सृजनात्मकता (Creativity)–

किसी कार्य को नये ढंग/तरीकों से करने की क्षमता को सृजनात्मकता कहा जा सकता है। कुछ व्यक्तियों में यह बहुत अधिक मात्रा में होती है और कुछ में कम। कुछ व्यक्तियों की सृजनात्मकता लेखन, कुछ की नृत्य या संगीत में अर्थात् अलग–अलग क्षेत्रों में हो सकती है। किसी समस्या का नये प्रकार का समाधान खोजने, आविष्कार करने, कविता लिखने या इसी प्रकार के अन्य क्षेत्र में सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति का प्रेक्षण किया जा सकता है।

सृजनात्मकता व बुद्धि (Creativity & Intelligence)–

सृजनात्मकता व बुद्धि के संबंध को या कहें Concept को हम एक उदाहरण के द्वारा समझते हैं–

- प्रिया को उसके अध्यापक एक श्रेष्ठ छात्रा मानते हैं। वह अपने काम को समय से पूरा करती है, उच्चतम ग्रेड प्राप्त करती है, अध्यापक के अनुदेशों को ध्यान से सुनती व समझती है परंतु शायद ही कभी कोई ऐसा विचार रखती है जो उसका अपना हो।

- राज एक ऐसा छात्र है जो अध्ययन में average है और परीक्षा में भी मध्य श्रेणी का प्रदर्शन करता है। वह अपने आप चीजों के सीखने को Preference देता है और नये तरीके खोजने में प्रयासरत रहता है।

इस Situation में हम प्रिया को अधिक बुद्धिमान तथा राज को अधिक सृजनशील कहेंगे।

सृजनात्मकता व बुद्धि में सकारात्मकता संबंध होता है। प्रत्येक सृजनात्मक कार्य करने के लिए एक न्यूनतम स्तर की योग्यता व क्षमता की आवश्यकता होती है।

परिपक्वता (Maturity)–

ये वह प्रक्रिया है जिसके साथ हम बढ़ते हैं, विकसित होते हैं तथा बदलते हैं। बच्चों में परिपक्वता का अर्थ है उनका विकास के चरणों से होकर जाना।

परिपक्व होने के साथ–साथ योग्यता व अनुकूलनशीलता में वृद्धि होती है।

वैयक्तिक भिन्नता को प्रभाावित करने वाले कारक (Factors affecting individual difference)–

वैयक्तिक भिन्नता को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं–

(1) Heredity (वंशानुक्रम)
(2) Environment (पर्यावरण)
(3) Caste (जाति)
(4) Intelligence (बुद्धि)
(5) Education (शिक्षा)
(6) Age (आयु)
(7) Personality (व्यक्तित्व)
(8) Interest (रुचि)
(9) Gender (लिंग)

वैयक्तिक भिन्नता का शिक्षा में उपयोग (Use of individual differences in education)–

(1) पाठ्यक्रम में विविधता (Variety)

(2) मूल्यांकन में भिन्नता

(3) शिक्षण विधि में विविधता

(4) बहुउद्देशीय विद्यालय

वैयक्तिक भिन्नता पर आधारित शिक्षण–प्रक्रिया (Teaching method based on individual difference)–

(1) डॉल्टन विधि –

इस विधि को "हेलेन पार्क हर्स्ट" के द्वारा बताया गया। इसमें बच्चे को अपनी क्षमता व योग्यता के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता है।

(2) विनेटिका प्रणाली –

इस प्रणाली के प्रतिपादक "डा0 बाशबर्न" हैं। इस विधि में बालक पाठ्यक्रम को छोटे–छोटे भाग में बाँटता है।

(3) किंडर गार्टन प्रणाली –

इसके प्रतिपादक फ्रोबेल हैं। ये अध्यापक को माली व छात्र को अविकसित पौधा मानते हैं। इस विधि में बच्चों को खेल के माध्यम से सिखाया जाता है।

(4) मांटेसरी प्रणाली –

इसकी प्रतिपादक "मारिया मांटेसरी" हैं। इन्होंने अपने स्कूल में कोई पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं किया और अध्ययन की सुविधा के लिए तीन भागों में बाँटा–

(a) कर्मेंद्रियों की शिक्षा

(b) ज्ञानेंद्रियों की शिक्षा

(c) पढ़ने लिखने की शिक्षा।

(5) बेसिक शिक्षा प्रणाली –

इसके जन्मदाता गांधी जी हैं। इसके अर्न्तगत निःशुल्क शिक्षा व हस्त कला पर आधारित शिक्षा दी जाती है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा है।

(6) अन्वेषण प्रणाली (Heuristic method) –

इसके प्रर्वतक HE Armstrong हैं। अध्यापक, छात्र के सामने समस्याएं प्रस्तुत करता है तथा छात्र उस समस्या का स्वयं समाधान खोजता है। इसे खोज प्रणाली भी कहते हैं।

(7) डेक्रोली प्रणाली –

इसके जन्मदाता "डेक्रोली" हैं। इसके अनुसार छात्र को उसकी योग्यता एवं रुचि के अनुसार विभिक्त कर लेनाचाहिए तथा फिर उस प्रकार शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।

(8) प्रोजेक्ट प्रणाली –

इस प्रणाली के प्रवर्तक "किलपैट्रिक" हैं। इस प्रणाली में छात्र अपनी रुचि से योजना का चयन करते हैं। प्रोजेक्ट के माध्यम से विभिन्न विषयों जैसे इतिहास, भूगोल की शिक्षा प्रदान की जाती है।

(9) अभिक्रमित अनुवेशन प्रणाली –

CHAPTER - 2

बाल विकास को प्रभावित करने वाले कारक

(FACTORS AFFECTING CHILD DEVELOPMENT)

मनोविज्ञान (Psychology) :

'Psychology' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम (1590) में 'रूडोल्फ गॉलकाय' ने किया था। 'Psychology' शब्द दो ग्रीक शब्दों Psyche (आत्मा) व लॉगोस Logos (विज्ञान) से मिलकर बना है जिसका अर्थ है 'आत्मा का विज्ञान'।

वर्तमान में यह वैज्ञानिक विद्याशाखा के रूप में स्थापित हो चुका है अर्थात औपचारिक रूप से मनोविज्ञान को मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों और विभिन्न संदर्भों में व्यवहारों का अध्ययन करने वाले विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है।

- जब हम किसी बात को जानने के लिए चिन्तन करते हैं तो हम मानसिक (Mental Processess) प्रक्रियाओं का प्रयोग करते हैं।
- मनोवैज्ञानिक लोगो के अनुभवों का भी अध्ययन करते हैं।
- व्यवहार हमारी क्रियाओं, जिसमें हम Involve होते हैं, की अनुक्रिया या प्रतिक्रिया होते हैं।
- मनोविज्ञान की उत्पत्ति दर्शनशास्त्र से हुई है।
- 'William James' ने "Principle of Psychology" प्रकाशित की।
- 'बिने व साइमन' द्वारा बुद्धि परीक्षण का विकास
- "Psychology in a third world country : The Indian Experience" written by 'दुर्गानन्द सिन्हा'

मनोविज्ञान की परिभाषायें

DEFINITIONS OF PSYCHOLOGY

अलग–अलग मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को अलग–अलग रूप में परिभाषित किया–

1. 'विलियम जेम्स'–''मनोविज्ञान मानसिक जीवन काविज्ञान है''
2. 'जे0बी0 वॉटसन'–''मनोविज्ञान व्यवहार का अध्ययन है।''
3. 'C. Levin' –''मनोविज्ञान व्यक्ति व उसके पर्यावरण के बीच गतिशील अन्तःक्रिया का अध्ययन है।''
4. 'कार्ल रोजर्स'–''मनोविज्ञान संपूर्ण व्यक्ति का अध्ययन है।''
5. 'R. Sternberg'-''यह मानव व्यवहार के सामाजिक व भावनात्मक पहलुओं का अध्ययन है।''
6. 'P. Bloom'-''मनोविज्ञान मानव स्थिति का अध्ययन है।''

मनोविज्ञान की अवधारणाएँ

(CONCEPTS OF PSYCHOLOGY) :

यह अवधारणा चार आधारो पर दी जाती है–

1. आत्मा का अध्ययन :–

मनोविज्ञान की यह अवधारणा कहती है कि मनोविज्ञान 'आत्मा का विज्ञान' है। प्लेटो, अरस्तू, गौरेट ने भी यही माना।

2. मन का अध्ययन :–

इस विचारधारा का प्रमुख उद्देश्य 'मस्तिष्क' का अध्ययन करना था। 'थॉमस रीड' का इसमें महत्वपूर्ण योगदान रहा।

3. चेतना का अध्ययन :–

इस विचारधारा में मनोविज्ञान को चेतना को विज्ञान कहा गया। 'टिचनर', 'विलियम जेम्स' का इमसें महत्वपूर्ण योगदान रहा।

4. व्यवहार का अध्ययन :–

'वॉटसन' व्यवहारवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने अर्न्तदर्शन का बहिष्कार किया और कहा कि जब शारीरिक क्रियाएं स्पष्ट रूप से दर्शनीय व उल्लेखनीय हैं, तब चेतना का कोई स्थान नहीं है। 'वुडवर्थ, 'स्किनर' का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान रहा।

नोट : 'वुडवर्थ' ने लिखा है–''सर्वप्रथम मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा को छोड़ा, फिर मस्तिष्क त्यागा,फिर अपनी चेतना खोई और अब वह एक प्रकार के व्यवहार के ढंग को अपनाये हुये है।''

मनोविज्ञान की शाखाएँ : Brahces of Psychology :-

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
2. जैविक मनोविज्ञान
3. विकासात्मक मनोविज्ञान
4. सामाजिक मनोविज्ञान
5. सांस्कृतिक मनोविज्ञान
6. पर्यावरणीय मनोविज्ञान
7. स्वास्थ्य मनोविज्ञान
8. नैदानिक व उपबोधन मनोविज्ञान
9. औद्योगिक मनोविज्ञान

10. शैक्षिक मनोविज्ञान

11. क्रीड़ा मनोविज्ञान

शिक्षा मनोविज्ञान (Education Psychology) :

शिक्षा मनोविज्ञान में इस बात का अध्ययन करते है कि विभिन्न आयुवर्ग के लोग कैसे सीखते हैं। विद्यालय मनोविज्ञान बच्चों के बौद्धिक, सामाजिक व सांवेगिक विकास के कार्यक्रमों को तैयार करने में ध्यान देता है।

शिक्षा का अर्थ है 'सीखना या सिखाना'।

'शिक्षा' में सामान्यतः दो क्रियाये होती हैं

1. शिक्षण (Teaching) :–

शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहार व जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लने का प्रयास करता है।

2. अधिगम (Learning) :-

वह प्रक्रिया जिसके द्वारा आप स्वयं के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाते है तथा सीखते हैं।

'शिक्षण' की प्रक्रिया में तीन प्रमुख घटक होते हैं–

1. स्वतंत्र चर– अध्यापक
2. आश्रित चर– विद्यार्थी
3. हस्तक्षेप चर– पाठ्यक्रम या पाठ्य विधियाँ

शिक्षा में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का सूत्रपात किया–'रूसो' ने।

'Johann Herbrt' is considered as father of 'Educational Psychology'.

शिक्षा की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषायें Important Definitions of Education :-

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

1. ''महात्मा गांधी''–शिक्षा का तात्पर्य बालक व व्यक्ति के शरीर मन व आत्मा की सर्वोत्तमता का सर्वांगीण प्रकटीकरण है।
2. ''पाणिनी''–शिक्षा का तात्पर्य उस प्रशिक्षण से है जो मनुष्य प्रकृति से प्राप्त करता है।
3. ''हरर्बट''–शिक्षा अच्छे नैतिक आचरण के विकास का नाम है।
4. ''अरस्तू''–स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का विकास ही शिक्षा है।
5. ''फ्रोबेल''–शिक्षा वह है जिसके द्वारा बालक की जन्जजात शक्तियां बाहर प्रकट होती है।

शिक्षा की अवधारणा (Concept of Education) :-

शिक्षा की अवधारण तीन दृष्टिकोणों के आधार पर दी जाती है–

1. **दार्शनिक दृष्टिकोण :** बालक की अन्तर्निहित शक्तियों क बर्हिगामी (OUtward) प्रवाह कर सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया है।
2. **मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण :** बालक के व्यवहार में बदलाव/परिमार्जन (Refinement) की प्रक्रिया, शिक्षा है।
3. **समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण :** समाज व वातावरण के साथ समायोजन सिखाने की प्रक्रिया ही शिक्षा ळें

शिक्षा मनोविज्ञान का महत्व (Importance of Education Psychology) :–

- ❖ अधिगम की प्रकृति को समझने में।
- ❖ व्यक्तिगत भिन्नताओं को समझने में।
- ❖ बच्चों की समस्याओं को समझने में।
- ❖ पाठ्यक्रम निर्माण में।
- ❖ विशिष्ट बच्चों की शिक्षा में।

बाल मनोविज्ञान (Child Psychology) :-

बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत बालकों के व्यवहार, स्थितियां, समस्याएँ तथा उन सभी कारणों का अध्ययन किया जाता है, जिनका प्रभाव बालक के व्यवहार व विकास पर पड़ता है। इसके अन्तर्गत गर्भावस्था से लेकर किशोरावस्था तक का अध्ययन किया जाता है।

बाल विकास (Child Development) :-

समान्य भाषा में बाल विकास, गर्भ में आने से लेकर पूर्ण प्रौढ़ता प्राप्त होने की स्थिति है। ये विकासात्मक परिवर्तन काफी हद तक जन्म से पहले के जीवन के दौरान आनुवांशिक कारकों व घटनाओं से प्रभावित हो सकते हैं इसलिए आनुवांशिकी व जन्म पूर्व विकास को आमतौर पर बच्चे के विकास के अध्ययन के हिस्से के रूप में शामिल किया जाता है।

बालक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है। बालक का शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, भाषायी व सामाजिक विकास होता है।

बाल विकास की परिभाषा :–

अनेक विद्वानों ने बाल विकास की अलग–अलग परिभाषाऐं दी हैं–

1. ''हरलॉक''–विकास की सीमा अभिवृद्धि तक सीमित नहीं है बल्कि इसमें प्रौढ़ावस्था तक परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम रहता है।''
2. ''मुनरो''–''परिवर्तन श्रृंखला की वह अवस्था जिसमें बालक भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक गुजरता है, विकास कहा जाता है।''
3. ''फ्रोबेल''–बालक स्वयं विकास की ओर उन्मुख होने वाला पौधा है।''
4. ''क्रो एण्ड क्रो''–''वह अध्ययन जिसमें गर्भावस्था के प्रारम्भ से लेकर किशोरावस्था के प्रारंभ तक होने वाले विकास का अध्ययन किया जाता है।

5. ''जेम्स ड्रेवर''–''बाल मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानव के जन्म से परिपक्वता तक का अध्ययन किया जाता है।''

वृद्धि तथा विकास (Growth and Development) :-

विकास की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में बालक में होने वाले परिवर्तनों में गति और मात्रा में अन्तर पाया जाता है। ये परिवर्तन वृद्धि व विकास दोनों प्रकार के होते है।

वृद्धि (Growth) :.

शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक, शरीर के विभिन्न अंगों के आकार में, लम्बाई, चौड़ाई तथा भार में परिवर्तन होता रहता है; साथ ही साथ कोशिकाओं, तंत्रिकाओं, मांसपेशियों व अस्थियों में भी परिवर्तन होता रहता है, यही वृद्धि है।

व्यक्ति की शारीरिक वृद्धि को मापा जा सकता है।

पूर्व की अपेक्षा व्यक्ति की लम्बाई,चौड़ाई, भार में थोड़ी सी भी बढ़ोत्तरी होती है तो उसे वृद्धि कहा जाताहै।

वृद्धि की परिभाषायें (Definitions of Growth) :-

1. ''फ्रैंक''–''वृद्धि से अभिप्राय कोशिकाओं में होने वाली वृद्धि से होता है जैसे–लम्बाई, भार में वृद्धि।''
2. 'मुनरो'–''वृद्धि से तात्पर्य शरीर, आकार व भार में पाई जाने वाली वृद्धि है।''
3. 'सोरेनसन'–''अभिवृद्धि से आशय शरीर तथा शारीरिक अंगों में भार तथा आकार की दृष्टि से वृद्धि होना है, ऐसी वृद्धि जिसका मापन सम्भव हो।''

विकास (Development) :-

गर्भाधान से लेकर मृत्यु के क्षणों तक हम मात्र शारीरिक रूप से ही परिवर्तित नहीं होते हैं बल्कि हम सोचने, भाषा के उपयोग तथा सामाजिक संबंधों को विकसित करने के तरीकों के आधार पर भी बदलते हैं। विकास गतिशील, क्रमबद्ध परिवर्तनों का प्रारूप है जो गर्भाधान से प्रारम्भ होता है व जीवनपर्यन्त चलता है। विकास के अन्तर्गत व्यक्ति में मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक व शारीरिक परिवर्तन होते है।

- ❖ व्यक्ति के विकास पर वैयक्तिक भिन्नता (Individual differences) का प्रभाव पड़ता है।
- ❖ विकास की एक निश्चित दिशा होती है।
- ❖ विकास के अन्तर्गत दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं।

1. **मात्रात्मक परिवर्तन (Quantitative Change)** :-

   शारीरिक विकास का पक्ष इसके अन्तर्गत आता है जैसे–लम्बाई, भार आदि। अर्थात जिस परिवर्तन को मापा जा सके।

2. **गुणात्मक परिवर्तन (Qualitative Change)** :-

   ऐसा परिवर्तन जिसकी सही माप न की जा सके जैसे–मानसिक विकास, नैतिक विकास, संवेगात्मक विकास, सामाजिक विकास आदि।

- ❖ विकास की प्रक्रिया Flexible है या संशोधन योग्य है।
- ❖ वृद्धि, विकास का ही एक पक्ष है।

विकास की परिभाषाएँ (Definitions of Development) :-

मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई विकास की परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

1. 'स्किनर' के अनुसार–''विकास जीव व उसके वातावरण की अंतःक्रिया का प्रतिफल है।''
2. 'हरलॉक' के अनुसार–''प्राणी में होने वाले Qualitative Changes को विकास कहा जाता है।''
3. 'सेल' के अनुसार–''विकास एक तरह का परिवर्तन है जिसमें बच्चों में नवीन विशेषताओं व क्षमताओं का विकास होता है।''
4. 'सोरेन्सर' के अनुसार–''सामाजिक वृद्धि व विकास का अर्थ है अपनी दूसरों की उन्नति के लिए योग्यता वृद्धि है''

वृद्धि और विकास में अन्तर

(Difference between Growth & Development)

वृद्धि व विकास में निम्नलिखित अन्तर है।

क्र.सं.	वृद्धि	विकास
1.	वृद्धि का स्वरूप बाह्य होता है।	विकास आन्तरिक होता है।
2.	यह दिशाहीन होती है।	विकास एक निश्चित दिशा में होता है।
3.	वृद्धि एक मात्रात्मक परिवर्तन है अर्थात व्यक्ति की लम्बाई, भार आदि में परिवर्तन होता है।	यह एक गुणात्मक परिवर्तन है साथ ही मात्रात्मक भी। सभी पक्षों में उन्नति होती है।
4.	एक निश्चित समय के बाद वृद्धि रूक जाती है।	विकासजीवन पर्यंत चलता है।
5.	वृद्धि, विकास का ही एक भाग है।	विकास एक व्यापक प्रक्रिया है।
6.	वृद्धि का कोई निश्चित क्रम नहीं होता है।	विकास एक निश्चित क्रम में होता है।
7.	वृद्धि को सीधे, मापा जा सकता है जैसे–ऊँचाई, वजन	विकास सीधे मापा नहीं जा सकता है जैसे–बुद्धि

वृद्धि और विकास के सिद्धांत (Principles of Growth & Development) :-

विकास जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया होती है। विकास के दौरान व्यक्ति में नई योग्यतायें व गुण विकसित होते हैं। यह विकास की प्रक्रिया किस प्रकार होती है इससे संबंधित कुछ सिद्धात मनोवैज्ञानिकों द्वार प्रतिपदित किये गये है। आइए जानते हैं–

1. निरन्तर विकास का सिद्धान्त (Principles of Continuous Development) :-

इस सिद्धांत के अनुसार, विकास एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह कभी तीव्र और कभी धीमी होती है।

2. समान प्रतिमान का सिद्धान्त (Principle of Uniform Pattern) :.

यह सिद्धान्त कहता है कि प्रत्येक जाति का एक Fix Pattern होता है विकास का। यदि मनुष्यो की बात करे तो सम्पूर्ण पृथ्वी पर उनके विकास का समान Pattern है। सभी का शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक विकास समान रूप से होता है।

3. विशिष्ट क्रम का सिद्धांत (Principle of Specific Pattern) :–

विकास की प्रक्रिया एक विशिष्ट क्रम को Follow करती है। जैसे–एक बालक के विकास को देखें तो आप पाएंगे कि पहले वह बैठना सीखता है,फिर धीरे–धीरे खड़ा होना, फिर चलना और दौड़ना सीखता है।

4. सामान्य प्रतिक्रियाओं से विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का सिद्धांत (Principle of General to Specific Responses) :–

विकास सामान्य प्रतिक्रियाओं से विशिष्ट प्रतिक्रियाओं की ओर होता है। सबसे पहले सामान्य प्रतिक्रियायें दिखती है फिर विशिष्ट। जैसे एक बच्चा सबसे पहले निरर्थक (बिना अर्थ के) ध्वनियां उत्पन्न करता है और बाद में सार्थक शब्दों को बोलने लगता है।

5. विकास की विभिन्न गति का सिद्धान्त (Principle of Different Rate of Development) :-

विकास की गति एक समान नहीं होती है। इसी प्रकार शरीर के अंगों की विकास गति में भी भिन्नता पाई जाती है। जैसे–खेल की रूचि बाल्यावस्था में चरम पर होती है। हाथ, पैर अदि किशोरावस्था में पूर्ण रूप से विकसित होते हैं।

6. सह–सम्बन्ध का सिद्धांत (Principle of Co-relation) :-

बालक के विकास के गुणों में सह–सम्बन्ध पाया जा सकता है। यदि कोई बच्चा किसी एक गुण के विकास में मन्द (Slow) है तो ऐसा हो सकता है कि उसके किसी और गुण के विकास में भी वो मन्द हो।

7. एकीकरण का सिद्धांत (Principles of Integoration) :-

बालक के मानसिक, संवेगात्मक व शारीरिक विकास परस्पर सम्बद्ध (Related) होते हैं। इन सबका प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है। जैसे–बच्चा पहले उंगलियों को, फिर हाथ को चलाता है फिर ऐसे ही शरीर के विभिन्न भागों को चलाना सीखता है।

8. वंशानुक्रम तथा वातावरण की अन्तःक्रिया का सिद्धांत (Principle of Intereaction of Aeredity & Environemnt) :-

यह सिद्धांत कहता है कि विकास, वातावरण व वंशानुक्रम से पूरी तरह प्रभावित होता है। जैसे–यदि जीवन की शुरूआत में कुपोषण या गम्भीर रोग हो जाये तो वह जन्मजात योग्यताओं को शक्तिहीन बना सकते है।

वंशानुक्रम आपको जन्मजात गुण/अवगुण/शक्तियां/योग्यताएं देता है जो सीधे–सीधे विकास को प्रभावित करते हैं।

9. अवांछित व्यवहार के स्वतः दूर हो जाने का सिद्धांत (Principle of Self removal of Undesired Behaviour) :-

कुछ ऐसे Behaviour या कहें Bad Behaviour एक Particular अवस्था में ही देखने को मिलते है उसके बाद वो स्वतः ही दूर हो जाते हैं। जैसे–बच्चे बाल्यावस्था में बहुत ही शरारती होते है परन्तु कुछ समय बाद स्वतः ही वह समझदार होने लगते हैं।

10. व्यक्तिगत भिन्नताओं का सिद्धांत (Principle of Individual Differences):.

यह सिद्धान्त बताता है कि विकास Person to Person Vary करता है। सभी के विकास का निजी स्वरूप होता है। एक ही उम्र के दो बच्चों के विकास में आपको भिन्नता देखने को मिल सकती है। बच्चों के विकास में कोई न कोई ऐसी विशेषता होती है जिसके करण वह अन्य से भिन्न होता है।

विकास के प्रकार/आयाम (Domain) : –

मनोवैज्ञानिकों द्वारा मुख्य रूप से चार आयाम दिये गये हैं–

1. शारीरिक/गामक विकास (Physical Development)
2. मानसिक/संज्ञानात्मक विकास (Mental Development)

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

3. संवेगात्मक विकास (Emotional Development)

4. सामाजिक विकास (Social Development)

1. शारीरिक विकास (Physical Development) :-

एक निश्चित समय व आयु तक शरीर के अंगों व शरीर में होने वाले परिवर्तन व विकास को शारीरिक विकास कहते हैं। यह गर्भकालीन अवस्था से शुरू होकर जीवन पर्यन्त चलता रहता है।

शारीरिक विकास चार क्षेत्रों को प्रभावित करता है–

1. स्नायुमंडल का विकास (Nervous System)
2. मांसपेशियों में वृद्धि (Muscles)
3. अंतःस्रावी ग्रंथियों का विकास (Endocrine Glands)
4. शारीरिक ढांचे में विकास (Physical Structure)

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक (Factors affecting Physical development) :-

1. आनुवांशिकता (Heridity)
2. वातावरण (Environment)
3. भोजन (Food)
4. व्यायाम (Exercise)

2. मानसिक विकास (Mental Development) :-

हमारे मस्तिष्क व मस्तिष्क की क्षमताओं में होने वाले सकारात्मक परिवर्तन को मानसिक विकास कहते हैं।

मानसिक विकास के प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Mental Development) :-

1. वातावरण (Environment)
2. वंशानुक्रम (Heredity)
3. परिवार (Family)

3. संवेगात्मक विकास (Emotional Development) :-

बालक के Emotions में बदलाव आना और समय के साथ उनका विकास होना ही Emotional Development है। Emotions- प्रेम, क्रोध,ईर्ष्या, डर आदि।

4. सामाजिक विकास (Social Development) :-

सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यवहार व आदतों का निर्माण होता है। इस विकास में समाज का बहुत महत्वपूर्ण Role होता है। बच्चा को देखकर समझकर प्रभावित होता है और अपने अन्दर परिवर्तन लाता है।

वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक

(Factors Affecting Growth & Development)

वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं–

1. ग्रंथियों का स्राव (Secretionof Glands) :-

मानव शरीर के अन्दर कई अंतःस्रावी ग्रंथियां पाई जाती हैं जिनके कारण शरीर में विभिन्न रसों का उत्पादन होता है। शारीरिक व मानसिक विकास पर इन ग्रंथियों के स्राव का बहुत प्रभाव पड़ता है।

For Example :- गले में पाये जाने वाली पैरा थायरॉड ग्रंथि कैल्शियम का उत्पादन करती है जो हडिड्यों का निर्माण करता है।

लैंगिक ग्रंथियों की कमी से किशोरावस्था देर से आयेगी और अधिक सक्रिय होने से लैंगिक विकास जल्दी होगा।

2. पोषण (Nutrition) :-

पोषण में वो तत्व आते हैं जो गहरी वातावरण से प्राप्त होते हैं। बच्चे के सम्पूर्ण विकास के लिए पोषण की बहुत आवश्यकता होती है। पौष्टिक आहार वह भोजन है जिसमें प्रोटीन, विटामिन, खनिज,लवण, वसा, कार्बोहाइड्रेट जैसे तत्व होते हैं। पौष्टिक आहार की कमी शारीरिक दुर्बलता, दांत व त्वचा संबंधित रोगों का कारण है।

3. शुद्ध वायु और सूर्य का प्रकाश (Fresh Air & Sun Light)

शुद्ध वायु और सूर्य का प्रकाश सभी लोगों के लिए आवश्यक है परन्तु बच्चों के विकास में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। इसकी अनुपस्थिति (Absense) में उनका शरीर कमजोर हो सकता है तथा शारीरिक विकास को प्रभावित कर सकता है।

4. रोग व चोट (Disease & Injuries) :-

बच्चों के यदि कोई चोट लग जाये तो वह उनके न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक विकास को भी प्रभावित करेगी। बच्चों को किसी भी अवस्था में कोई बीमारी सीधे–सीधे उसके शारीरिक विकास को प्रभावित करती है।

5. बुद्धि (Intelligence) :-

विकास पर प्रभाव डालने वाले कारकों में सबसे महत्वपूर्ण बुद्धि को माना जाता है। मनोवैज्ञानिक के अनुसार, तीव्र बुद्धि वाले बच्चों का विकास तीव्र गति से तथा मन्द, बुद्धि वाले बच्चों का विकास मन्द गति से होता है।

एक अध्ययन में टर्मन ने बताया कि तीव्र बुद्धि वाले बच्चों में चलने की क्षमता 13 महीने में, सामान्य बुद्धि वाले बच्चों में 14 महीने में तथा मन्दबुद्धि बच्चों में यह 22 महीने में विकसित हुई।

6. लिंग भेद (Sex Difference) :-

लैंगिक भिन्नता न केवल शारीरिक अपितु मानसिक विकास के गुणों को भी प्रभावित करती है। जन्म के समय लड़के, लड़कियों की तुलना में थोड़े लम्बे होते हैं लेकिन किशोरावस्था में बालिकाओं का विकास तीव्र गति से होता है लड़कियां जल्दी ही Maturity को प्राप्त कर लेती है।

7. प्रजाति (Species) :

प्रजाति भी बच्चों के विकास को प्रभावित करती है। भूमध्य सागरीय तट पर रहने वाले बच्चों का शारीरिक विकास,यूरोप के बच्चों की तुलना में जल्दी होता है।

8. परिवार में स्थिति (Position in Family) :-

परिवार में पहले बच्चे की अपेक्ष दूसरे व तीसरे बच्चे का विकास अपेक्षाकृत जल्दी होता है क्योंकि छोटा बच्चा अपने बड़े भाई–बहनों का अनुकरण करते हैं और सीखते है। जिस घर में बच्चे को दूसरे बच्चे नहीं मिल पाते, उसका विकास अपेक्षाकृत धीमा होता है।

9. संस्कृति (Culture) :-

बहुत से दार्शनिकों जैसे–स्वामी दयानन्द, डॉ0 राधाकृष्णन आदि का यह मत है कि देश व समाज की संस्कृति बालक के विकास के बहुत प्रभावित करती है। जैसे की भारतीय संस्कृति की विशेषता है उसकी आध्यत्मिकता (Spirituality) । ये आध्यात्मिकता बच्चे के विकास को भी प्रभावित करती है क्योंकि बच्चा जिस प्रकार की संस्कृति को अपने आस–पास देखता है वह उसी से सीखता है।

10. पर्यावरण (Environment) :–

बच्चे के चारों ओर घटित होने वाली सभी क्रियायें उसे प्रभावित करती है। बच्चा जहां पर रहता है वह भौगोलिक स्थिति, सामाजिक परिवेश, परिवार और लोग उसे बहुत प्रभावित करते हैं।

11. आनुवंशिकता (Heredity) :-

जीन्स के माध्यम से, माता–पिता की शारीरिक विशेषताएं उनके बच्चों में पहुंचना आनुवंशिकता है। यह बच्चों की विशेषताओं व विकास को बहुत अधिक प्रभावित करती है। जैसे–लम्बाई, शारीरिक बनावट, बुद्धि, योग्यता आदि। कुछ बीमारियां जैसे डायबिटीज, मोटापा आदि भी जीन के माध्यम से बच्चों में जा सकती है।

विकास की अवस्थाएँ (Stages of Development) :-

बालक के विकास की प्रक्रिया को अलग–अलग अवस्थाओं में बांटा गया है। बालक हर एक–दूसरी विकास की अवस्था में अलग–अलग विकास का कार्य सीखता है और उसके अनुसार व्यवहार करता है। विकास के सभी अवस्थाओं के उम्र के अनुसार बांटा गया है।

हरलॉक के अनुसार विकास की अवस्थाएं–(Prenatal Periods)–

1. गर्भकालीन अवस्था–यह गर्भधारण से जन्म तक होता है।
2. शैशवावस्था (Infancy) –जन्म से लेकर 2 सप्ताह तक
3. शिशुकाल (Babyhood) –14 दिनों के बद से 2 वर्ष तक
4. पूर्व बाल्यावस्था (Early Childhood)– 3 वर्ष से 6 वर्ष तक
5. उत्तर बाल्यावस्था (Late Childhood)-6 वर्ष से 14 वर्ष तक
6. किशोरावस्था (Adolescence) 12/13 वर्ष से 20/21 वर्ष तक

- ❖ पूर्व किशोरावस्था – 11 वर्ष से 17 वर्ष तक
- ❖ उत्तर किशोरावस्था–17 वर्ष से 21 वर्ष तक

7. प्रौढ़ावस्था (Adulthood) - 21 वर्ष से 40 वर्ष तक
8. मध्यावस्था (Middle Age) - 40 वर्ष से 60 वर्ष तक
9. वृद्धावस्था (Old Age)- 60 वर्ष से जीवन के अंत तक

सामान्य तौर पर इन अवस्थाओं को दो स्तरें में बांटा जाता है–

1. जन्म से पूर्व की अवस्थायें–

– बीजीय अवस्था (0–7 दिन) 1 सप्ताह
– भ्रूण अवस्था (2 से 8 सप्ताह = 2 माह)
– गर्भस्थ शिशु अवस्था (3 माह से जन्म तक)

2– जन्म के बाद की अवस्थाएं–

– शैशवावस्था (0–5 वर्ष)
– बाल्यावस्था (6–12 वर्ष)
– किशोरावस्था (13–18)
– प्रौढ़ावस्था (27–40)
– मध्यावस्था (40–60 वर्ष)
– वृद्धावस्था (60–मृत्यु तक)

अवस्थाएँ (Stages) :

1. गर्भकालीन अवस्था (Prenatal Stage) :

- ❖ गर्भाधान से लेकर जन्म तक की अवधि को प्रसवपूर्व काल कहा जाता है। Average यह 40 सप्ताह का समय होता है।
- ❖ इस अवस्था में आनुवांशिक तथा परिवेशीय कारक बालक के विकास को प्रभावित करते हैं।
- ❖ इस अवस्था में बालक माँ की विशेषताओं से भी प्रभावित होता है।
- ❖ माँ का कोई रोग या संक्रमण ग्रस्त होना इस अवस्था के विकास पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है।

2. शैशवावस्था (Infancy) :

वैसे तो विकास Prenatal Stage से ही शुरू हो जाता है परन्तु विकास की वास्तविक पहली अवस्था शैशवावस्था को ही माना जाता है। इसकी अवधि (0–5) वर्ष मानी जाती है। यह अवस्था, बाकी अवस्थाओं का आधार मानी जाती है।

विभिन्न मतों के अनुसार :–

1. **'वाटसन'** के अनुसार–''शैशवावस्था में सीखने की सीमा और गति विकास की अन्य अवस्थाओं की तुलना में बहुत अधिक होती है।'' वाटसन ने तीन मूल Emotions भय, क्रोध व प्रेम बच्चे में माने हैं।
2. **'फ्रायड'** के अनुसार–''मनुष्य को जो कुछ बनना होता है प्रारम्भ के 4–5 वर्षों में ही बन जाता है।''
3. **'एडलर'** के अनुसार–''शैशवावस्था के द्वारा जीवन का पूरा क्रम निर्धारित होता है।''
4. **'मान्टेसरी व फ्रोबेल'** के अनुसार–''इस अवस्था में बच्चे की मानसिक क्रियायें तेजी से बढ़ती है।''
5. **'थार्नडाइक'** के अनुसार–''3–6 वर्ष तक के बच्चे प्रायः अर्द्धस्वप्नों की दशा में रहते हैं।''

शैशवावस्था की विशेषताएँ (Characteristics of Infancy) :-

- ❖ इस अवस्था में बच्चे का शारीरिक व मानसिक विकास तीव्र गति से होता है जैसे–लम्बाई, वजन, चिन्तन, स्मृति आदि।
- ❖ इस अवस्था में कोशिकाओं के मध्य तंत्रिकीय संधि (Nerve Joint) तीव्र गति से विकसित होती है।
- ❖ इस अवस्था में शिशु अनेक तरह की क्रियायें करता है जैसे–चूसना, निगलना तथा मल,मूत्र का त्याग करना।
- ❖ इस अवस्था को जीवन का अबोधकाल कहा जाता है।
- ❖ बच्चे के व्यवहार में अनुकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। वह जैसे अपने माता–पिता या भाई–बहन को करते हुए देखता है,वैसे ही करने का प्रयास करता है।
- ❖ इस अवस्था में शिशु दूसरों पर निर्भर रहता है। जैसे–खाना–पीना, कपड़े या फिर घूमने के लिए।
- ❖ बच्चे का व्यवहार मूल प्रवृत्तियों पर आधारित होता है, जैसे–बच्चा किसी भी सामान को उठाकर उसे चूसने लगता है, रूठने पर अपने गुस्से को बोलकर या किसी क्रिया के द्वारा प्रकट करता है।
- ❖ इस अवस्था में बच्चा या तो अनुकरण (Imitation) से सीखता हैया फिर दोहराव (Repetioin) से।
- ❖ इस अवस्था में बच्चा थोड़ा Selfish भी होता है। वह चाहता है कि सभी उसे ही प्यार करें और उसे ही Attention दें।
- ❖ 3 वर्ष की आयु से उसमें सामाजिक भावना का विकास होने लगता है।
- ❖ इस अवस्था में शिशु न तो नैतिक होता है और न ही अनैतिक। वह गलत सही के अन्तर को ठीक से नहीं समझ पाता है।
- ❖ जन्म के समय शिशु में 270 हडिड्यां होती है।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

- ❖ इस अवस्था में जन्म के समय एक चौथाई (1/4) भाग सिर होता है।
- ❖ बालक अन्तर्मुखी होता है।
- ❖ इस अवस्था में शिशु में काम प्रवृत्ति प्रबल होती है–'फ्रायड' के अनुसार।

शैशवावस्था में शिक्षा का स्वरूप (Nature of Educationin Infancy) :-

शैशवावस्था को अधिगम हेतु आदर्शकाल माना जाता है इसलिए इस अवस्था में ऐसी शिक्षा होनी चाहिए जिससे शिशु का सर्वांगीण विकास हो सके।

- ❖ इस अवस्था में शिक्षा की व्यवस्था करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।
- ❖ बच्चों की रूचि खेल में जन्म से ही होती है इसलिए बच्चों को खेलने के अवसर दिये जाने चाहिए। बच्चे जब एक दूसरे के साथ खेलते हैं तो उनका नैतिक व सामाजिक विकास होता है।
- ❖ इस अवस्था में बच्चों को अपना कार्य स्वतंत्रतापूर्वक करने देना चाहिए जिससे उनमें आत्म विश्वास की भावना विकसित हो।
- ❖ इस अवस्था में अधिक से अधिक चित्रों व कहानियों के माध्यम से बच्चों को सिखाना चाहिए।
- ❖ समाज में रहने योग्य बनाने के लिए बच्चे को सामाजिक मूल्यों व आदर्शों का ज्ञान देना अति आवश्यक है।
- ❖ बच्चों में सही आदतों के निर्माण के लिए उन्हें उचित शिक्षा देनी चाहिए जैसे– समय पर उठना, सोना, खाना, पढ़ना आदि।
- ❖ इस अवस्था में बच्चे बहुत जिज्ञासु होते हैं। वे बात–बात पर प्रश्न करते हैं। उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए उनके प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करें।

3. बाल्यावस्था (Childhood) :-

मनोवैज्ञानिकों ने बाल्यावस्था को व्यक्ति के जीवन की निर्माणकारी अवस्था बताते हुए कहा है कि इस अवस्था में बच्चे में जो आदतें व गुण विकसित हो जाते हैं,उनमें आगे जाकर परिवर्तन करना कठिन होता है। इसकी अवधि 6–12 वर्ष मानी जाती है।

विभिन्न मतों के अनुसार–

1. 'कोल' व 'ब्रूस' के अनुसार–''यह अवस्थ जीवन का अनोखा काल है। इस अवस्था में बालक के शारीरिक,मानसिक, सामाजिक,सांवेगिक आदि सभी पक्षों का विकास होता है।
2. 'ब्लेयर', 'जोन्स' व 'सिम्पसन' के अनुसार– बाल्यावस्था वह समय है जब व्यक्ति के मूलभूत दृष्टिकोणों (Basic Point of View), मूल्यों (Values) व आदर्शों का बहुत बड़ी सीमा तक निर्धारण होता है।''
3. 'स्ट्रैंग' के अनुसार–''6, 7, व 8 वर्ष के बच्चों में अच्छे बुरे के ज्ञान का एवं न्यायपूर्ण व्यवहार व सामाजिक मूल्यों की भावना का विकास होने लगता है।''

बाल्यावस्था की विशेषताएँ (Charactristics of Childhood) :-

- शैशवावस्था की तुलना में, इस अवस्था में मूल रूप से पूर्व बाल्यावस्था में बच्चे में वृद्धि मंद हो जाती है।
- बच्चे का सामाजिक विस्तार होता है अर्थात उसके माता–पिता के अलावा अब परिवार, पड़ोसी, शिक्षक उसके जीवन में आते हैं।
- बाल्यावस्था के दौरान बच्चों की शारीरिक क्षमता बढ़ जाती है।
- मानसिक परिपक्वता (Maturity) बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में योगदान देती है

- ❖ इस अवस्था में स्व–लिंगी प्रेम विकसित होता है अर्थात बालक बालकों से तथा बालिका, बालिकाओं से प्रेम करती हैं।
- ❖ इस अवस्था में बालक के दूध के दाँत गिर जाते है व स्थाई दांत आने लगते हैं।
- ❖ ध्यान,मनन, संवेदन, तर्क व विवेक की शक्तियों का विकास होता है।
- ❖ चीजों को इकट्ठा करके रखने की प्रवृत्ति होती है।
- ❖ इस अवस्था में बालक रचनात्मक (Creative) होने लगता है। जैसे वह मिट्टी, कंकड़, लकड़ी से कुछन कुछ बनाने क प्रयास करता है।
- ❖ जिज्ञासा की प्रवृत्ति प्रबल होती है।
- ❖ बालक की प्रवृत्ति बर्हिमुखी (Extrovert) होती है। उसका Interest बाहर की दुनिया में बढ़ने लगता है।
- ❖ बच्चे सामूहिक खेलों को अधिक खेलते है।
- ❖ Emotions पर बुद्धि नियंत्रण करने लगती है।
- ❖ बच्चे का नैतिक विकास होने लगता है जिसके कारण वह अपने माता–पिता, अध्यापक व अन्य लोगों की आज्ञा का पालन करता है।
- ❖ हडिड्यों की संख्या 250 होती है।

बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरूप :–

बाल्यावस्था में शिक्षा का महत्व और बढ़ जाता है क्योंकि बच्चों की समझ काफी हद तक विकसित हो जाती है। इस अवस्था में शिक्षा की व्यवस्था करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. नैतिक शिक्षा के माध्यम से नैतिक मूल्यों की शिक्षा दी जानी चाहिए।

2. इस अवस्था में बच्चे Creative होते हैं इसलिए उन्हें कढ़ाई–सिलाई, बुनाई आदि की शिक्षा भी दी जानी चाहिए।

3. संग्रह करने की प्रवृत्ति होने के कारण उन्हें भिन्न–भिन्न विषयों से संबंधित चित्रों को इकट्ठे करने के लिए प्रेरित करें।

4. बच्चों की वैयक्तिक भिन्नता (Individual Differences) को ध्यान में रखकर पाठ्य सहगामी क्रियायें करवानी चाहिए।

5. विभिन्न विषयों की विषयवस्तु (Subject Matter) उनकी रूचि, बुद्धि स्तर के अनुरूप होनी चाहिए।

6. भाषा सीखने का महत्वपूर्ण काल है इसलिए बच्चों के भाषा विकास पर बल देना चाहिए।

7. 3 वर्ष – उछलना, कूदना, ब्लॉक बनाना।
   4 वर्ष–चित्रात्मक पहेलियों को जोड़ना।

4. किशोरावस्था (Adolescence) :-

यह व्यक्ति के जीवन में बाल्यावस्था व प्रौढ़ावस्था के बीच की अवस्था है। किशोरावस्था को जीवन की उस अवस्था के रूप में माना जाता है जिसकी शुरूआत यौवन के आरंभ से होती है, जब यौन परिपक्वता या प्रजनन करने की योग्यता प्राप्त कर ली जाती है। इस अवस्था में किशोर के शारीरिक,मानसिक, सामाजिक व संवेगात्मक विकास में क्रान्तिकारी परिवर्तन आते हैं। नवीन इच्छायें व भावनायें उन्हें आन्दोलित करती है।

मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न मतः–

1. 'जार्सिल्ड' के अनुसार–''किशोरावस्था वह अवस्था है जिसके द्वारा एक विकासशील व्यक्ति बल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था तक पहुंचता है।''

2. 'आइजेक' के अनुसार–''किशोरावस्था वयः सन्धि के बाद की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति में आत्म उत्तरदायित्व का स्थापन (Installation) होता है।

3. 'किलपैट्रिक' के अनुसार–''उनका कहना है कि इस बात पर कोई मतभेद नहीं हो सकता है कि–किशोरावस्था जीवन का सबसे कठिन काल है।

4. 'स्टेनले हॉल' के अनुसार–''किशोरावस्था बड़े बल,तनाव, तूफान व विरोध की अवस्था है।''

किशोरावस्था की विशेषताएँ (Characterstics of Adolescence) :-

किशोरावस्था की विशेषताओं को कुछ भागों में बांटकर जनते है–

1. शारीरिक पक्ष (Physical Approach) :-

इस अवस्था में शारीरिक रूप से होने वाले परिवर्तन निम्नलिखित है :–

1. इस अवस्था में लंबाई तीव्र गति से बढ़ती है। लड़कियों की लंबाई 16 वर्ष तक लगभग पूर्ण हो जाती है तथा लड़कों की लम्बाई 18 वर्ष के बाद भी बढ़ती है। लड़कों के भार में ज्यादा वृद्धि होती है।
2. इस अवस्था में हड्डियों का विकास भी बहुत तेजी से होता है।
3. 16 वर्ष की अवस्था तक मस्तिष्क का विकास पूरा हो जाता है।
4. इस अवस्था में लड़कों में लड़कों की दाढ़ी व मूँछ बढ़ने लगती है।
5. लड़के–लड़कियों के प्रजनन अंगों का विकास पूर्ण हो जाता है।
6. लड़कों की आवाज भारी हो जाती है तथा लड़कियों की कोमल व नुकीली।

2. मानसिक पक्ष (Mental Aspect) :-

1. किशोरावस्था में बुद्धि का अधिकतम विकास हो जाता है।

2. इस अवस्था में किशोरों में विचार–विमर्श की योग्यता विकसित हो जाती है।

3. किशोर इस अवस्था में प्रत्येक घटना, व्यक्ति या विषय के सम्बन्ध में काफी सोचने लगते हैं तथा कल्पनायें करते हैं।

4. इस अवस्था में स्थायी स्मृति का विकास हो जाता है।

5. इस अवस्था में किशोर अपने आने वाले जीवन के लिए प्लानिंग करने लगते हैं।

6. किशोरावस्था में रूचियों व अभिव्यक्ति का विकास भी तेजी से होता है। वे रूचि कहानी, नाटक, उपन्यास पढ़ने में अधिक लेते है।

7. सिनेमा व टेलीविजन देखने में रूचि लेते है।

3. संवेगात्मक पक्ष (Emotional Aspect) :-

1. इस अवस्था में Emotions में बहुत तेजी से परिवर्तन होता है। इसलिए इस अवस्था को 'संवेगों की अवस्था' भी कहते है।

2. ' हरलॉक' के अनुसार–''किशोरावस्था बढ़ी हुई संवेगात्मक तनाव (Emotional Tension) की अवस्था है जो उसके शारीरिक व ग्रन्थीय परिवर्तनों के कारण इस अवस्था में होता है।''

3. इस अवस्था में Emotions में उतार–चढ़ाव आते है। 'तनाव व दबाव' की अवस्था कहा जाता है।

4. किशोर इस अवस्था की शुरूआत में अपने Emotions को छिपा नहीं पाते है। उनके हाव–भाव देखकर उनके Emotions का पता चल जाता है। लेकिन धीरे–धीरे अपने Emotions को वो कंट्रोल करने लगते है।

5. क्रोध, भय, घृणा, ईर्ष्या, प्रेम आदि संवेगों का तीव्र प्रवाह इस अवस्था में होता है।

6. इस अवस्था में काम भावना का विकास भी तीव्र गति से होता है, इसके अन्तर्गत तीन बातें दिखाई पड़ती है।

- ❖ स्वप्रेम (Auto Erotism)
- ❖ समलिंग कामुकता (Homo- Sexuality)
- ❖ विषमलिंग कामुकता (Hetero Sexuality)

4. सामाजिक पक्ष (Social Aspects) :-

1. इस अवस्था में किशोरों की पूरी निष्ठा अपने दोस्तों के प्रति होती है। 'विग्गी' एण्ड 'हैन्ट' के अनुसार–''जिन समूहों से किशोर का संबंध होता है उनके लगभग सभी Activities से वे प्रभावित होते हैं। भाषा में, नैतिक मूल्यों (Moral Values) में खाने–पहनने में सभी चीजों में वो अपने ग्रुप से affect होता है।
2. किशोर समाज में अपना स्थान ढूंढने क प्रयास करते हैं। वे चाहते हैं कि माता–पिता, मित्र, पड़ोसी व अध्यापक उनकी प्रशंसा करें,उन्हें Value दें।
3. उनमें समाज–सेवा की भावना तीव्र होती है।
4. इस अवस्था में लड़के–लड़कियां एक–दूसरे के प्रति आकर्षित होती है।
5. इस अवस्था में किशोर अपने व्यवसाय के प्रति भी जागरूक हो जाते हैं।
6. किशोरों में अच्छे–बुरे, सही–गलत में अन्तर करने की क्षमता का विकास हो जाता है।

किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप

(Nature of Education in Adolescence)

यह अवस्था समस्याओं की अवस्था भी है इसलिए किशोरावस्था में शिक्षा का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। शिक्षा की व्यवस्था में निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

- इस अवस्था में शारीरिक विकास में बहुत बदलाव आते है इसलिये किशोरों को शारीरिक विकास के प्रति शिक्षित व सचेत करना अनिवार्य है। खेल, व्यायाम व पौष्टिक आहार उनक`लिए बहुत आवश्यक है।
- बौद्धिक विकास के लिए बौद्धिक व्यायाम भी बहुत आवश्यक है। बौद्धिक गतिविधियाँ जैसे–पहेलियाँ, समस्या–समाधान, वाद–विवाद आदि।
- किशोरों को उनके संवेगों (Emotions) पर नियंत्रण करना भी सिखाया जाना चाहिए जैसे–प्रेम, क्रोध, ईर्ष्या, भय आदि।
- किशोरों को सामाजिक प्रवृत्ति जैसे–ईमानदारी, सहयोग, अनुशासन आदि की शिक्षा भी देनी चाहिये। जिससे वे व्यवहारिक बनें, अच्छी आदतों का विकास करें।
- किशोरों की रूचियों को ध्यान में रखते हुए पाठयक्रम में विविधता होनी चाहिए। पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों का समावेश होनाचाहिए जो उनकी मानसिक शक्तियों का अधिकतम विकास करें।
- शिक्षण के दौरान उपर्युक्त शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाना चहिए जिनसे उनको स्वयं निरीक्षण (Self Assessment) परीक्षण, चिन्तन,तर्क करने का अधिक से अधिक अवसर मिले।
- किशोरों को धार्मिक व नैतिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए जिसमें उनमें सही–गलत की समझ का विकास हो सके।
- किशोरों की रूचियों के अनुसार उनका भविष्य के व्यवसाय के लिए मार्गदर्शन करना चाहिये।
- किशोरों को शैक्षिक भ्रमण (Educational Tour) कराने चाहिए जिससे उनकी जानकारी बढ़े।
- यौन अवस्था, किशोरावस्था की सबसे जटिल व नाजुक अवस्था है इसलिए आवश्यक है कि उन्हें Sex Education दी जाये।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

'रॉस' के अनुसार–''यौन शिक्षा की परम आवश्यकता को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता है। इस बात की जरूरत है कि किशोरों को एक ऐसे वयस्क द्वारा गोपनीय शिक्षा दी जानी चाहिए जिस पर उसे पूर्ण विश्वास हो।''

- ❖ किशोरों को विभिन्न सृजनात्मक कार्यों, संगीत,कला, आदि में सृजनात्मक रूप से आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

5. प्रौढ़ावस्था (Adulthood) :–

- ❖ अवस्था का समय – 21 से 40 वर्ष
- ❖ यह दायित्वों का निर्वहन करने की अवस्था है।
- ❖ जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं जैसे–नौकरी, विवाह, बच्चों को जन्म देने का यह उपयुक्त समय होता है।
- ❖ इस अवस्था का एक प्रमुख कार्य है जीविका तलाशना (Job or Work)
- ❖ यह विवाह का उपयुक्त समय होता है। वैवाहिक जीवन में एक–दूसरे को समझना और समायोजन करना बहुत आवश्यक है।

6. वृद्धावस्था (Old Age) :-

- ❖ अवस्था का समय– 60 वर्षसे जीवन भर।
- ❖ परंपरागत रूप से सेवानिवृत्ति (Retirement) को वृद्धावस्था से जोड़ा जाता है।
- ❖ वृद्ध वयस्क को पारिवारिक संरचना में परिवर्तन तथा नयी भूमिकाओं (दादा–नाना, नानी) से समायोजन (Adjust) करने की आवश्यकता होती है।

बाल विकास का क्षेत्र

(SCOPE OF CHILD DEVELOPMENT)

बाल विकास के क्षेत्र के अन्तर्गत जिन समस्याओं या विषय–सामग्री का अध्ययन किया जाता है वो निम्नलिखित है :–

1. बाल विकास के नियम,सिद्धांत
2. वंशानुक्रम व वातावरण
3. बाल विकास की अवस्थाएं
4. शारीरिक विकास
5. मानसिक विकास
6. संवेगात्मक विकास, संज्ञानात्मक विकास
7. भाषा का विकास
8. सामाजिक विकास
9. नैतिक विकास
10. बुद्धि
11. सृजनात्मकता
12. व्यक्तित्व
13. समायोजन की समस्या
14. बाल विकास में खेल

बाल विकास का महत्व

(IMPORTANCE OF CHILD DEVELOPMENT)

बाल विकास के अध्ययन के द्वारा ही आप बच्चे के विकास के सभी पहलुओं को समझ सकते हैं। शारीरिक विकास, मानसिक विकास, सामाजिक विकास, सांवेगिक (Emotional) विकास आदि को समझकर ही आप अपने बच्चे का सम्पूर्ण विकास कर सकते हैं।

बात करते हैं इसके महत्व के कुछ मुख्य बिंदुओं पर–

- सभी बच्चों का विकास समान गति व समान रूप से नहीं होता है इसलिए वैयक्तिक भिन्नता को जानने के लिए बाल विकास को जानना बहुत आवश्यक है।
- विकास की अलग–अलग अवस्थायें होती है और उनमें भिन्न–भिन्न बदलाव बच्चे में होते है। अगर आप इन अवस्थाओं से परिचित होंगे तो भली–भांति बच्चे में हो रहे परिवर्तनों को समझ पायेंगे और उन्हें सही दिशा देने का प्रयास करेंगें।
- बच्चे का व्यवहार कैसा है? बच्चा किस विषय में रूचि ले रहा है? ये सभी बातें बाल विकास के अध्ययन से ही ज्ञात होती है।
- बाल विकास में आप समाजीकरण के बारे में अध्ययन करते है और बच्चे को सही–गलत, अच्छा–बुरा इन सबका मार्गदर्शन करते हैं।
- बाल विकास का अध्ययन बालक पर वातावरण के प्रभाव, चरित्र निर्माण आदिपर बल देता है।

बाल विकास को प्रभावित करने वाले कारक

(FACTORS AFFECTING CHILD DEVELOPMENT)

मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि प्रत्येक बालक अपने वंशानुक्रम व वातावरण का ही परिणाम होता है। इसी को ध्यान में रखकर ही वैयक्तिक भिन्नता (Individual difference) के Concept को महत्व दिया जाता है।

हम सब लोगों में तरह–तरह की भिन्नतायें होती हैं जैसे कुछ लोगों की त्वचा का रंग सांवला है तथा कुछ का गोरा, कुछ लंबे हैं कुछ छोटे, कुछ शांत रहना पसन्द करते हैं और कुछ मस्ती में। इसका अर्थ है कि न केवल शारीरिक बल्कि

मानसिक रूप से, सांवेगिक रूप से, रूचियों में, योग्यताओं में भिन्नता पाई जाती है। हम सब में समानता है तो ये कि हम सब मानव है।

ये सभी भिन्नतायें दो कारकों से सबसे ज्यादा प्रभावित होती हैं–

1. वंशानुक्रम (Heredity)
2. वातावरण (Environment)

वंशानुक्रम/आनुवांशिकता (Heredity) :-

वंशानुक्रम को Heridity कहते है। ये लैटिन भाषा के शब्द 'Hereditas' से बना है जिसका अर्थ 'वह पूंजी है जो बालक को अपने माता–पिता से उत्तराधिकार के रूप में मिलती है। सामान्य भाषा में वंशानुक्रम का अर्थ है एक पीढ़ी (Generation) से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित (Transfer) होने वाले बौद्धिक, शारीरिक व अन्य गुण।

वंशानुक्रम को जानने व समझने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई कुछ परिभाषायें निम्न हैं–

1. 'B.N. Jha' - ''वंशानुक्रम व्यक्ति की जन्मजात विशेषताओं का सम्पूर्ण योग है।''
2. 'वुडवर्थ'–''वंशानुक्रम के अन्तर्गत वे समस्त बातें आ जाती हैं जो जीवन प्रारम्भ करते समय, जन्म के समय नहीं बल्कि गर्भधारण के समय जन्म से लगभग नौ महीने पहले व्यक्ति में उपस्थित थीं।''
3. 'पीटरसन'–''एक व्यक्ति अपने माता–पिता द्वारा पूर्वजों के वंश से जो कुछ भी अर्जित करता है, उसे वंशानुक्रम कहा जाता है।''
4. 'डगलस 'व 'हॉलैण्ड'–''एक व्यक्ति के वंशानुक्रम में वे समस्त शारीरिक बनावटें, शारीरिक विशेषतायें, कार्य या क्षमतायें उपस्थित रहती हैं जिनके वह अपने माता–पिता व अन्य पूर्वजों से प्राप्त करता है।''

5. 'रूथ बेनेडिक्ट'–''माता–पिता से संतान को हस्तान्तरित होने वाले गुणों को वंशानुक्रम कहते हैं।''

वंशानुक्रम की प्रक्रिया

(PROCESS OF HEREDITY)

मानव शरीर अनेक कोषों से मिलकर बना होता है। मात्र एक कोष से शरीर का निर्माण होता है जिसे 'संयुक्त कोष' कहते हैं। यह कोष पितृ कोष व मातृ कोष का योग होता है। प्रत्येक स्त्री व पुरूष में गुण–सूत्रों की संख्या 23–23 होती है। गुण्सूत्रों के ये 23 जोड़े उस संयुक्त कोष में होते है। 1 गुणसूत्र में 40–100 जीन्स होते हैं और प्रत्येक जीन्स एक गुण का निर्माण करता है। यही वजह है कि 'जीन्स' को 'वंशानुक्रम–निर्धारक' कहा जाता है। Genes के द्वारा ही मानसिक व शारीरिक गुण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाते हैं।

'सोरेन्सन' के अनुसार–''जीन्स बालकों की मुख्य विशेषताओं का निर्धारण करते हैं।''

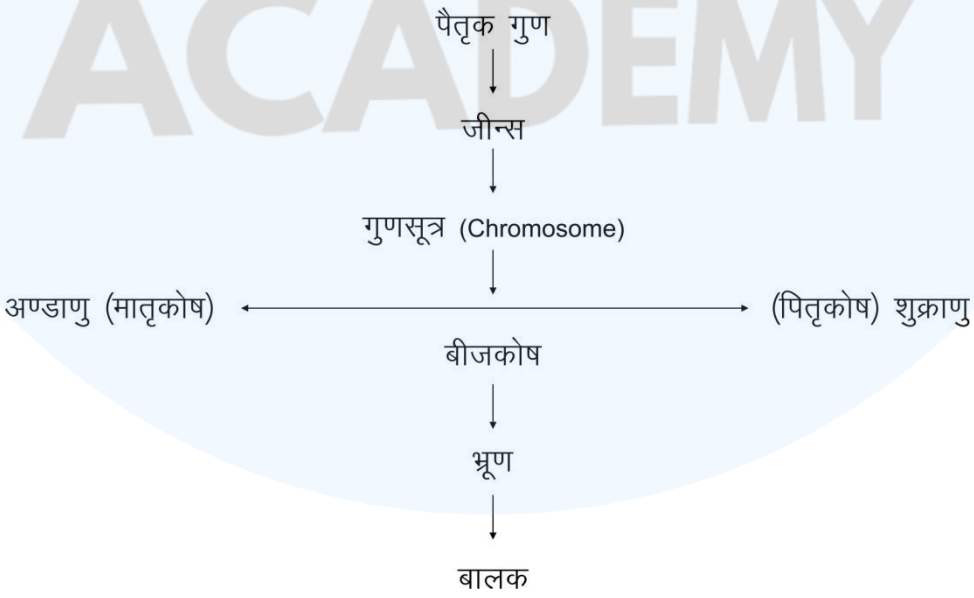

वंशानुक्रम के नियम (सिद्धांत)

(PRINCIPLES OF HEREDITY)

वंशानुक्रम निम्न नियमों पर आधारित होता है–

1. समानता का नियम (Law of Resemblance)
2. विभिन्नता का नियम (Law of Variation)
3. बीज कोष की निरन्तरता का नियम (Law of Continuity of germ plasm)
4. मैंडल का नियम (Law of Mendal)
5. प्रत्यागमन का नियम (Law of Regression)

1. समानता का नियम (Law of Resemblance) :-

समानता का नियम कहता है कि माता–पिता के समान ही उनकी सन्तान होती है। यदि माता–पिता धार्मिक प्रवृत्ति के है तो पूरी सम्भावना है कि बच्चे भी धार्मिक हों। 'सोरेनसन' का विचार है कि ''बुद्धिमान माता–पिता के बालक बुद्धिमान, सामान्य माता–पिता के सामान्य तथ मन्दबुद्धि माता–पिता के बालक भी मन्दबुद्धि होते हैं।'' शारीरिक दृष्टिसे भी बच्चे माता–पिता जैसे दिखते हैं।

2. विभिन्नता का नियम (Law of Variation) :-

यह नियम कहताहै कि बच्चे अपने माता–पिता के पूर्ण रूप से समान नहीं होते है। न ही मानसिक और न ही शारीरिक गुणों में। ऐसा हो सकता है कि सामान्य बुद्धि माता–पिता का बच्चा बहुत बुद्धिमान हो या छोटे कद के माता–पिता का बच्चा लम्बा हो। 'सोरेनसन' का मत है कि ''इस भिन्नता का कारण, माता–पिता के उत्पादक कोषों (Productive Cells) की विशेषताएं है।'' Productive Cells में

विभिन्न Genes होते हैं, जो भिन्न–भिन्न प्रकार से मिलकर एक–दूसरे से अलग बच्चों का निर्माण करते हैं।''

3. बीज कोष की निरन्तरता का नियम (Law of Continuity of Germ Plasm) :-

यह नियम 'बीजमैन' (Weisman) द्वारा दिया गया है। उनके अनुसार बीजकोष, जो बच्चे को जन्म देता है, वह कभी भी नष्ट नहीं होता है। ''बीजकोष का कार्य मात्र उत्पादक कोषों (Productive Cells) का निर्माण करना है। जो बीजकोष बच्चे माता–पिता से प्राप्त करते हैं उसे वे अगली पीढ़ी (Generation) में Transfer करते है।''

4. मैंडल का नियम (Mendal's Law) :-

यहनियम 'मैंडल' के द्वारा दिया गया है। मैंडल ने अपने प्रयोग मटर व चूहों पर किये। मैंडल ने छोटी व बड़ी मटरों को बराबर की संख्य में मिलाकर बगीचे में बोया। बगीचे में जितने भी मटर उगने वाली थी, उनकी जाति वर्णसंकर (Hybrid) थी। अतः मैंडल ने Hybrid मटरों को पुनः बोया तथा उन उगने वाली मटरों को वह लगातार बोता रहा। इस प्रकार अंत में उन्हें शुद्ध मटर प्राप्त हुई।

5. प्रत्यागमन का नियम (Law of Regression) :–

यह नियम कहता है कि बच्चे में अपने माता–पिता से विपरीत गुण पाये जाते हैं। जैसे मन्द बुद्धि माता–पिता के बच्चे प्रतिभाशाली हो सकते हैं। 'सोरेनसन' के अनुसार–''अत्यधिक तीव्र बुद्धि वाले माता–पिता से कम तीव्र बुद्धि वाले बालक होने की प्रवृत्ति तथा निम्न कोटि के माता–पिता से कम निम्न कोटि के बालक होने की प्रवृत्ति ही प्रत्यागमन है।''

बालक पर वंशानुक्रम का प्रभाव (Effect of Hereditыon the Child) :-

बालक पर वंशानुक्रम का बहुत अधिक और गहरा प्रभाव पड़ता है। वंशानुक्रम, मनोवैज्ञानिकों के लिए एक अत्यन्त रूचिकर व महत्वपूर्ण विषय है। इसलिए इन्होंने इस विषय पर अनेक अध्ययन किये हैं जैसे–

- ‘गाल्टन’ के अनुसार–‘‘व्यक्ति की बुद्धि और प्रतिभा का निर्धारण वंशानुक्रम से होता है। उनके अनुसार, प्रतिभाशाली माता–पिता के बालक भी प्रतिभाशाली होते हैं।’’
- ‘कार्ल पियर्सन’ के अनुसार–‘‘व्यक्ति के व्यक्तित्व पर वातावरण की अपेक्षा वंशानुक्रम का प्रभाव सात गुना अधिक होता है।’’
- वंशानुक्रम का प्रभाव बच्चे के स्वभाव पर भी पड़ता है। व्यक्ति की प्रकृति जीन्स पर निर्भर करती है। शरीर की निश्चित कोशिकाओं (Cells) की रचना ही स्वभाव को प्रभावित करती है।
- वंशानुक्रम व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसकी बौद्धिक क्षमताओं (Intellectual Capabilities) को भी प्रभावित करता है। प्रत्येक बालक,कुछ Special Qualities लेकर पैदा होता है जो उसके व्यक्तित्व का निर्माण करती है जो बौद्धिक क्षमतायें माता–पितामें होती हैं जीन्स के माध्यम से वे बच्चों में आती हैं।
- पिता के गुण सूत्रों द्वारा लिंग निर्धारण होता है।
- व्यक्ति का रंग–रूप, लम्बाई, आँखों का रंग ये सब वंशानुक्रम ही निर्धारित करता है।
- वंशानुक्रम व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को भी प्रभावित करता है। जैसे– गुणवान एवं प्रतिष्ठावान माता–पिता की सन्तान भी प्रतिष्ठा अर्जित करती है।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

2. वातावरण (Environment) :-

वातावरण, बच्चे के विकास को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। वातावरण वह है जो हमारे चारों ओर विद्यमान है। कोई भी बाह्य वस्तु जो हमें घेरे हुए है और हमें Affect करती है, पर्यावरण का ही अंग है।

कुछ परिभाषायें निम्न हैं–

1. 'एनास्टसी' केअनुसार–''वातावरण वह प्रत्येक वस्तु है जो व्यक्ति के पैतृको के अलावा हर वस्तु को प्रभावित करती है।''
2. 'रॉस' के अनुसार–''वातावरण वह बाह्य शक्ति है,जो हमें प्रभावित करती है।''
3. 'वेल्ड' के अनुसर–''किसी व्यक्ति का वातावरण उन सब उत्तेजनाओं का पूर्ण योग होता है, जो गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त प्राप्त होती है।''
4. 'वुडवर्थ' के अनुसार–''वातावरण में वे समस्त बाहरी तत्व आ जाते हैं जिन्होंने व्यक्ति को जीवन प्रारम्भ करने के समय से प्रभावित किया है।''
5. 'डगलस व हॉलेण्ड' के अनुसार–''वातावरण शब्द को उन समस्त बाहरी शम्तियों, प्रभावों व दशाओं का साथ में वर्णन करने हेतु प्रयुक्त किया जाता है जो जीवित प्राणियों के जीवन, व्यवहार, बुद्धि, विकास तथा Maturity को प्रभावित करता है।''

बालक पर वातावरण का प्रभाव

(EFFECT OF ENVIRONMENT ON CHILD)

वातावरण का प्रभाव हम सभी पर पड़ता है। उसी प्रकार बच्चों को भी यह प्रभावित करता है। बच्चे के जीवन के किस–किस पक्ष पर इसका प्रभाव पड़ता है, आइये जानते हैं–

'कैंडोल' के अनुसार–''बालक की बुद्धि पर वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है।'' यदि हमारे परिवार के सभी लोग शिक्षित होते हैं तो हमारी मानसिक स्थिति भी उसी से प्रभावित होती है और हम भी शिक्षा के क्षेत्र में Interested होते हैं। इसका अर्थ है वातावरण सीधे–सीधे हमारी बुद्धि को प्रभावित करता है।

वातावरण का प्रभाव अनाथ बच्चों को भी बहुत प्रभावित करता है। अनाथालय में यदि उन्हें अच्छा पोषण व शिक्षा दी जाये तो वे अच्छे इंसान बनते हैं। यहाँ सबसे बड़ा Role वातावरण का हो जाता है।

वातावरण जुड़वां बच्चों (Twins) के जीवन पर भी प्रभाव डालता है। यदि दोनों बच्चों को अलग–अलग वातावरण दिया जाये तो उनमें काफी भिन्नतायें आ जाती हैं। जैसे–एक बच्चे को गंव में रखा जाये जहां पर कोई भी Facilities नहीं है तथा दूसरे को शहर में जहां पर सारी सुविधायें हैं। जब वे दोनों बड़े होंगे तो उनकी शिक्षा, रहन–सहन व अन्य चीजों में वो भिन्न होंगे।

व्यक्तित्व के निर्माण में वातावरण का बहुत Important Role होता है। यदि किसी बच्चे को एक समुचित वातावरण मिल जाये तो वह बच्चा एक अच्छा और सफल व्यक्ति बन सकता है। अच्छे वातावरण में रहकर निर्धन व्यक्ति भी अपने व्यक्तित्व का निर्माण करके, सफल हो सकता है।

यहां तक की हमारी शारीरिक संरचना पर भी वातावरण का प्रभाव पड़ता है। हम जिस क्षेत्र में रहते हैं वहां का वातावरण हमें प्रभावित करता है।

वंशानुक्रम व वातावरण का सापेक्षिक महत्व

(COMPARATIVE IMPORTANCE OF HEREDITY AND ENVIRONMENT) :

यह बात बिल्कुल साफ है कि बालक का विकास सर्वाधिक पर्यावरण तथा वंशानुक्रम से प्रभावित होता है। वंशानुक्रम के आधार पर प्राप्त विशेषताओं को ध्यान में रखकर तथा पर्यावरण से सम्बन्धित कुछ अवांछित (Unwanted) तत्वों को

नियंत्रित करके ही किसी बालक का सम्पूर्ण/समुचित विकास किया जा सकता है। कुछ बिंदुओं के माध्यम से इनके सापेक्षिक महत्व को जानते हैं–

- ❖ वंशानुक्रम तथा वातावरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, इन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।
- ❖ 'मैकाइबर व पेज' के अनुसार–''जीवन की सभी घटनायें इन दोनों का परिणाम होती हैं। कोई न तो कभी हटाया ज सकता है और न ही अलग किया जा सकता है।''
- ❖ जिस पर व्यक्ति के लिए भोजन जरूरी है उसी प्रकार पानी भी उतना ही जरूरी है। इसी प्रकार बच्चे के विकास के लिये वंशानुक्रम व वातावरण दोनों कासमान महत्व है। 'वुडवर्थ' के अनुसार–''यह पूछने का कोई अर्थ नहीं निकलता है कि व्यक्ति के विकास हेतु वंशानुक्रम तथा वातावरण में से कौन अधिक आवश्यक है। दोनों ही पूर्णतः महत्वपूर्ण हैं।''
- ❖ बालक वंशानुक्रम व वातावरण का गुणनफल होता है। 'वुडवर्थ' के शब्दों में, ''वंशानुक्रम व वातावरण का सम्बन्ध जोड़ के सदृश न होकर गुणा (Multiplication) के समान अधिक है।''
- ❖ 'काल्सनिक' के अनुसार–''जिस सीमा तक व्यक्ति की शारीरिक रचना को उसके जीन्स निर्धारित करते हैं, उस सीमा तक उसके मस्तिष्क (Mind) तथा स्नायु संस्थान (Nerve Resources) की रचना, उसके अन्य शारीरिक लक्षण, उसकी खेल–कूद संबंधी कुशलता तथा गणित संबंधी योग्यता ये सब बातें वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों पर निर्भर होती हैं।

शिक्षक के लिए वंशानुक्रम तथा वातावरण का महत्व

(IMPORTANCE OF HEREDITY & ENVIRONMENT FOR A TEACHER)

वंशानुक्रम का महत्व (Importance of Heredity) :-

विद्यालय में शिक्षक बच्चे के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किस प्रकार शिक्षक के लिए, बच्चे के संदर्भ में वंशानुक्रम का ज्ञान आवश्यक है, आइये इसकी चर्चा करते हैं–

1. वंशानुक्रम से बच्चे को अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की प्रवृत्तियां मिलती है। शिक्षक कोशिश करता है कि उनकी अच्छी प्रवृत्तियों को ही विकसित करें और गलत प्रवृत्तियों को उनसे दूर करें।
2. शिक्षक, शारीरिक विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है जैसे–खेल और व्यायाम द्वारा।
3. बच्चों में वैयक्तिक भिन्नता वंशानुक्रम के कारण भी होती है इसलिए इस भिन्नता को समझकर, उसके अनुरूप ही शिक्षक को शिक्षण व व्यवहार करनाचाहिए।
4. वंशानुक्रम के कारण होने वाली अधिगम (Learning) सम्बन्धी समस्या के समझकर ही शिक्षक को अधिगम में सहायता करनी चाहिए।
5. शिक्षक को अपना अध्यापन स्तर (Teaching Level) छात्रों के मानसिक स्तर के according रखना चाहिए।

वातावरण (Environement) :-

वातावरण एक व्यापक शब्द/क्षेत्र है जिसमें काफी सारे अन्य क्षेत्र शामिल हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों की बात करते हैं जो हमारे पर्यावरण के अभिन्न अंग है–

1. परिवार (Family) :–

बालक का जीवन परिवर से ही शुरू होता है। वह जन्म लेता है,फिर परिवार में रहना, बोलना ये सब, सीखता है। अतः ये आवश्यक है कि अध्यापक को बच्चे के परिवार की या यूं कहें बच्चे की पृष्ठभूमि की थोड़ी

जानकारी हो जिससेवह बच्चे के अनुकूल उसे शिक्षा दे तथा उसका उचित विकास हो सके। यहां बच्चे का प्राथमिक समाजीकरण होता है।

2. समुदाय (Community) :-

परिवार के बाद बच्चे समुदाय के सम्पर्क में आते है। जहां वो अलग–अलग लोगों से मिलता है। समुदाय की सभ्यता, संस्कृति, आचार–विचार, भाषा आदि के सम्पर्क में आता है। बालक की बोलचाल, वेशभूषा, रहन–सहन इन सब में धीरे–धीरे समुदाय का प्रभाव पड़ता है। समुदाय बच्चे को योग्य–अयोग्य, ईमानदार– बेईमान, साहसी– कायर कुछ भी बना सकता है। अगर आपके समुदाय के लोग सभ्य है तो ये गुण आपको भी सभ्य होने के लिए प्रेरित करेगा।

3. विद्यालय (School) :-

एक निश्चित आयु में बालक विद्यालय के सम्पर्क में आता है। विद्यालय में उसे भिन्न–भिन्न संस्कृति, समाज, भाषा, गुणों व व्यक्तित्व के साथी–सहपाठी मिलते हैं। इन सबका बच्चे के विकास पर प्रभाव पड़ता है। बच्चा इनसे बहुत कुछ सीखता है। विद्यालय में बच्चे का द्वितीयक समाजीकरण होता है। यदि विद्यालय में योग्य शिक्षक हैं, वातावरण अच्छा है, अच्छी कक्षायें हैं तथा पाठ्य सहगामी क्रियाओं की भी अच्छी व्यवस्था है तो बच्चों का निःसन्देह उत्तम विकास होगा।

संज्ञानात्मक विकास (Cognitive Development) :-

संज्ञानात्मक विकास का अर्थ है 'संज्ञान' में विकास अर्थात सोचने,समझने, तर्क करने, समस्या समाधान करने की क्षमता का विकास। इसका सीधा–सीधा सम्बन्ध

आप बौद्धिक विकास (Intellectual Development) से मान सकते हैं। संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया (Process) में प्रत्यक्षीकरण (Perception), संवेदन (Sensation), धारण (Retention), चिन्तन (Thinking), तर्क (Reasoning), Recall Problem Solving ये सभी क्रियायें शामिल हैं। संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में 'जीन पियाजे' (Jean Piaget) का सिद्धांत अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

पियाजे का संज्ञानात्मक विकस का सिद्धान्त

(PIAGET'S COGNITIVE DEVELOPMENT THEORY) :

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास पर बहुत अध्ययन किया और एक theory प्रस्तुत की। पियाजे ने मानव विकास पर एक पुस्तक "The Language of thought of the Child' लिखी है। पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त निम्न तथ्यों पर आधारित है–

- ❖ 'पियाजे' ने फ्रांस के मनोवैज्ञानिक 'बिने' के साथ मिलकर कई वर्षों तक कार्य किया। पियाजे ने बुद्धि के विषय में अपना यह तर्क दिया कि बुद्धि जन्मजात नहीं होती है। उनका मानना है कि जैसे–जैसे बालक की आयु बढ़ती है वैसे– वैसे उसका कार्य क्षेत्र (Work Area) भी बढ़ता है और बुद्धि का विकास भी होता है।
- ❖ पियाजे के अनुसार प्रारम्भ में बच्चा केवल सरल Concept को ही सीखता है और जैसे–जैसे उसका अनुभव बढ़ता है, बुद्धि का विकास होता है,वह जटिल समस्याओं को भी सीखने लगता है।
- ❖ पियाजे बताते हैं कि सीखना (Learning) कोई यांत्रिक (Mechanical) क्रिया नहीं है अपितु एक बौद्धिक प्रक्रिया (Intellectual Process) है।

- ❖ सीखना अर्थात Concept build करना और यह प्रक्रिया सरल से कठिन की ओर चलती है।
- ❖ बालक की सत्य के बारे में चिन्तन (Thinking) करने की शक्ति, परिपक्वता (Maturity); स्तर (Level) व अनुभव (Experience) की अन्तःक्रिया पर निर्भर करती है। कुछ मनोवैज्ञानिक इसे अन्तःक्रियावादी विचारधारा और'सम्प्रत्यय निर्माण का सिद्धांत' भी कहते हैं।

संज्ञानात्मक विकास के घटक

(COMPONENT OF COGNITIVE DEVELOPMENT) :

संज्ञानात्मक विकास के 6 प्रमुख घटक होते हैं–

1. अवधान (Attention)
2. भाषा (Language)
3. अधिगम (Learning)
4. स्मृति (Memory)
5. अनुभूति (Feeling)
6. विचार (Thought)

संज्ञानात्मक विकास की अवधारणा

(Concept of Cognitive Development)

अपने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत में पियाजे ने कुछ पदों (Terms) का उपयोग किया है आइये उनकी चर्चा करते हैं–

1. अनुकूलन (Adaptation)
2. संतुलन (Equilibrium)
3. स्कीमा (Schema)

4. संगठन (Organization)

1. अनुकूलन (Adaptation) :-

पियाजे के अनुसार बच्चों में अपने वातावरण के साथ समायोजन (Adjustment) की प्रवृत्ति (Nature) जन्मजात होती है। इसी प्रवृत्ति को अनुकूलन कहते हैं। अनुकूलन को दो प्रक्रियायें होती हैं।

1. आत्मसात्करण (Assimilation) :-

यह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बालक किसी समस्या का समाधान करने के लिए पहले सीखी हुई योजनाओं का सहारा लेता है। 'पियाजे' के शब्दों में–''नये अनुभव का आत्मसात्करण करने के लिए अनुभव के स्वरूप में परिवर्तन लाना पड़ता है,जिससे वह पुराने अनुभव के साथ मिलजुल कर संज्ञान (Cognition) के नए ढांचे को पैदा कर सके।

समायोजन (Accommodation) :-

पूर्व ज्ञान में परिवर्तन करके वातावरण के साथ तालमेल बनाना ही समायोजन कहलाता है। बालक आत्मसात्करण व समायोजन की प्रक्रियाओं के बीच संतुलन बनाता है। समायोजन, आत्मसात्करण का पूरक मान जाता है।

2. संतुलन (Equilibrium) :

इस प्रक्रिया के द्वारा बच्चा आत्मसात्करण व समायोजन के बीच Balance बनाता है।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

3. स्कीमा (Schema) :

स्कीमा एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जो सूचना को कैसे व्यवस्थित (Arrange) करें और कैसे Process करें, ये बताता है। 'पियाजे' ने 'दीर्घकालिक स्मृति (Long Term Memory) में संग्रहीत सूचना के संगठित समूह'' के लिए 'स्कीमा' शब्द का प्रयोग किया है।

सामान्य शब्दों में बच्चे/मानव के मस्तिष्क में जो बातें पहले से होती हैं अगर वो उनका प्रयोग करके किसी विषय के प्रति एक अवधारणा (Concept) बनाता है तो उसे स्कीमा कहते हैं। ये शिशु में जन्मजात होती है।

4. संगठन (Organization) :-

संगठन का अर्थ है कि विभिन्न क्रियायें जैसे प्रत्यक्षीकरण (Perception) ,स्मृति (Memory), चिंतन (Thinking) व तर्क आदि सभी एक मिलकर कार्य करें।

पियाजे की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएं
(PIAGET'S STAGES OF COGNITIVE DEVELOPMENT) :

पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास को मुख्य रूप से चार अवस्थाओं (Stages) में बांटा हैं–

1. संवेदी गामक अवस्था (Sensory Motor Period)
2. प्राक् संक्रियात्मक अवस्था (Pre-Operational Period)
3. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Concrete operational Period)
4. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operational Period)

1. संवेदी गामक अवस्था (Sensory Motor Period) :-

यह जन्म से 2 वर्ष तक की अवस्था है। इस अवस्था में बच्चा अपनी ज्ञानेंन्द्रियों (Senses) के द्वारा सीखता है–आँख, कान,नाक,जीभ, त्वचा। इस अवस्था को पियाजे ने 6 उप–अवस्थाओं में बांटा हैं–

1. सहज क्रियाओं की अवस्था (Period of Spontaneous Action) :-

यह अवस्था जन्म से 30 दिन तक की अवस्था है। इस अवस्था में बच्चा वस्तु को मुंह में लेकर चूसने की क्रिया सबसे अधिक करता है।

2. प्राथमिक वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था (Stage of Primary Circulat Actions):-

एक महीने से लेकर चार महीने तक की यह अवस्था है। इस अवस्था में बालक की क्रियायें दोहराई जाती हैं तथा एक–दूसरे के साथ समन्वित होती हैं।

3. गौण वृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था (Stage of Secondary circular Actions):

यह अवस्था 4 से 6 माह तक की होती है। इस अवस्था में बच्चा वस्तुओं को स्पर्श व इधर–उधर करता है।

4. गौण स्कीमेटा के समन्वय की अवस्था (Stage of Co-ordinationof Secondary Schemata) :-

यह अवस्था 8 से 12 माह तक होती है। इस अवस्था में बच्चा बड़ों का अनुकरण करने लगता है। वह अपने लक्ष्य को समझता है और उसे कैसे प्राप्त करना है वह भी समझता है।

5. क्षेत्रवृत्तीय अनुक्रियाओं की अवस्था (Stage of Teritary Circular actions) :-

यह अवस्था 12–18 माह की होती है। इस अवस्था में बच्चा Trial and Error के द्वार सीखता है।

6. मानसिक संयोग द्वारा नये साधनों की खोज की अवस्था (Statge of Invention of New means through mental co-ordination) :-

यह अवस्था 18–24 माह की हेती है। इस अवस्था में बच्चा देखी गयी वस्तु की अनुपस्थिति में भी उसके अस्तित्व को समझने लगता है।

छोटे–छोटे शब्दों के बोलने लगता है।

2. पूर्व/प्राक् संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational Period) :

यह 2–7 वर्ष तक की अवस्था है। इस अवस्था में बच्चे का Cognitive Development दो अवस्थाओं में होता है–

1. पूर्व कार्यात्मक संक्रियात्मक अवस्था (Properational Period) :-

यह अवस्था 2–4 वर्ष तक की अवस्था होती है। इस अवस्था में बच्चा अपने आस–पास की वस्तुओं व लोगों में सम्बन्ध को समझने लगता है। अनुकरण (Imitation) व खेल के द्वारा वे ये सब सीखते हैं। इस अवस्था में दो विशेषतायें हैं–

1. चार वर्ष की अवस्था के बच्चे निर्जीव (Non living) वस्तुओं को भी संजीव समझते हैं जिसे 'पियाजे' ने 'जीववाद' (Animism) कहा है।
2. बालक अपने विचार को ही सही मानते हैं। जिसे पियाजे ने 'आत्मकेन्द्रिता' (Egocentrism) कहा है।

2. अन्तर्दर्शी कार्यात्मक संक्रियात्मक अवस्था (Intuitive Operational Period):

यह 4–7वर्ष तक की अवस्था होती है। इस अवस्था में बच्चे भाषा सीखने लगते हैं। बच्चों के दिमाग वस्तुओं के चित्र बनाने लगते हैं तथा वे तर्क करने लगते हैं।

3. मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operational Period) :-

यह अवस्था 7–11 वर्ष तक की होती है। बालक मूर्तक्रियाओं के तथ्यों के समझने लगते हैं। वे वस्तु के आकार, संख्या, राशि, वजन को भी समझने लगते है। समस्या समाधान व तर्क करने की क्षमता भी विकसित होने लगती है। भाषा की योग्यता का विकास इस अवस्था में हो जाता है।

4. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operational Period) :-

यह 11 वर्ष से बाद की अवस्था होती है। इस अवस्था में बच्चे अमूर्त चिन्तन करने के योग्य हो जाते हैं। वे बौद्धिक क्रियायें व समस्या समाधान करने लगते हैं। इस अवस्था में मानसिक योग्यताओं का पूर्ण विकास हो जाता है। इस अवस्था में बच्चे प्रतीकात्मक शब्दों का अर्थ भी समझने लगते हैं।

संज्ञानात्मक विकास और शिक्षा (Cognitive Development and Education) :-

संज्ञानात्मक विकास के अन्तर्गत मानसिक क्रियायें, चिन्तन, तर्क ये सभी पहलू शामिल होते हैं। बच्चे के संज्ञानात्मक विकास में शिक्षा बहुत अधिक महत्वपूर्ण होती है।

अधिगम के लिए बच्चों की शारीरिक व मानसिक दोनों क्षमतायें सक्रिय होना आवश्यक है। बच्चों के लिए शिक्षा/अधिगम का एक ऐसा वातावरण तैयार किया जाना चाहिए जिससे वो अपनी Capabilities का सही दिशा में उपयोग कर सके। अधिगम के लिए सबसे महत्वपूर्ण है बच्चें की वैयक्तिक भिन्नता (Individual

Differences) को जानना। बच्चे की जैविक क्षमतायें (Biological Capabilities), मानसिक क्षमतायें, तर्क व चिन्तन करने की क्षमता, बुद्धि का स्तर ये सभी जानना शिक्षक के लिए अति आवश्यक है। शिक्षक इन भिन्नताओं को समझकर ही अपनी शिक्षण विधियों तथा प्रणालियों का प्रयोग करता है।

भाषा विकास (Language Development) :

विकास की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती है और सभी कारक इस प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। भाषा (Language) बच्चे के विकास को प्रभावित करती है। हम कह सकते हैं कि बालक के विकास में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान हैं। भाषा के माध्यम से बालक अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है, दूसरों की बातें जान पाता है और उन्हें समझता है। कई बार ऐसा कहा जाता है कि भाषा, बुद्धि के प्रयोग का माध्यम है। भाषा का विकास बच्चे के सामाजिक (Social) व संवेगात्मक (Emotional) विकास में बहुत सहायक होता है।

सामान्य तौर पर यह देखा जाता है कि बालक जितन जल्दी बोलना व दूसरों को समझना सीख लेता है,वह उतना ही कुशाग्र बुद्धि का होता है (Sharp Minded) जो बच्चा देर से बोलना व समझना शुरू करता है वह भाषा विकास में पिछड़ा हुआ होता है। हालांकि ऐसा सभी Cases में नहीं होता है।

मनोवैज्ञानिकों जैसे टर्मन,कैटेल का मत है कि चार माह की उम्र में शिशु मनुष्य की आवाज को सुनने व समझने लगता है।

शिशु प्रथम शब्द का उच्चारण दस माह की अवस्था पर करता है।

बच्चों की शब्दावली (Vocabulary) तीन बातों पर निर्भर करती है–

1. बुद्धि (Intelligence)
2. नये शब्दों को सीखने के अवसर (Opportunity to learn new words)
3. सीखने के लिए प्रेरणा व प्रोत्साहन (Incentive and motivation to learn)

भाषा के विकास में अनुकरण (Imitation), सम्बद्धता (Conditioning) तथा प्रेरणा (motivation) का महत्वपूर्ण स्थान है।

भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors affecting Language development):-

निम्नलिखित तत्व हैं जो भाषा विकास को प्रभावित करते हैं–

1. स्वास्थ्य (Health)
2. बुद्धि (Intelligence)
3. पारिवारिक सम्बन्ध (Family Relationship)
4. लिंग भेद (Sex Differences)
5. दो भाषायें (Bilingualism)

वाक दोष (Speech Defects) :-

शारीरिक दोष, वातावरण, वंशानुक्रम, पौष्टिक भोजन में कमी, श्रवण दोष आदि के कारणों से बच्चों में वाक् सम्बन्धित दोष देखने को मिलते हैं। इन दोषों के कारण बालक सही उच्चारण (Pronunciation) करने में असमर्थ रहता है।

बच्चों में पाये जाने वाले कुछ Speech Defects निम्न हैं–

1. ध्वनि परिवर्तन (Lisping) :

इस दोष में बालक शब्दों व अक्षरों की ध्वनि बदल देता है जैसे कौआ को तौआ, काम को ताम आदि। यह दोष होंठ, दांत। जबड़े की खराबी के करण या माता–पिता द्वारा बालक से शब्दों को बार–बार repeat करवाने के कारण होता है।

2. अस्पष्ट उच्चारण (Slurring) :

इस दोष में बच्चा अपनी बात को स्पष्ट रूप से नहीं बोल पाता है। यह दोष बच्चों में होंठ की निष्क्रियता, भय आदि के कारण होता है।

3. तुतलाना व हकलाना (Stuttering & Stammering) :

तुतलाने में शब्द या अक्षर बार–बार दोहराये जाते हैं। कुछ अक्षर एक–दूसरे के स्थान पर use कर लिये जाते हैं। जैसे– ककक कलम,क्क क्या और कहाँ तो तहाँ बोलते हैं।

हकलाने में बालक की आवाज एकदम रूक जाती है और कुछ समय तक कोई ध्वनि नहीं निकल पाती है। 2–3 वर्ष की आयु तक अधिकतर बच्चों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है और इसके बाद कुछ बच्चों की ठीक हो जाती है तथा कुछ में बड़ी आयु तक भी यह रह जाती है। लड़कों में हकलाना अधिक पाया जाता है। बोलने के गलत तरीके, हीनभाव,मानसिक अशांति,बीमारी आदि की वजह से ये दिक्कते देखने को मिलती है।

भाषा विकास और शिक्षा (Language Development & Education) :

भाषा के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। विद्यालय में बच्चा शुद्ध लिखना,बोलना और शुद्ध भाषा का प्रयोग करना सीखता है। शिक्षक को चाहिए कि वो ये जाने कि बालक को किस भाषा के बोलने का अभ्यास है, वह कितना शुद्धबोल पाता है और उसे लिखना किस क्रम में सिखाया जाये। शिक्षक को स्वयं सही भाषा व सही उच्चारण का Use करना चाहिए क्योंकि बच्चे शिक्षक से Directly Affect होते हैं। भाषा, व्यक्तित्व को निखारती है। अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का Express करने का माध्यम भाषा है इसलिए इसके विकास का सही तरह व सही दिशा में होना आवश्यक है।

सृजनात्मकता व उसका विकास : (Creativity and its Development) :-

सृजनात्मकता किसी भी क्षेत्र में कुछ नया करने की योग्यता है। जब कवि कोई अच्छी कविता लिखता है या चित्रकार कलाकृति के द्वारा अपने भावें को प्रकट करता है, वैज्ञानिक कुछ नए तथ्यों को खोजता है। ये सृजनात्मकता समाज के विकास में भी Important Role Play करती है। प्रत्येक व्यक्ति में सृजनात्मक शक्ति का विकास किया जाना चहिए।

साधारण भाषा में नये सम्बन्धों को प्रकट करना या देखना ही Creativity है। प्रत्येक व्यक्ति में नये विचार, नई योजना तथा कार्य करने का अपना ढंग होता है।

सृजनात्मकता की परिभाषायें :

'स्किनर' के अनुसार–''सृजनात्मक चिन्तन का अर्थ है कि व्यक्ति की भविष्यवाणियाँ या निष्कर्ष नवीन,मौलिक, अन्वेषणात्मक (Exploratory) तथा असाधारण हों। सृजनात्मक चिन्तन वह है जो नए क्षेत्र की खोज करता है, नए निरीक्षण करता है और नए निष्कर्ष निकालता है।''

'स्टेल' के अनुसार–''जब किसी कार्य का परिणाम नवीन हो और जो किसी समूह के द्वारा Acceptable हो, उपयोगी हो,वह कार्य सृजनात्मकता कहलाता है।

'ड्रैवडाहल' के अनुसार–''सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा हम उन वस्तुओं या विचारों का उत्पादन करते हैं जो अनिवार्य रूप से नए हों और उन्हें व्यक्ति पहले से न जानता हो।''

सृजनात्मकता की विशेषताएं (Characteristics of Creativity) :

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

- संसार के प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ सृजनात्मकता अवश्य होती है इसलिए कहा जाता है कि सृजनात्मकता सार्वभौमिक है।
- कविता, कहानी, नाटक आदि लिखना,विज्ञान के क्षेत्र में खोज न करना, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला आदि कोई भी क्षेत्र Creativity का आधार हो सकता है।
- सृजनात्मकता से व्यक्ति की प्रतिभा का विकास होता है।
- सृजनात्मकता द्वारा किसी नई वस्तु या विचार की उत्पत्ति होती है।
- परिपक्वता (Maturity) तथा Creativity में पर्याप्त सम्बन्ध होता है।
- Intelligence & Creativity को एक नहीं कहा जा सकता है।
- बुद्धि–लब्धि तथा सृजनात्मकता में धनात्मक सह–सम्बन्ध होता है लेकिन यह आवश्यक नहीं कि जिनकी बुद्धि–लब्धि (IQ) कम है, वह Creative नहीं हो सकता।

सृजनशील व्यक्तियों की विशेषताएं (Characteristics of Creative People) :-

'बैरन'ने सृजनशील व्यक्तियों का अध्ययन किया तथा उस आधार पर बताया कि सृजनशील लोगों में–

- एक ही समय में बहुत से विचारों को सोचने की योग्यता होती है।
- बिखरे, हुए विचारों को एक साथ लाने की योग्यता होती है।
- ऊर्जा का स्तर High होता है।
- निर्णय करने की आत्मनिर्भरता होती है।
- Divergent Thining होती है अर्थात किसी एक Subject पर अपनी राय बनाने से पहले वो उससे सम्बन्धित सभी पहलुओं के बारे में सोचते हैं।

सृजनात्मकता की पहचान/गुण (Identification of Creativity) :-

1. **उत्सुकता (Eagerness) :–**

   सृजनशील व्यक्ति अपने कार्य को करने के लिए हमेशा Excited रहता है। वह कार्य को करने के अलग–अलग तरीके सोचता है।

2. **मौलिकता (Originality)**

   सृजनात्मकता व्यक्ति Original विचारों के साथ काम करता है। यह उसके खुद के विचार और कल्पनायें होती है।

3. **स्वयत्ता (Autonomy) :**

   स्वायत्त का अर्थ है जिस पर अपना अधिकार हो। सृजनशील व्यक्ति जिस कार्य को करता है उसे अपना कर्तव्य और अधिकार समझता है और जब तक वह कार्य पूरा नहीं हो जाता है तब तक वह उत्सकुकता के साथ उस कार्य में लगा रहता है।

4. सृजनशील व्यक्ति संवेदनशील (Sensitive) होता है।
5. सृजनशील व्यक्ति में स्वयं निर्णय लेने की योग्यता व क्षमता होती है।

सृजनात्कता के तत्व (Elements of Creative Thinking) :-

'गिलफर्ड' ने Factorial analysis के द्वारा पांच विशिष्ट बौद्धिक संक्रियाओं (Intellectual Operations) को पहचाना है, जो निम्न हैं–

1. संज्ञान (Cognition) – खोज, Rediscovery तथा पहचान।
2. स्मृति (Memory) : क्या, कैसे, कब करना है।

3. विचलित चिन्तन (Divergent thinking) :

दी गई सूचना के अलावा नये तत्वों, संयोगों तथा Concepts की कल्पना करना।

4. अभिबिन्दुक चिन्तन (Convergent Thinking) :

एक सही उत्तर निकालना।

5. मूल्यांकन (Evaluation) :

अच्छाई, पर्याप्तता (Adequacy) तथा Purity पर निर्णय लेना।

'हैनरी पोनकेयर' ने सृजनात्मकत चिन्तन में चार स्तर बताये हैं–

1. चेतन कार्य की अवधि (Durationof conscious action)
2. अचेतन कार्य की अवधि (duration of unconscious action)
3. परिकल्पना का निर्माण (Building of Hypothesis)
4. परावर्तीयता/परावर्तन तथा साहसिक कलाप (Reflectivity and adventure fiction)

सृजनात्मकता का मापन (Tests of Creavitity) :-

'टोरेन्स' ने सृजनात्मकता के मापन के लिए अनेक प्रयास किये हैं और निरन्तरता (Fluency), लोचनीयता (Flexibility), मौलिकता (Originality) तथा विस्तार (Elaboration) के मापन को Important बताया है। सृजनात्मकता को मापने के लिए कुछ परीक्षण भी किये जाते है–

1. चित्रपूर्ति परीक्षण (Figure Completion Test) :-

इसमें बालक को कुछ अधूरे चित्र और कुछ पूर्ण दिये जाते है और बच्चे को बोला जाता है कि वह पूर्ण चित्रों को देखकर, अधूरे चित्रों को पूरा करें।

2. **कहानी लेखन (Story writing) :-**

चित्र को दिखाकर बच्चे को कहानी बनाने के लिए कहा जाता है। वह चित्र की सहायता से और चिन्तन कर कहानी का निर्माण करता है।

3. **वृत्त परीक्षण (Circle Test) :-**

इस परीक्षण में बालक से वृत्त के अन्दर चित्र बनाने के लिए कहा जाता है। वृत्त के अन्दर की जगह पर मनचाहे चित्र बालक बनाता है।

4. **स्याही के धब्बों द्वारा परीक्षण (Ink Blot Method test) :-**

इसमें एक सफेद कागज पर स्याही के कुछ धब्बे डाल दिये जाते हैं। इन धब्बों के आधारपर बालक कल्पना करते हैं।

5. **डिब्बों के उपयोग (Unusual use of cars) :-**

इसमें बच्चे को खाली डिब्बे दिये जाते हैं और इन डिब्बों के नए–नए उपयोग बताने के लिए कहा जाता है।

6. **प्रोडक्ट सुधार परीक्षण (Product Improvement Test) :-**

इसमें बच्चों को किसी जानवर का खिलौना दिया जाता है। उसके बाद जानवर को चालकी सेबदलने के लिए कहा जाता है फिर जानवर को बदलने की घटना तथा उपायों को विस्तार से लिखने के लिए कहा जाता है।

सृजनात्मक क्षमता के विकास में शिक्षा की भूमिका

(Role of Education in development of a Creative ability) :

शिक्षा के उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है। शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू को सुधारा जा सकता है। आज के समय में प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जती है कि वह देश व समाज के विकास में सृजनात्मक रूप से भाग ले, उसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति को विभिन्न क्षेत्रों जैसे–इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित, कला, साहित्य आदि में से कम से कम एक क्षेत्र में रूचि हो और उसमें वो कुछ नया करना चाहता हो। विद्यालय में शिक्षक छात्रों की विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ाते है तथा उनका मार्गदर्शन करते हैं। शिक्षक को चाहिए कि वे बच्चों को भिन्न–भिन्न गतिविधियों द्वारा सृजनात्मक बना सके। आइये, कुछ बिन्दुओं पर चर्चा करते हैं–

- विद्यालय में बच्चों को एक उचित व स्वतन्त्र वातावरण मिलना चाहिए जिससे बच्चे निःसंकोच अपने विचारों का आदान–प्रदान कर सकें।
- बच्चों को इतनी सहजता महसूस करायी जाये जिससे व आगे बढ़ने में motivated रहे।
- बच्चों के द्वारा की गई कोशिशों को सराहना चाहिए।
- कुछ एक क्षेत्रों में नहीं बल्कि जिसकी रूचि जिस क्षेत्र में है उन्हें उसी क्षेत्र में Guide किया जाये।
- सृजनशील बच्चे Flexible होते हैं। अध्यापक को चाहिए कि इसी Flexibility के साथ बच्चे अपने कार्यों को करें।
- अध्यापक एक ऐसा वातावरण बनायें जहा पर स्वतंत्रता के साथ–साथ अनुशासन भी बना रहे। यदि एक सृजनशील व्यक्ति अनुशासित होगा तो वह निश्चय ही एक सफल व्यक्ति बनेगा।

- ❖ सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए बच्चों को विभिन्न अवसर दिये जाने चाहिए जैसे– Activities, Science, Art Fairs etc.
- ❖ बच्चों को प्रश्न पूछने व उत्तर देने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।
- ❖ Creative बच्चों में Curiosity होती है जिसे Satisfy करना चाहिए। जो बच्चे जानना चाहते हैं उन्हें उस विषय से परिचित कराना चाहिए।

व्यक्तित्व (Personality) :-

'व्यक्तित्व' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Personality' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है 'बाहरी नकाब' या 'वेशभूषा'। व्यक्तित्व में न केवल व्यक्ति के बाह्य गुण जैसे–वह कैसा दिखता है, कैसे कपड़े पहनता है बल्कि उसके संवेग (Emotions), आचार–विचार, सिद्धांत (Principles), व्यवहार, रूचि, बुद्धि सभी कुछ शामिल है।

कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं–

'केम्फ' के अनुसार–''व्यक्तित्व आदत की उन व्यवस्थाओं का समन्वय है जो पर्यावरण के साथ व्यक्ति के विशिष्ट अभियोजन (Characteristics) का प्रतिनिधित्व करता है।''

'मोर्टन प्रिंस' के अनुसार–''व्यक्तित्व व्यक्ति की सभी जन्मजात तथा अर्जित प्रवृत्तियों (Dispositions), इच्छाओं तथा भावनाओं का संग्रह (Sum) है।''

'वारे' के अनुसार–''व्यक्तित्व व्यक्ति का समग्र मानसिक संगठन है जो उसके विकास की किसी भी अवस्था में होता है।'' अर्थात आप अपने जीवन की सभी Stages में जो कुछ भी सोचते हैं, समझते हैं, तर्क करते हैं वो सब आपका व्यक्तित्व Show करता है।

'मन' के अनुसार–''व्यक्तित्व एक व्यक्ति के गठन, व्यवहार के तरीकों, रूचियों, दृष्टिकोण, क्षमताओं, योग्यताओं और अभिक्षमताओं (Capabilities) का संगठन है।''

व्यक्ति के गुण (Traits ofPersonality) :-

'वुडवर्थ' के अनुसार–''व्यक्तित्व के गुण हमारे व्यवहार का एक मुख्य प्रकार का ढंग है।''

इसका अर्थ है कि व्यक्तित्व हमारे व्यवहार करने का तरीका होता है। ये व्यवहार और गुण ही हमें एक–दूसरे से अलग बनाते हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि व्यक्तित्व के गुण स्थायी भी होते हैं और पर्यावरण से प्रभावित होकर बदलते भी हैं।

व्यक्तित्व के मुख्य गुणों के बारे में चर्चा करते हैं–

1. सत्यनिष्ठा (Honesty) :-

सत्यनिष्ठा किसी भी व्यक्तित्व के लिए आवश्यक गुण है। अगर आप Honest हैं तो आप लोगों का विश्वास जीत जाते हैं। एक Honest व्यक्ति अपने प्रति, समाज के प्रति तथा अपने कार्य के प्रति Sensitive और जागरूक होता है।

2. संवेगात्मक स्थिरता (Emotional Stability) :-

ये गुण मानव के जीवन की हर एक State में Help करता है। यदि आप अपने Emotions को Stable करना सीख जाते हैं तो आप किसी भी कठिन परिस्थिति को Tackle कर सकते हैं। ऐसा व्यक्ति वास्तविकता (Reality) में जीता है।

3. प्रसक्ति (Persistence) :–

जीवन में Persistence होना बहुत जरूरी है। यदि आप Persistent हैं, उसे पूरा करके ही दम लेते हैं। कठिनाइयों व बाधाओं की परवाह नहीं करते। ये गुण जिन लोगों में होता है उनमें अपने कार्य के प्रति, जिम्मेदारी के प्रति लग्न होती है।

4. प्रभुत्व (Accendance) :-

जिस व्यक्ति में यह गुण होता है वह व्यक्ति यह चाहता है कि सब उसकी बात सुनें, उसकी आज्ञा का पालन करें अर्थात उसके Control में रहें। उसमें आत्मविश्वास होता है।

5. चिन्तनशीलता (Reflectiveness) :-

यह गुण व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित (Self Centered) कर देता है। ये व्यक्ति Philosopher Type बन जाते हैं। उनके दिमाग में कुछ न कुछ Thoughts चलते रहते हैं।

6. सामाजिकता (Sociability) :-

जिस व्यक्ति में ये गुण हाता है वह सामाजिक होता है। ऐसे व्यक्ति समाज के प्रति अपनी responsibility को समझते हैं। वे Social Activities में भाग भी लेते हैं। समाज के लिए काम करने के लिये, समाज से Connect होना बहुत जरूरी होता है। ऐसे व्यक्ति समाज को आगे बढ़ाने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते है।

व्यक्तित्व के प्रकार (Types of Personality) :-

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

व्यक्तित्व का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जाता है। सर्वाधिक मान्य वर्गीकरण है 'युंग' का। उन्होंने व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये हैं–

1. बर्हिमुखी व्यक्तित्व (Extrovert Personality) :-

Extrovert लोग वो होते हैं जो बाहरी दुनिया में विशेष रूचि रखते हैं। जो व्यक्ति बातें करना पसन्द करता है, घूमना पसन्द करता है, दूसरों के विचार जानना चाहता है वो Extrovert की श्रेणी में आता है। ये व्यक्ति आत्म–प्रशंसा के भूखे, अहंवादी और Uncontrolled होते हैं। ये परिस्थिति के अनुसार ही react करते हैं। ये लोग प्रसन्न रहते हैं क्योंकि अपने मन में शायद कोई ही बात ये रखते हैं। ये प्रवृत्ति सामान्य रूप से राजनेताओं और समाजसेवियों में देखने को मिलती है।

2. अन्तर्मुखी व्यक्तित्व (Introvert Personality) :-

ये लोग अकेले रहना पसंद करते हैं। ये लोग अपने ही बारे में सोचते रहते हैं। ये कम बोलने वाले, संकोची, शीघ्र घबराने वाले होते हैं। ये सामान्यतः आज्ञाकारी होते है। ये अधिकतर पुस्तकों आदि के पढ़ने में लगे रहते हैं। ये प्रवृत्ति अधिकांशतः वैज्ञानिकों, विचारकों और महात्माओं में होती है।

3. उभयमुखी व्यक्तित्व (Ambivert Personality) :-

ये वो लोग हैं जो अन्तर्मुखी व बहिर्मुखी दोनों है। पूर्ण रूप से कोई भी अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी नहीं होता है। कुछ गुण Introvert तथा कुछ Extrovert के हो सकते हैं। उन्हीं लोगों को Ambivert कहते हैं।

व्यक्तित्व परीक्षण (Merasurement of Personality) :-

व्यक्तित्व मापन की कुछ अधिक प्रचलित और विश्वसनीय विधियां निम्नलिखित हैं–

1. व्यक्तिगत राय (Personal Opinion)
2. जीवन कथा (Biography)
3. व्यक्ति इतिहास (Case History)
4. आलेखन विधि (Araphological Method)
5. प्रश्नावली (Questionnaire)
6. साक्षात्कार (Interview)
7. श्रेणी मूल्यांकन (Rating Scale)
8. निर्माण परीक्षण विधि (Performance Test)
9. परिस्थिति परीक्षण (Situation Test)
10. मनोविश्लेषणात्मक विधियाँ (Psycho-analytic Method)
11. व्यक्तित्व सूचियाँ (Personality Inventories)
12. प्रक्षेपी विधियाँ (Projective Techniques)

1. व्यक्तिगत राय :–

किसी व्यक्ति को देखकर अपनी राय बना लेना ही व्यक्तिगत राय है। किसी मोटे व्यक्ति को देखकर हम ये धारणा बना लेते हैं कि वह बहुत खाता होगा।

2. जीवन कथा :–

इस विधि में मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के व्यक्तित्व को कुछ शीर्षकों (Topic) में बांट लेता है,जिनके आधार पर व्यक्ति स्वयं अपनी जीवन की कहानी लिखता है और उस कहानी के आधार पर उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में निष्कर्ष निकाला

जाता है। सामान्यतः व्यक्ति इसमें अपने गुणों का तो वर्णन करता है परन्तु अपने दोषों को नहीं बताता है जिससे व्यक्ति के बारे में अधूरी जानकारी मिल पाती है।

3. व्यक्ति इतिहास :–

इस विधि के द्वारा व्यक्ति के वंश का इतिहास, सामाजिक स्थिति, व्यवहार, शिक्षा, रूचियाँ,समायोजन आदि सभी का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। यह विधि मानसिक चिकित्सा के लिए उपयोगी है।

4. आलेखन विधि :

किसी व्यक्ति की लिखावट को देखकर,उसके व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है,ऐसा कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है। वर्तमान में यह विधि खंडित कर दी गई है।

5. प्रश्नावली :

'थोर्प' व 'शमलर' के अनुसार–''व्यक्तित्व के मापन में प्रश्नावली, व्यक्ति का किसी विशिष्ट या स्थिति के प्रति दृष्टिकोण, उसके ज्ञान के भण्डार आदि को निश्चित रूप से जानने का साधन है।'' इस विधि में कुछ चुने हुये प्रश्न हेते हैं। व्यक्ति को हाँ या ना में जवाब देना होता है। ये चार प्रकार की होती है।

1. बन्द प्रश्नावली (Closed Questionnaire) :

इसमें प्रश्नों के उत्तर हां या नहीं पर निशान लगाकर देने होते हैं।

2. खुली प्रश्नावली (Open Questionnasire) :

इसमें व्यक्ति को प्रश्न का पूरा उत्तर लिखकर देना होता है।

3. सचित्र प्रश्नावली (Pictorial Questionnaire) :

इसमें व्यक्ति दिये हुए चित्रों पर निशान लगाकर प्रश्नों के उत्तर देता है।

4. मिश्रित प्रश्नावली (Mixed Questionnaire) :

इसमें बन्द, खुली व सचित्र तीनों प्रश्नावलियों का मिश्रण होता है।

6. साक्षात्कार (Interview) :

यह व्यक्तित्व की परीक्षा के लिये सबसे अधिक व्यवहारिक विधि है। इसमें परीक्षक व परीक्षार्थी आमने–सामने होते हैं और परीक्षार्थी, परीक्षक द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है। परीक्षक, परीक्षार्थी के उत्तरों, हाव–भाव, उत्तर की शैली तथा अन्य बातों से उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करता है।

7. श्रेणी मूल्यांकन (Rating Scale) :

मात्रात्मक मापन के लिए श्रेणी मूल्यांकन विधि महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसमें व्यक्तित्व के उस विशिष्ट गुण को जिसका मूल्यांकन किया जाना है, कई श्रेणियों में विभाजित कर लिया जाता है फिर व्यक्ति के व्यक्तित्व को पेश कर उसका स्थान निश्चित कर दिया जाता है।

जैसे हमें किसी व्यक्ति की सुंदरता की जांच करनी है तो हम सुन्दरता को कई श्रेणियों में बांटकर एक मानदण्ड (Standard) बना लेंगे यह मानदण्ड 3, 5, 7, 9 श्रेणियों का हो सकता है।

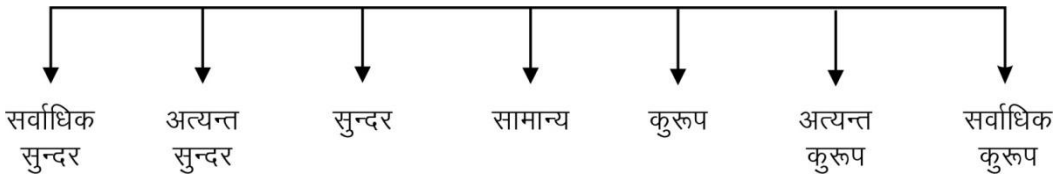

व्यक्ति इन सातों में से जो भी उत्तर देना चाहता है उस पर निशान लगा देता है।

8. निर्माण परीक्षण विधि (Performance Test) :.

इस विधि में ये ज्ञात किया जाता है कि परीक्षार्थी जीवन की वास्तविक परिस्थिति (Situation) में किस प्रकार का कार्य करता है। ये विधि व्यक्तिगत भिन्नतायें (Individual Difference) का अध्ययन करने के लिए अत्यन्त लाभप्रद है।

9. परिस्थिति परीक्षण (Situation Test) :-

इस विधि में बच्चों के सामने कोई Situation उत्पन्न कर दी जाती है। बच्चे की जो प्रतिक्रिया होती है उसके आधार पर उसके व्यक्तित्व की माप की जाती है।

10. मनोविश्लेषणात्मक विधि (Psycho-analytic Method) :-

इस विधि से व्यक्ति की इच्छाओं, चिन्ताओं व आकांक्षाओं का पता लगाया जाता है। मनोविश्लेषणात्क विधियों का प्रयोग मुख्य रूप से असामान्य (Abnormal) व्यक्तित्व की विशेषताओं व मानसिक रोगों का पता लगाने के लिए किया जाता है।

11. व्यक्तित्व सूचियां (Personality Inventories) :

इस विधि के द्वारा व्यक्तित्व के उन सभी पहलुओं का मापन किया जाता है जिन्हें निरीक्षण आदि विधियों द्वारा ज्ञात नहीं किया जा सकता। इन सूचियों का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के गुणों का मापन व मूल्यांकन करना है।

12 प्रक्षेपी विधियां (Projective Techniques) :-

आधुनिक विधियों में इस विधि का अधिक प्रचलन है। यह विधि मुख्य रूप से व्यक्ति की गहराई तक दबी हुई इच्छाओं व वअचेतन मन (Unconscious Mind) का मूल्यांकन करती है जैसे–इच्छाएं, प्रेरणा, रूचि, संवेग, अभिवृत्ति, विश्वास आदि।

प्रमुख प्रक्षेपी विधियां :

1. रोर्शा मसि बिन्दु परीक्षण (Rorschach INk Blot Test)
2. प्रसंगात्मक बोध परीक्षण (Thematic Apperception Test TAT)
3. बालकों का बोध परीक्षण (Children's Apperception Test CAT)
4. वाक्य पूर्ति परीक्षण (Sentence Completion Test-SCT)

1. रोर्शा मसि बिन्दु परीक्षण (Rorschach Ink-Blot Test)

यह परीक्षण स्विस मनोवैज्ञानिक हरमैन रोर्शा ने प्रचलित किया। इसमें 10 मानकीकृत कार्ड होते हैं जिनमें से पांच कार्ड काले–सफेद रंग के होते हैं तथा पांच अन्य कार्ड काले–सफेद के अतिरिक्त अन्य रंगों के होते हैं। इन Cards पर 1 से 10 तक संख्या पड़ी रहती है। इन कार्डों को इसी क्रम से एक–एक करके व्यक्ति को दिखलाया जाता है और उससे पूछा जाता है कि इस धब्बे में उसे

क्या दिखायी पड़ रहा है। व्यक्ति धब्बों को देखने से उसके ऊपर जो प्रभाव पड़ता है उसका वर्णन करता है। परीक्षक व्यकित के उत्तरों को Word to Word लिखता जाता है। यह कार्ड निश्चित समय के अन्तर से व्यक्ति को दिखाए जाते हैं। कार्डों को एक बार दिखाने के बाद परीक्षक द्वारा इन्हें व्यक्ति के सामने एक–एक करके दोबारा दिखाया जाता है और उससे पूछा ाजाता है कि उसने पहली बार धब्बों में जो आकृतियाँ बताई थीं, वे धब्बों में कहां थी? इन धब्बों के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया का अर्थ निर्धारित करने के लिए परीक्षक उसके उत्तरों का विश्लेषण करता है।

इस विधि के द्वारा व्यक्ति की बुद्धि, सामाजिकता,अभिवृत्तियां,संवेगात्मक सन्तुलन व समायोजन आदि की पर्याप्त जानकारी प्राप्त करके उसे व्यक्तिगत निर्देशन दिया जाता है।

2. प्रसंगात्मक बोध परीक्षण (Thematic Apperception Test Or TAT) :-

TAT का निर्माण 'Henry Murray' ने किया था। इस परीक्षण में कुल 31 कार्ड हैं जिसमें 30 कार्ड पर अस्पष्ट चित्र बने हुए हैं अैर एक कार्ड बिल्कुल खाली है। इसमें 10 कार्ड सबके लिए है। एक परीक्षार्थी पर Normally 20 कार्ड का प्रयोग किया जा सकता है। आवश्यक निर्देश देने के बाद परीक्षक व्यक्ति को एक–एक कार्ड दिखाता है और उसको एक निश्चित समय में उस चित्र के आधार पर कहानी बनाने को कहता है। पांच मिनट से अधिक होने पर व्यक्ति से उसका निष्कर्ष पूछ लिया जाता है। चार–पांच दिन बाद परीक्षक व्यक्ति से पुनः मिलकर कथानक से सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त करता है। परीक्षण के बाद परीक्षक कथानक का विश्लेषण (Analysis) करता है।

3. बालकों का बोध परीक्षण (Children's Apperception test - CAT) :-

यह परीक्षण TAT की ही तरह होता है, अन्तर सिर्फ इतना है कि TAT प्रौढों (Adults) के लिए है तथा ये Test बच्चों के लिए। इस Test का Use 3–10 वर्ष तक की आयु वाले बच्चों के व्यक्तित्व का मूल्यांकन (Evaluation) करने के लिए किया जाता है। इसमें कुल 10 कार्ड हैं जो किसी न किसी जानवर से संबंधित हैं। इन चित्रों में जानवरों को मानवीय व्यवहार करते हुए दिखाया गया है। इनके माध्यम से बच्चों की अनेक समस्याओं जैसे–परिवार सम्बन्धी,सफाई सम्बन्धी भाई–बहन की प्रतियोगिता, संघर्ष आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है।

4. वाक्य पूर्ति परीक्षण (Sentence Completion Test or SCT) :

यह परीक्षण 'पाइन' द्वारा बनाया गया है। इस परीक्षण में कुछ अपूर्ण वाक्य दिये जाते हैं और व्यक्ति को उन्हें एक निश्चित समय में पूरा करना होता है। परीक्षक एक–एक अधूरा वाक्य बोलता जाता है और व्यक्ति तुरन्त पूरा करने का Try करता है जैसे : मैंने कहा कि ..... तुम मेरे

इस प्रकार इससे व्यक्तित्व के गुणों और Qualities का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

Note : व्यक्तित्व परीक्षण करने के लिए M.M.P.I. (Minnesota Multiphasic Personality Inventory Test) होता है।

समायोजन (Adjustment) :-

अपने तथा अपनी वर्तमान Situation के बीच Balance बनाना ही समायोजन है।

'गेट्स' के अनुसार–''समायोजन शब्द के दो अर्थ होते हैं। प्रथम में यह जीवन में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और वातावरण के बीच सन्तुलित सम्बन्ध बनाये रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

दूसरा, ये व्यक्ति की एक सन्तुलित Position है जिसके परिणामस्वरूप हम उस व्यक्ति को समायोजित व्यक्ति कहते है।

समायोजन की आवश्यकता (Need of Adjustment) :-

हम सभी के जीवन भर समायोजन करना पड़ता है। यदि बात बालक के सर्वांगीण विकास की करें तो उसके लिए उसका वातावरण के साथ Adjust करना बहुत जरूरी है जैसे–

- कक्षा में Concentration बनाये रखने के लिए समायोजन आवश्यक है।
- अपने मन को अनावश्यक Tension से दूर रखने के लिए।
- जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कुछ हासिल करने के लिए।
- विद्यालय में पढ़ाई के साथ–साथ Activities करने के लिए।
- किसी भी परीक्षा में सफलता के लिए आपको बहुत चीजों से समायोजन करना पड़ता है।

शिक्षकों द्वारा समायोजन के उपाय

(MEASURES OF ADJUSTMENT BY TEACHERS)

समायोजन करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिए–

1. कुसमायोजित विद्यार्थियों को पहचानना।
2. प्रेमपूर्ण तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना।
3. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की जानकारी देना।
4. व्यक्ति इतिहास तैयार करना (Case History)
5. विद्यार्थियों की अचेतन कामनाओं और इच्छाओं की जानकारी प्राप्त करना।

6. संघर्षों को चेतन स्तर पर दूर करने में सहायता प्रदान करना।

7. विद्यार्थियों में Positive Attitude का विकास करना।

8. बच्चों की भावनाओं को समझना।

कल्पना (Imagination) :-

Imagination एक मानसिक क्रिया है। कल्पना प्रायः उन्हीं वस्तुओं या घटनाओं की होती है जिनका अनुभव पहले हो चुका होता है। कल्पना व हम अपने पूर्व अनुभव जोड़कर ऐसी नवीनता जोड़ते हैं जो सृजनात्मकता और सार्थकता के तत्व उपस्थित कर देती है। कल्पना अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों से सम्बन्ध रखती है। कल्पना में एक के बाद एक विचार आते रहते हैं और वे किसी निश्चित लक्ष्य की ओर निर्देशित नहीं होते।

कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार–

''मैग्डूगल''–''दूरस्थ वस्तुओं के बारे में सोचना ही कल्पना है।''

''वुडवर्थ''–''कल्पना मानसिक हस्त–व्यापार (Mental Manipulation) है।

कल्पना विकास में सहायक तत्व (Factors Influencing Imagination Development):-

कल्पना के विकास में सहायक तत्व निम्न हैं–

1. भाषा का ज्ञान

2. कहानियां
3. कविताएं
4. अभिनय
5. कला

कल्पना का विकास और शिक्षा (Development of Imagination & Education) :-

कल्पना का शिक्षा में अत्यधिक महत्व है। महान साहित्य, चित्रकला, शिल्पकला आदि कल्पना के ही परिणाम हैं। चिन्तन व तर्क का आधार ही कल्पना है।

- ❖ कल्पना विशिष्ट परिस्थितियों में Adjust करने में Help करती है।
- ❖ कल्पना कला, साहित्य, संस्कृति और सभ्यता का विकास करती है। चित्रकार अपने चित्रों में, मूर्तिकार मूर्ति में अपनी कल्पना को दर्शाते हैं।
- ❖ बच्चों में कल्पना का विकास करते समय शिक्षक को निम्न बातें ध्यान रखनी चाहिए।
- ❖ जैसे–जैसे बच्चों को भाषा का ज्ञान होता जाता है, उनकी कल्पना का विकास होने लगता है। शिक्षक को उन्हें बोलने, लिखने आदि के अवसर प्रदान करने चाहिए।
- ❖ कल्पना के विकास में कहानियां बहुत सहायक होती है अतः शिक्षक को, बच्चों को पूर्ण हाव–भाव के साथ कहानी सुनानी चाहिए और बच्चों को प्रेरित करना चाहिए।
- ❖ कला, साहित्य व संगीत के माध्यम से बच्चों में रक्षात्मक कल्पना का विकास किया जाना चाहिए।

चिन्तन (Thinking)

इस संसार में उपस्थित सभी जीवों में मनुष्य सबसे अधिक विवेकशील/बुद्धिमान है क्योंकि उसमें सोचने, समझने व तर्क करने की शक्ति है। चिन्तन वह गुण है जो मनुष्य को अन्य जीवों से अलग करता है। चिन्तन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। इसी के द्वारा व्यक्ति समस्या–समाधान करता है। जब भी हमारे सामने कोई समस्या आती है तो हम उसे Solve करने के लिए सोचना शुरू करते हैं। इस प्रकार चिन्तन समस्या से शुरू होकर समाधान पर समाप्त होता है। व्यक्ति तथा परिस्थिति की भिन्नता पर चिन्तन भी भिन्न होगा। चिन्तन करने से निरीक्षण शक्ति, तर्क– शक्ति व कल्पना शक्ति का विकास होता है।

चिन्तन की परिभाषायें निम्न हैं–

- ❖ 'रॉस' के अनुसार–''चिन्तन ज्ञानात्मक पक्ष की मानसिक प्रक्रिया है।''
- ❖ 'क्रूज' के अनुसार–''चिन्तन एक मनोवैज्ञानिक क्रिया है जैसे कि कोई क्रिया जीवन पर आधारित होती है।''

'कॉल्सनिक' के अनुसार–''चिन्तन सम्प्रत्ययों का पुनर्संगठन है।''

चिन्तन के प्रकार (Types of Thinking) :

चिन्तन दो प्रकार का होता है–

1. **सीमित चिन्तन** (Limited Thinking): इसके अन्तर्गत तर्क, समस्या समाधान, निर्णय चिन्तन आते हैं।

2. **असीमित चिन्तन** (Unlimited Thinking) : इसके अन्तर्गत कल्पना व स्वप्न आते हैं। इन दोनों प्रकारों के चिन्तनों की चार भागों में बांटते हैं।

1. **प्रत्यक्षात्मक (Perceptual) :-**

इस चिन्तन में शब्द या नाम की Need नहीं होती है क्योंकि इस चिन्तन का आधार उपस्थित घटना ही होती है। जैसे–दण्ड देने वाले शिक्षक को पुनः देखने पर चिन्तन प्रारम्भ हो जाता है। यह निम्न कोटि के चिन्तन के अन्तर्गत आता है।

2. **प्रत्यात्मक (Conceptual) :-**

ये पूर्व अनुभूतियों पर आधारित होता है। सम्प्रत्ययों (Concepts) के निर्माण पर किसी समस्या पर भविष्यके सन्दर्भ में Solution निकाला जाता है।

3. **कल्पनात्मक (Imaginative Thinking) :-**

इस प्रकार के चिन्तन में Object की Image, स्मृति (Memory) और कल्पनायें होती है। इसी के आधारपर भविष्य के अनुमान लगाने में चिन्तन किया जाता है।

4. **तार्किक (Logical) :-**

यह चिन्तन उच्च कोटि के चिन्तन में आता है। यह चिन्तन कई सिद्धान्तों व तर्क के आधार पर किया जाता है। बुद्धिजीवी लोग अक्सर इसी प्रकार का चिंतन करते हैं।

चिन्तन को प्रभावित करने वाले तत्व

(FACTORS AFFECTING THINKING)

1. सशक्त अभिप्रेरणा (Strong Moivation)
2. ध्यान व रूचि (Attension & Interest)

3. बुद्धि (Intelligence)
4. समय (Time)
5. संवेग (Emotion)
6. भाषा (Language)
7. पूर्वाग्रह (Prejudice)
8. संप्रत्यय (Concept)
9. सतर्कता व लचीलापन (Alertness& Flexibility)

चिन्तन और शिक्षा (Thinking and Education) :-

शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में Thinking Abilities बढ़ती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति Creative Thinking कर सकता है। शिक्षा आपके सोच–विचार को विस्तार देती है। शिक्षा क` द्वारा आप तर्कपूर्ण (Logical) चिन्तन कर सकते हैं। किस प्रकार एक शिक्षक इस प्रक्रिया में आपकी सहायता करते हैं, आइये जानते हैं–

- शिक्षक को, बच्चों को अपनी सोच को सामने रखने के अवसर दिये जाने चाहिए।
- विद्यालय में वाद–विवाद, व्याख्यान, सामूहिक वार्तालाप (Group discussion) आदि का आयोजन किया जाना चाहिए जिससे बच्चों में चिन्तन शक्ति का विकास हो सके।
- Teaching के बाद उस विषय विशेष पर बच्चों को सोचने व प्रश्न करने के अवसर दें।
- शिक्षक को परम्पराओं, रूढ़ियों तथा समस्याओं के समाधान पर चिन्तन व तर्क करने पर बल दें।

भाषा और चिन्तन (Language and Thinking) :-

चिन्तन व भाषा में बहुत गहरा सम्बन्ध है। आप जो भी सोचते हैं उसे भषा के माध्यम से प्रकट करने का प्रयास करते हैं। जब तक विचार नहीं होंगे तो शब्दों का अभाव रहेगा। भाषा, सृजनात्मक शक्ति का विकास, बौद्धिक विकास, ज्ञानार्जन और चिन्तन का सबसे अच्छा साधन है। भाषा, चिन्तन का प्रमुख साधन है। भाषा और चिन्तन साथ–साथ विकसित होते हैं। अतः ये कहा जा सकता है कि भाषा और चिन्तन एक ही प्रकार के मानसिक पक्ष के दो पक्ष हैं।

सृजनात्मक चिन्तन (Creative Thinking) :-

सृजनात्मक चिन्तन वह है जिसके द्वारा आप किसी विषय/वस्तु आदि के बारे में कुछ नया व अलग सोचते हैं। इसे अपसारी चिन्तन भी कहते हैं। जब आप किसी समस्या के समाधान को कई पहलुओं से देखते हुए, कुछ अलग ढंग से उसके निष्कर्ष पर पहुँचते हैं तो उसे सृजनात्मक चिन्तन या अपसारी चिन्तन कहते है। (Creative Thinking or Divergent Thinking)

- ❖ सृजनात्मकता का परिणाम दुनिया के सभी आविष्कार व खोज है।
- ❖ नये विचारों की अचानक उपस्थिति को अन्तःदृष्टि कहा जाता है।

आमतौर पर यह देखा जाता है कि सृजनात्मक लोग प्रतिभाशाली होते हैं जैसे–कलाकार, वैज्ञानिक, गणितज्ञ,संगीतज्ञ आदि।

सृजनात्मक लोगों के व्यक्तित्व में कुछ विशिष्ट योग्यताएं होती है जैसे–वे अपने निर्णय स्वतंत्र रूप से लेते हैं, वे तर्कपूर्ण ढंग से सोचते हैं आदि।

अभिसारी चिन्तन (Convergent Thinking) :-

अभिसारी चिन्तन में किसी भी समस्या के केवल हल पर Focus किया जाता है अर्थात केवलएक ही बिंदु पर केन्द्रित होती है। इसके द्वारा निकाला गया समाधान Close Ended होता है। इसके द्वारा शीघ्र समाधान प्रस्तुत किया जाता है। यह एक प्रकार का रैखिक चिंतन होता है। ये चिंतन बुद्धि को बढ़ावा देता है। यह चिंतन तथ्यों (Facts) पर आधारित होता है

जैसे–भारत का राष्ट्रीय खेल क्या है

उत्तर–हॉकी

इसका अर्थ है यहाँ पर उत्तर सिर्फ एक ही बिंदु पर आधारित है। आपको इधर–उधर ज्यादा चिंतन करके विभिन्न पहलुओं को देखने की आवश्यकता नहीं है।

अपसारी चिन्तन (Divergent Thinking) :-

जब आप किसी समस्या को भली–भांति जानकर, उस पर चिन्तन करके उसके एक से अधिक समाधानों पर पहुँचते हैं तो वहाँ आप अपसारी चिन्तन करते हैं।

– ये एक Open ended thinking Process है।

– सृजनात्मक चिन्तन इसी का एक भाग है।

– यह Flexible होता है।

– इसमें समस्याको कई पहलुओं से समझा जाता है जैसे–

प्रश्न– जब तुम अपने परिवार के साथ घूमने जाते हो तो क्या–क्या करते हो?

उत्तर–(यहां पर बच्चा अपने तरीके से सोचकर भिन्न–भिन्न बातें बताता है।)

जब हम सब साथ होते हैं तो बहुत आनन्द आता है।

हम खाने–पीने की चीजें साथ लेकर जाते हैं।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

एक–दूसरे से बहुत सी बातें करते हैं।

संकल्पना (Concept) :

ये चिन्तन का ही एक तत्व है। चिन्तन (Thinking) के द्वारा ही हम Concept बनाते हैं। इसके अंतर्गत दो या दो से अधिक वस्तुओं के बीच सम्बन्ध अदि का विचार किया जता है। संकल्पना हमारे ज्ञानवर्द्धन में सहायक होती है। हम अपने जीवन में जब भी पहली बार किसी व्यक्ति। वस्तु/स्थान को देखते हैं तो उसके प्रति हमारी एक संकल्पना बन जाती है। ये संकल्पना भविष्य में नई धारणा को समझने में मदद करती है।

समस्या–समाधान (Problem Solving) :

हर दिन हम किसी न किसी समस्या का समाधान करते हैं। कुछ समस्याओं को हल करने में कम समय लगता है कुछ को ज्यादा। किसी भी समस्या का हल निकालने के लिए हमें तर्क व चिन्तन करने की आवश्यकता होती है। समस्या समाधान की प्रक्रिया में बाहरी तत्वों/वस्तुओं का भी उपयोग करते हैं।

समस्या समाधान सभी जीवित प्राणियों विशेषकर मनुष्यों के अस्तित्व के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

समस्या समाधान के चरण :–

- ❖ समस्या की पहचान–समस्या की परिभाषा–रणनीति तैयार करना
- ❖ सूचना का संगठन–संसाधनों का आवंटन–निगरानी–मूल्यांकन
- ❖ तर्क (Reasoning)

तर्क, चिन्तन का ही एक पक्ष है। समस्या समाधान के लिए हमें चिन्तन व तर्क दोनों की आवश्यकता होती है। तर्क उद्देश्यपूर्ण होता है और इसमें Facts के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है। तर्क के लिए मस्तिष्क का सुसंगठित होना बहुत आवश्यक है। तर्क की प्रक्रिया में व्यक्ति अपने अनुभवों के आधार पर वर्तमान परिस्थिति के सम्बन्ध में तर्क व चिन्तन करता है। तर्क में भविष्य के परिणामें का पता लगाया जाता है।

'डीवी' के अनुसर–''शंका (Doubt) तर्क के लिए आवश्यक है।''

'वुडवर्थ' के अनुसार–''तर्क एक मानसिक अनुसन्धान (Mental Research) है।

'सी0वी0 गुड' के अनुसार–''कोई कार्य जिसका सम्बन्ध तथ्यों (Facts) से रहता है, जो तथ्यों को तोलता है और मूल्यांकन के बद तर्कपूर्ण निष्कर्ष प्रदान करता है, वही तर्क है।''

1. कठिनाई क अनुभव करना।
2. सूचना ज्ञात करना, संगठित करना, मूल्यांकन करना व वर्गीकरण करन।
3. प्राकल्पना (Hypothesis) का मूल्यंकन करना।
3. समाधान को प्रयोग में लाना।

तर्क के प्रकार (Types of Reasoning) :-

सामान्य रूप से तर्क दो प्रकार का होता है–

1. निगमनात्मक तर्क (Deductive Reasdoning) :-

इस तर्क के द्वारा हम किसी प्रत्यय या सिद्धांत के द्वारा विशेष प्रकार के अनुभवों को समझने का प्रयस करते हैं। इस प्रक्रिया में हम सामान्य से विशेष की

अेर जाते हैं। पहले किसी तर्क का निर्धारण करते हैं फिर विशिष्ट, जैसे–मृत्यु जीवन का अंत है।

विशाल की मृत्यु हो चुकी है।

इसलिए विशाल की मृत्यु हो चुकी है।

2. आगमनात्मक तर्क (Inductive Reasoning) :-

इस तर्क में तथ्यों के आधार पर किसी सामान्य सिद्धान्त की खोज की जाती है। इसमें नियम, सिद्धांत, व्याख्या, विचार आदि के निर्माण पर बल दिया जाता है। इस प्रक्रिया में हम विशेष से सामान्य की ओर जाते हैं। समस्या के अनुसार कुछ उदाहरण लेते हैं फिर उनका Analysis करते हैं तथा इनके आधारपर सामान्यीकरण करते है जैसे–

- X की मृत्यु हो चुकी है।
- Y की मृत्यु हो चुकी है।
- क्योंकि मृत्युजीवन का अंत है।

नोट–आगमनात्मक तर्क अधिक श्रेष्ठ माना जाता है।

तर्क शक्ति का विकास और शिक्षा (Development of Reasoning & Education):-

बच्चों में तार्किक चिन्तन का विकास करने के लिए शिक्षक निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं–

CHAPTER - 3

अधिगम (Learning)

अधिगम (Learning) –

अधिगम को सामान्य भाषा में हम सीखना कहते हैं। पूर्व ज्ञान या वातावरण से प्रतिक्रिया करके व्यक्ति अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है और इन अनुभवों से उसके विचारों emotions, कार्यों में किसी न किसी प्रकार का परिवर्तन होता है। इसका अर्थ है इस परिवर्तन के द्वारा हमने कुछ न कुछ सीखा है। यही अधिगम है। ''अधिगम को हम अनुभवों के कारण व्यवहार में या व्यवहार की क्षमता में होने वाला अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन के रूप में देखते हैं।''

विद्यालय में बच्चा एक सुव्यवस्थित शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत अधिगम की दिशा में आगे बढ़ता है। बच्चों के अधिगम हेतु अधिगम की प्रकृति का समय–समय पर ज्ञान भी जरूरी है। शैशवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक सभी व्यक्ति सीखते रहते हैं।

अधिगम की परिभाषायें (Definitions of Learning) –

'क्रो & क्रो' – ''आदतों ज्ञान और अभिवृत्तियों (attitude) का अर्जन ही अधिगम है।''

'वुडवर्थ' – ''नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को अर्जित करने की प्रक्रिया को अधिगम कहते हैं।''

'स्किनर' – ''व्यवहार में उत्तरोत्तर (Progressive adaptation) अनुकूलन की प्रक्रिया ही अधिगम है।''

'पावलॉव' – ''अधिगम अनुकूलित अनुक्रिया के फलस्वरूप आदत का निर्माण है।''

'क्रानबेक' – ''अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिलक्षित (Shown) परिवर्तन ही अधिगम है।''

'गेट्स व अन्य' – ''अधिगम, अनुभव व प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है।''

'कर्ट लेविन' – ''अधिगम, वातावरण का संगठन है।''

'बॉज' – ''सीखना एक प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान तथा दृष्टिकोण सामान्य जीवन की माँगों की पूर्ति हेतु प्राप्त करता है।''

'प्रेसी' – ''सीखना एक अनुभव है, जिसके माध्यम से कार्य में परिवर्तन या समायोजन होता है और व्यवहार की कई विधियाँ अर्जित होती हैं।''

'बर्नहार्ट' – ''अधिगम व्यक्ति के कार्यों में एक स्थायी परिवर्तन लाना है, जो निश्चित परिस्थितियों में किसी ध्येय को प्राप्त करके या किसी समस्या के समाधान के प्रयास में अभ्यास द्वारा लाया जाता है।''

अधिगम की विशेषताएँ या प्रकृति (Characteristics of Learning) –

(1) अधिगम, अनुभवों से तथा अनुभवों को प्राप्त करता है।

(2) अधिगम सक्रियता (Activeness) पर आधारित है।

(3) अधिगम व्यक्ति के अनुकूलन (adaptation) पर निर्भर करता है।

(4) अधिगम एक व्यापक प्रक्रिया है।

(5) अधिगम व्यक्ति के व्यवहार में परितर्वन है।

(6) व्यक्ति का विकास, अधिगम की सहायता से ही होता है।

(7) अधिगम वातावरण की देन है।

(8) अधिगम जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है।

(9) अधिगम व्यक्ति, विशेष से सम्बद्ध न होकर, सार्वभौमिक (Universal) है।

(10) अधिगम के द्वारा व्यवहार में होने वाले परिवर्तन अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं।

(11) अधिगम में मनोवैज्ञानिक घटनाओं का एक क्रम निहित होता है।

(12) अधिगम एक जटिल प्रक्रिया है।

(13) अधिगम धनात्मक दिशा (Positive direction) व ऋणात्मक दिशा (Negative direction) में हो सकता है।

(14) अधिगम की प्रक्रिया में errors भी होते हैं।

(15) अधिगम अनुभवों का संगठन है।

अधिगम के पक्ष (Aspects of Learning) –

अधिगम को सामान्यतः तीन पक्षों में बाँटा जाता है –

(1) ज्ञानात्मक पक्ष (Knowledge Aspect) –

नवीन तथ्यों, सूचनाओं व ज्ञान का अर्जन करना ज्ञानात्मक अधिगम कहलाता है। ये तीन प्रकार का होता है –

(i) प्रत्यक्षात्मक अधिगम (Perceptual Learning) –

भौतिक तथा मूर्त वस्तुओं का पर्यवेक्षण (Observation) के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करना ही प्रत्यक्षात्मक अधिगम कहलाता है। **(इन्द्रियों के माध्यम से सीखना)** जैसे– चलना, दौड़ना।

(ii) प्रत्यक्षात्मक /अवधारणात्मक अधिगम (Conceptual Learning) –

अर्मूत चिन्तन, कल्पना, तर्क के सहारे ज्ञान प्राप्त करना प्रत्यात्मक अधिगम कहलाता है। जैसे– एक भौंकने वाला, चार पैर वाला, एक पूँछ वाला, ऐसे जानवर को हम कुत्ते के रूप में पहचानते हैं। इसमें हम गुण और विशेषताओं के आधार पर उद्दीपक को वर्गीकृत करते हैं।

(iii) साहचर्य अधिगम (Associate Learning) –

पूर्व ज्ञान व अनुभव के माध्यम से नवीन ज्ञान अर्जित करना ही साहचर्य अधिगम है। जैसे– जब कोई बच्चा अपना कमरा साफ करता है तो उसके माता–पिता उसे उपहार देते हैं। बच्चा अपने कमरे की सफाई को Lift से जोड़ना शुरु कर देता है जिससे अब वह अपना कमरा बार–बार साफ करता है।

(2) भावात्मक पक्ष (Emotional Aspect) –

नवीन भावों की अनुभूति करना ही भावात्मक पक्ष है। इस पक्ष में अधिगम में रुचि, दृष्टिकोण व भावनाओं आदि में परिवर्तन होता है।

(3) क्रियात्मक पक्ष (Functional Aspect) –

नवीन कार्यों, क्रियाओं व कौशलों को सीखना, क्रियात्मक पक्ष में आता है। जैसे– खाना बनाना, तैरना, गाना सीखना ये सब क्रियात्मक अधिगम के अन्तर्गत आता है।

अधिगम के प्रकार (Types of Learning)

'गैने' के अनुसार सीखने के 8 प्रकार हैं –

(1) सांकेतिक अधिगम (Signal Learning) –

सांकेतिक अधिगम Classical conditioning learning के समान होता है जिसमें संकेतों के माध्यम से सिखाया जाता है। इसमें कोई तटस्थ उद्दीपक (Neutral Stimulus) के साथ कोई स्वाभाविक उद्दीपक (Natural Stimulus) को एक साथ कई बार किया जाता है। Pavlov के Classical Conditioning Learning में घंटी की आवाज (Neutral Stimulus) और भोजन (Natural Stimulus) को साथ–साथ कुछ प्रयास तक देने पर कुत्ता मात्र घंटी की आवाज पर लार का स्त्राव करना सीख गया था। यही सीखना सांकेतिक सीखना कहलाता है।

उदाहरण :– Signal पर Red light देखते ही रुक जाना।

यह अधिगम का सबसे निम्नतम स्तर है।

(2) उद्दीपक–अनुक्रिया अधिगम (Stimulus-Response Learning) –

जब किसी उद्दीपक (Stimulus) को देखकर हम अनुक्रिया (Response) करते हैं तो वह उद्दीपक अनुक्रिया कहलाता है और इसके द्वारा जो सीखा गया है वह उद्दीपक–अनुक्रिया अधिगम कहलाता है। इसमें हम उद्दीपक के प्रति एक ऐच्छिक क्रिया (Voluntary Response) करते हैं। जैसे–**स्किनर** का क्रियाप्रसूत अनुबन्धन (Operant Conditioning) इसी का उदाहरण हैं जिसमें चूहा, लीवर दबाने की प्रक्रिया को सीख लेता है।

उदाहरण :– जब कोई बच्चा स्कूल जाने से मना करता है तो उसके माता–पिता उसे चॉकलेट का लालच देते हैं और वह स्कूल चला जाता है। बच्चा चॉकलेट को देखकर क्रिया कर रहा है। चॉकलेट यहाँ उद्दीपक है।

(3) सरल शृंखला उद्दीपक (Simple Chain Learning) –

इस अधिगम का तात्पर्य एक क्रम में होने वाले अलग–अलग कई उद्दीपक–अनुक्रिया संबंधों के सेट से बताया है। ये अधिक Motor learning (पेशीय अधिगम) में आता है।

जैसे– बच्चा पहले वर्णमाला सीखता है, फिर शब्द, उसके बाद वाक्य बनाता है, फिर अंत में किताब पढ़ना सीखता है।

इस अधिगम की व्याख्या 'स्कीनर' ने की।

ये दो प्रकार का होता है :–

(1) शाब्दिक

(2) अशाब्दिक

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

(4) शाब्दिक साहचर्य अधिगम (Verbal Association Learning) –

इस अधिगम में व्यक्ति उद्दीपक–अनुक्रिया (Stimulus-Response) का ऐसा क्रम सीखता है जिसमें शाब्दिक अभिव्यक्ति होती है (Verbalization)। जैसे– कविता याद करना, कहानी याद करना।

इस अधिगम की व्याख्या 'डेविड आशुबेल' ने की।

(5) विभेदीकरण अधिगम (Discrimination Learning) –

इस अधिगम में व्यक्ति विभिन्न उद्दीपकों के प्रति विभिन्न अनुक्रिया करना सीखता है।

जैसे– बीजगणित (Algebra) व अंकगणित (Arithmetic) में अंतर करना, क्रिकेट व हॉकी में अंतर करना।

(6) संप्रत्यय सीखना (Concept Learning) –

कई वस्तुओं के सामान्य गुणों के आधार पर कोई विशेष अर्थ को सीखना संप्रत्यय सीखना कहा जाता है।

जैसे– आम, केला, अमरुद इन सबमें एक सामान्य गुण है वो है ये सब फल हैं। तो यहाँ पर 'फल' का Concept सीखते हैं।

इस अधिगम की व्याख्या 'केण्डलर' ने की है।

(7) नियम अधिगम (Rule Learning) –

इस तरह का सीखना संप्रत्यय सीखने पर सर्वाधिक आधारित होता है। जब व्यक्ति के अंदर ज्ञान का भंडार विकसित हो जाता है तो वो नियमों को भी सीख लेता है।

जैसे– व्याकरण के नियम, गणित के नियम जानता है।

(8) समस्या समाधान (Problem Solving Learning) –

इस अधिगम में व्यक्ति किसी नियम का उपयोग करके किसी समस्या का समाधान करता है और एक नये तथ्य को सीखता है। यह अधिगम की **सर्वोत्तम** अवस्था है।

जैसे– रेखागणित में प्रमेय को हल करना।

अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Learning) –

अधिगम को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं :–

(1) अधिगमकर्त्ता से सम्बन्धित कारक (Factors Related to Learner)

(2) अध्यापक से सम्बन्धित कारक (Factors Related to Teacher)

(3) विषय वस्तु से सम्बन्धित कारक (Factors Related to Content)

(4) पर्यावरण से सम्बन्धित कारक (Factors Related to Environment)

(1) अधिगमकर्त्ता से सम्बन्धित कारक (Factors Related to Learner)–

बच्चों में **सीखने की इच्छा** पैदा की जाये जिससे वे सीखने के लिए उत्सुक रहें।

शारीरिक व **मानसिक** रूप से बच्चों का स्वस्थ होना भी आवश्यक है क्योंकि इसका सीधा असर उनके अधिगम पर पड़ता है।

जिस विषयवस्तु का अधिगम बच्चों को कराया है उसका स्तर बच्चे की **परिपक्वता** के आधार पर रखा जाये।

अभिप्रेरणा (Motivation) हमेशा अधिगम को तीव्र गति प्रदान करता है। आवश्यक है कि बच्चों को अधिगम के प्रति Motivate रखें।

वंशानुक्रम का प्रभाव बच्चे के अधिगम पर अवश्य रूप से पड़ता है। बच्चों में निहित गुण व क्षमतायें उनके अधिगम में सहायता करती है।

अधिगम का **समय** सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है। विद्यालय में कालांशों (Periods) की ऐसी व्यवस्था हो कि छात्रों को विश्राम मिलता रहे जिससे वे पूरे उत्साह से अधिगम करें।

अधिगम विधि सीखने को बहुत प्रभावित करती है। अधिगम विधि (Learning Method) बच्चों के स्तर व रुचि के अनुसार होनी चाहिए।

बच्चों के अधिगम को बुद्धि बहुत प्रभावित करती है। तीव्र बुद्धि बच्चे किसी भी कार्य को जल्दी सीख जाते हैं।

बालक के अधिगम को उन्नत करने के लिए आवश्यकतानुसार **अभ्यास** (Practice) करानी चाहिए।

(2) अध्यापक से सम्बन्धित कारक (Factors Related to Teachers) –

सबसे आवश्यक यह है कि अध्यापक को अपने **विषय का ज्ञान** होना चाहिए।

शिक्षक को हमेशा बाल केन्द्रित शिक्षा पर बल देना चाहिए। छात्रों को ज्ञान उनके स्तर व रुचि के अनुसार देना चाहिए।

शिक्षक को व्यक्तिगत भिन्नताओं (Individual Differences) को ध्यान में रखकर शिक्षण करना चाहिए। जैसे– योग्यता, क्षमता, अभिरुचि आदि।

बेहतर शिक्षण के लिए शिक्षक का **शारीरिक** व **मानसिक रूप से स्वस्थ** होना बहुत आवश्यक है। तभी वह बच्चों को प्रभावशाली ढंग से पढ़ा पायेंगे।

शिक्षक को शिक्षण से सम्बन्धित **मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओ का ज्ञान** होना चाहिए।

शिक्षक द्वारा Use की जाने वाले **शिक्षण पद्धति प्रभावी** होनी चाहिए।

शिक्षक को अपने कर्त्तव्य के प्रति ईमानदार होना चाहिए।

शिक्षक के व्यक्तित्व का सीधा असर बच्चों पर पड़ता है इसलिए शिक्षक; **आत्मविश्वासी, चरित्रवान, कर्त्तव्यनिष्ठ** होना चाहिए।

शिक्षक का **उच्चारण** व **बोलने का तरीका** बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए।

शिक्षक को छात्रों के साथ सदैव **प्रेम व सहानुभूति** से रहना चाहिए।

शिक्षक में **व्यवसाय के प्रति निष्ठा** होनी चाहिए।

शिक्षक को वातावरण का ज्ञान होना भी आवश्यक है।

बच्चों को अनुशासित रखना।

(3) विषय–वस्तु से सम्बन्धित कारक (Factors Related to Content) –

विषय–वस्तु यदि **उद्देश्यपूर्ण** है तो बालक उसे सहायता से सीख सकता है।

विषय वस्तु की **प्रकृति व आकार** का अधिगम पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि विषय वस्तु सरल है और कम है तो बच्चे पर कम समय में और सहजता से सीख लेते हैं। यदि विषय वस्तु कठिन है तो बच्चों को बाधाओं का सामना करना पड़ता है तथा ज्यादा समय भी देना पड़ता है।

अधिगम में **सरल भाषा** का प्रयोग करने की कोशिश की जानी चाहिए।

विषय–वस्तु **रुचिकर** होगी तो छात्र पूरे उत्साह से अध्ययन करते हैं।

अधिगम को रुचिकर बनाने के लिए **शिक्षण सामग्री** का उपयोग करना चाहिए। जैसे– पुस्तक, चार्ट, स्लाइड आदि।

सभी **विषयों का कठिनाई स्तर** भिन्न–भिन्न होता है इसलिए समस्त छात्र समान रूप से किसी विषय–वस्तु को नहीं सीख पाते हैं।

वातावरण से सम्बन्धित कारक (Factors Related to Environment) –

परिवार के वातावरण का बच्चे के अधिगम पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि परिवार का वातावरण उत्तम है तो बच्चे अधिगम सरलता से कर पाते हैं अन्यथा अधिगम में कठिनाई होती है।

भौतिक कारण जैसे वायु, प्रकाश, तापमान ये भी अधिगम को प्रभावित करते हैं। यदि वातावरण उपयुक्त नहीं होगा तो बच्चे असहजता व थकान महसूस करेंगे।

शिक्षा में **अनौपचारिक साधनों** जैसे– रेडियो, टेलीविजन, पुस्तकालय आदि का प्रयोग करना चाहिए।

अधिगम पर **सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण** का भी प्रभाव पड़ता है। बच्चे के पड़ोसी कैसे हैं, बच्चे अपनी सभ्यता से किस प्रकार जुड़े हैं, ये सब अधिगम को प्रभावित करता है।

अधिगम पर **मनोवैज्ञानिक वातावरण** का भी प्रभाव पड़ता है। छात्रों में परस्पर सहयोग, सद्भाव होता है तो वो अच्छी तरह से अधिगम कर पाते हैं।

अधिगम की प्रभावशाली विधियाँ (Effective Methods of Learning)

किसी भी विषय को सीखने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। आइये बात करते हैं इन विधियों के बारे में :–

(1) करके सीखना (Learning by Doing) :–

यह अधिगम की सबसे प्रभावशाली विधि है। इस विधि में बच्चे स्वयं ही उद्देश्य निर्धारित करते हैं, स्वयं योजना बनाते हैं, स्वयं ही उसे कार्यान्वित करते हैं, उसके बाद स्वयं उसका मूल्यांकन करते हैं तथा यादि कोई कमी रह जाये या गलती हो जाये तो स्वयं ही उन कमियों को ठीक करते हैं। करके सीखने की सबसे अच्छी बात यह है कि इसमें बच्चा जो सीखता है, उसका प्रभाव उसके मस्तिष्क पर बहुत लम्बे समय तक रहता है।

(2) अनुकरण द्वारा सीखना (Learning by Imitation) :–

इस प्रक्रिया में बच्चा दूसरों को देखकर सीखता है। सामान्य अर्थ में बोलें तो नकल करना। जैसा वह दूसरों को करते देखते हैं उसे ही अपने व्यवहार में दोहराता है। शैशवावस्था में बोलना, चलना यह सब बच्चा अनुकरण के द्वारा ही सीखता है। यह विधि बच्चों, कम बुद्धि व प्रखर बुद्धि के लोगों, कम शिक्षित लोगों पर अधिक प्रभावशाली होती है। चरित्र की शिक्षा और नैतिक शिक्षा के लिए भी यह विधि उपयुक्त है।

(3) निरीक्षण करके सीखना (Learning by Observation) :–

इस विधि में बच्चा वस्तु/स्थिति को देखकर सीखता है। वह अपने आस–पास की चीजों को Observe करता है और सीखता है। इस विधि से बच्चा जल्दी सीखता है और लम्बे समय तक उसे याद भी रखता है। बच्चों के समक्ष जो घटना होती है, वो उसे देखते हैं, प्रयोग भी करते हैं।

(4) परीक्षण करके सीखना (Learning by Experimentation) :–

इस विधि में हम किसी सोची गई बात को विभिन्न तथ्यों (Facts) के द्वारा सही सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। परीक्षण का अर्थ है किसी बात को आधार मानकर उसके सही/गलत होने का पता लगाना।

जैसे – यदि आपके मन में ये विचार आये कि क्या पानी कम तापमान में रखने पर जम जायेगा या तरल (Liquid) ही रहेगा?

ये बात जानने के लिए आप करते हैं परीक्षण। इस प्रक्रिया में आप जो कुछ भी करते हैं और जो भी परिणाम आपको मिलता है वो ज्ञान आपके जीवन में हमेशा के लिए रहा जाता है।

(5) पूर्ण व आंशिक विधि से सीखना (Learning by Whole & Part Method) :–

पूर्ण विधि में हम प्रत्येक बार सम्पूर्ण विषय को एक ही बार में पढ़ते हैं जबकि आंशिक विधि में सम्पूर्ण विषय को कई भागों में बाँट देते हैं और एक बार में केवल एक भाग पढ़ते हैं। फिर दूसरा भाग पढ़ते हैं। यह आपकी योग्यता व वायु पर पर निर्भर करता है कि आप कौन सी विधि से पढ़ते हैं। बच्चों के लिए आंशिक विधि अधिक उपयोगी है।

(6) अविराम व विराम विधि (Learning by Massed And Spaced) :–

जब हम कोई Topic या विषय लगातार पढ़ते हैं बिना किसी विराम के तो वह अविराम विधि है। जब हम पढ़ते समय बीच–बीच में कुछ विश्राम (Rest) करते हैं, वह विराम विधि है।

विराम विधि अधिक उपयोगी है क्योंकि इसमें थकावट नहीं होती और रुचि भी बनी रहती है। जब कोई विषय हल्का, रुचिकर या छोटा हो तब अविराम विधि अधिक उपयोगी है।

(7) सामूहिक विधियों से सीखना (Learning by Group Methods) :–

जब हम सामूहिक रूप से सीखते हैं तो वह रुचिकर भी होता है और प्रभावशाली भी। 'कॉलसनिक' का कहना है, ''बालक को प्रेरणा प्रदान करने, उसे शैक्षिक लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता करने, मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाने, उसके व्यवहार में सुधार करने, उसमें सहयोग की भावना का विकास करने के लिए सामूहिक विधियाँ कहीं अधिक प्रभावशाली हैं।

इन विधियों में आप न सिर्फ उस खास विषय को जान पाते हैं बल्कि बहुत से सामाजिक और मानवीय गुणों को भी सीखते हैं।

कुछ प्रमुख सामूहिक विधियों की बात करते हैं :–

(1) विचार–विमर्श विधि (Discussion Method) :–

इस विधि में एक जगह उपस्थित सभी बच्चे किसी विषय। समस्या पर अपने–अपने विचार रखते हैं। इस विधि में बच्चे सक्रिय रूप से भाग लेते हैं तथा शिक्षक आवश्यकतानुसार उन्हें निर्देश देते हैं।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

(2) सम्मेलन व विचार गोष्ठी विधि (Conference And Seminar Method) :–

इसमें समूह के सभी सदस्यों को अपने विचार रखने का अवसर मिलता है। एक समूह के सदस्यों के बीच तार्किक (Logical) एवं ज्ञानवर्द्धक विचार–विमर्श होता है। इस विधि में समूह के सदस्य किसी विशिष्ट समस्या पर विचार करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इसमें विद्यार्थियों को अधिक सोचने–समझने का अवसर मिलता है इसलिये उनका ज्ञान और अधिक स्पष्ट व दृढ़ हो जाता है।

(3) कार्यशाला विधि (Workshop Method) :–

इस विधि में बच्चे विचार–विमर्श के साथ–साथ रचनात्मक कार्य भी करते हैं। इसमें समस्या के विषय में विचार–विमर्श कर समाधान निकाला जाता है और उसके बाद प्रतिभागियों द्वारा सामूहिक कार्य किया जाता है।

(4) परियोजना विधि (Project Method) :–

इसमें बच्चों के सामने एक समस्या या विषय रखा जाता है और वे उसका हल निकालते हैं। इस विधि में बच्चे समस्या से सम्बन्धित सभी आँकड़ें एकत्र करते हैं, उनका विश्लेषण करते हैं तथा फिर निष्कर्ष निकालते हैं। सामूहिक रूप से कार्य करने के बाद बच्चों में स्पर्द्धा, सहयोग, सहानुभूति आदि सामाजिक गुणों का विकास भी होता है।

(5) खेल विधि (Play Way Method) :–

इस विधि में खेल द्वारा बच्चों को सिखाया जाता है। यह विधि बच्चों के लिए बहुत रुचिकर होती है इसलिए बच्चे शीघ्र सीखते हैं।

अधिगम के नियम (Laws of Learning)

हम जो भी सीखते हैं वह किसी न किसी नियम पर आधारित होता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न नियमों की खोज की है। इन नियमों के अन्तर्गत थार्नडाइक, स्किनर, गैस्टाल्ट, लैबिन आदि मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत है। सीखने से सम्बन्धित नियमों में सबसे महत्वपूर्ण है **थार्नडाइक** का नियम। थार्नडाइक ने अपनी पुस्तक "Educational Psychology" में इन नियमों व सिद्धांतो का उल्लेख किया है।

'थार्नडाइक' के अनुसार ''अधिगम एक मानसिक प्रक्रिया है, जो किसी विशिष्ट प्रकार की परिस्थितियों में किसी उद्दीपन का सम्बन्ध एक विशिष्ट अनुक्रिया से होने पर प्राणी को कुछ न कुछ सीखने का अवसर प्रदान करती है।''

(1) थार्नडाइक के अधिगम के नियम निम्न हैं–

(1) **मुख्य नियम (Primary Laws) :–**

(i) तत्परता का नियम (Law of Readiness)

(ii) अभ्यास का नियम (Law of Exercise)

(iii) प्रभाव का नियम (Law of Effect)

(2) **गौण के नियम (Subsidiary Laws) :–**

(i) बहु प्रतिक्रिया का नियम (Law of Multiple Response)

(ii) साहचर्य परिवर्तन का नियम (Law of Associative Shifting)

(iii) आत्मीकरण का नियम (Law of Assimilation)

(iv) आंशिक क्रिया का नियम (Law of Practical Activity)

(v) मनोवृत्ति का नियम (Law of Disposition)

(1) मुख्य नियम (Primary Laws) :–

अधिगम के मुख्य नियम के अन्तर्गत तीन नियम आते हैं :–

(1) तत्परता का नियम (Law of Readiness) :–

किसी भी कार्य के प्रति तत्परता हमारे कार्य की गति व मात्रा को प्रभावित करती है। यदि आप किसी कार्य को करने के लिए Physically और Mentally ready हैं तो आपको वो काम करने में बहुत आनन्द आयेगा। आप focused रहेंगे और अच्छे से सीख पायेंगे। यदि आप किसी कार्य को करना ही नहीं चाहते हैं तो उसे बिना मन के करेंगे।

(2) अभ्यास का नियम (Law of Exercixe) :–

अभ्यास द्वारा किसी भी कार्य को आसानी से सीखा जा सकता है। अभ्यास का अर्थ है, एक विषय को बार–बार समझना या पढ़ना। इस विधि से व्यक्ति के कौशल में वृद्धि होती है। इसे **उपयोग व अनुपयोग का नियम** भी कहते हैं। जब एक Topic को आप पढ़ते हो और फिर उस पर आधारित बहुत सारे प्रश्नों की Practice करते हो जैसे– Maths में।

(3) प्रभाव का नियम (Law of Effect) :–

अपने प्रयासों के बादजब किसी बच्चे को सन्तोषजनक (Satisfactory) सफलता प्राप्त होती है तो एक सकारात्मकता (Positivity) उसमें आती है और उसे सन्तोष मिलता है। ये Positivity उसे आगे सीखने में भी मदद करती है।

(2) गौण नियम (Subsidiary Laws) :–

(i) बहु प्रतिक्रिया का नियम (Law of Multiple Response) :–

ये नियम कहता है कि अधिगम के प्रति रुचि रखने वाले बच्चे को प्रयत्न व भूल के आधार पर प्रयास करने का अवसर देना चाहिए (Multiple Chance)। 'थार्नडाइक' कहते हैं कि जब कोई प्राणी सीखता है तो वो कई प्रकार की प्रतिक्रिया करता है

जिसमें कुछ सही होती है कुछ गलत, परन्तु धीरे–धीरे कोशिश करके उसे यह ज्ञात हो जाता है कि कौन सी उपाय सही है।

(ii) साहचर्य परिवर्तन का नियम (Law of Associative Shifting) :–

इस नियम के अन्तर्गत हम अपनी वर्तमान परिस्थिति को अपने पूर्व ज्ञान या अनुभव से connect करते हैं। अनुभव के आधार पर हम किसी भी कार्य को सटीकता से व कम समय में कर सकते हैं। इस नियम को 'सम्बद्ध परिवर्तन का नियम' भी कहते हैं।

(iii) आत्मीकरण का नियम (Law of Assimilation) :–

'ज्ञात से अज्ञात' का शिक्षण सूत्र इसी नियम पर आधारित है। इसमें हम पूर्व ज्ञान का नवीन ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करते हैं और फिर से जो निष्कर्ष निकलता है उसे अपने मस्तिष्क का स्थायी अंग बना लेते हैं अर्थात वो हमारे Mind में हमेशा के लिए रह जाता है।

(iv) आंशिक क्रिया का नियम (Law of Practical Activity) :–

'अंश से पूर्ण की ओर' शिक्षण सूत्र पर ये आधारित है। पाठ योजना को छोटी–छोटी Units में बाँटना। जब किसी ज्ञान को छोटे–छोटे खण्डों में बाँटते हैं तो वो अधिक सरलता से ग्रहण किया जा सकता है।

(v) मनोवृत्ति का नियम (Law of Disposition) :–

ये नियम कहता है कि अधिगम का हमारी मनोवृत्ति से गहरा सम्बन्ध होता है। किसी विषय को सीखने के लिए हम जैसा अपना mind make up कर लेते हैं उसका वैसा ही परिणाम मिलता है। हम अगर पहले ही सोच लेंगे कि ये तो बहुत कठिन है– हमसे ना हो पायेगा। तो हमारा Mind उसी तरह काम करेगा। यदि आप में सीखने की रुचि, तत्परता आदि है तो आप अच्छे से सीख पायेंगे। सीखने के प्रति आपका Positive attitude होना बहुत जरूरी है।

अधिगम के नियमों का उपयोग/महत्व (Importance of Laws of Learning)

(1) तत्परता का नियम (Law of Readiness) :–

शिक्षक को चाहिए कि सबसे पहले बच्चें शारीरिक रूप व मानसिक रूप से तैयार हों।

शिक्षक को नवीन ज्ञान देने से पहले बच्चों की रुचि, योग्यता, क्षमता व उपलब्धि का परीक्षण कर लेना चाहिए।

(2) अभ्यास का नियम (Law of Exercise) :–

शिक्षक जो बच्चों को पढ़ाते हैं उसका अभ्यास जरूर करायें।

बच्चों में समय–समय पर वाद–विवाद कराते रहें जिससे उनका अभ्यास हो और वो विषय को अच्छे से समझ पायें।

(3) प्रभाव का नियम (Law of Readiness) :–

बच्चों को Motivate करना चाहिए। दण्ड व पुरस्कार की व्यवस्था भी करनी चाहिए।

श्रेष्ठ शिक्षण विधियोंका उपयोग करें जो कि बच्चों की योग्यता व क्षमता के स्तर की हों।

अधिगम के सिद्धांत (Theories of Learning) :

सीखने में शामिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं (Psychological Process) की व्याख्या करने वाले विभिन्न सिद्धांतों पर चर्चा करेंगे। जैसे –

(1) उद्दीपन–अनुक्रिया सिद्धांत (Stimulus-Response Theory)

(2) प्राचीन अनुबंध सिद्धांत (Classical Conditioning Theory)

(3) क्रिया प्रसूत/नैमित्तिक अनुबंध सिद्धांत (Operant/Instrumental Conditioning Theory)

(4) प्रेक्षणात्मक अधिगम सिद्धांत (Observational Learning Theory)

(5) संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धांत (Cognitive Learning Theory)

(6) वाचिक अधिगम सिद्धांत (Verbal Learning Theory)

(7) संप्रत्यय अधिगम सिद्धांत (Concept Learning Theory)

(8) कौशल अधिगम सिद्धांत (Skill Learning Theory)

(1) उद्दीपक–अनुक्रिया सिद्धांत (Stimulus-Response Theory)

'थार्नडाइक' द्वारा प्रतिपादित यह नियम अनेक नामों से जाना जाता है जैसे– प्रयास व त्रुटि का सिद्धान्त (Trial And Error Theory), उद्दीपन–अनुक्रिया सिद्धान्त (Stimulus-Response Theory), सीखने का सम्बद्ध सिद्धान्त (Bond Theory of Learning), सम्बन्धवाद का सिद्धान्त (Theory connectionism)। यह सिद्धांत **1988** में दिया गया था।

'थार्नडाइक' के अनुसार जब कोई व्यक्ति कुछ सीखता है तो उसके सामने एक विशेष परिस्थिति (Situation) होती है और वो Situation उस व्यक्ति को किसी न किस प्रकार की अनुक्रिया (Response) कहा। प्रयाव व त्रुटि (Trial and error), के सिद्धान्त के अनुसार जब हमारे सामने कोई समस्या होती है तो हम उसका हल करने के लिए प्रयास करते हैं। प्रयास करने के दौरान हमसे गलतियाँ भी होती हैं लेकिन फिर से हम प्रयास करते हैं और अन्त में समस्या हल प्राप्त कर लेते हैं। हल की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि आप अपनी त्रुटियों से सीखे और उसमें सुधार करके फिर से प्रयास करें।

थार्नडाइक का प्रयोग (Experiment of Thorndike)

थार्नडाइक ने कई प्रयोग किये हैं। उनके एक प्रयोग में उन्होंने एक भूखी बिल्ली को पिंजरे में बंद कर दिया। उस पिंजरे का दरवाजा एक चटकनी के दबने से खुलता था। पिंजरे के बाहर, बिल्ली के ठीक सामने उद्दीपक के रूप में मछली के मांस का टुकड़ा रखा गया। अब जैसे ही बिल्ली की नजर उस मांस के टुकड़े पर गई तो बिल्ली ने अपनी अनुक्रियायें प्रारम्भ कर दी। वह पिंजरे से बाहर निकलने की कोशिश करती रही। इसी दौरान उसका पंजा चटकनी पर पड़ गया और दरवाजा खुल गया और उसने वह टुकड़ा खा लिया। इस प्रयोग को थार्नडाइक ने कई बार दोहराया। बार–बार दोहराने से अब बिल्ली समझ गई थी चटकनी पर पैर रखने से दरवाजा खुल जायेगा और बिना भूल के वह दरवाजा खुल जायेगा और बिना भूल के वह दरवाजा खोलने लगी। इस सिद्धांत में 'प्रयास व त्रुटि' के नियम को महत्व दिया गया।

इस प्रयोग द्वारा हमें ज्ञान होता है–

(1) अभिप्रेरक (Motive)का।

(2) लक्ष्य (Goal) का।

(3) बाधाएँ (Blocks) का।

(4) उल्टे–सीधे प्रयत्न (Random Movements) का।

(5) संयोगवश सफलता (Chance Success)

(6) सही प्रयत्न का चुनाव (Selection of Proper Movement)

(7) स्थिरता (Fixation) का।

थार्नडाइक के सीखने के सिद्धान्त का शिक्षा में उपयोग (Application of Thorndike's Theory of Learning in Education)

इन सिद्धांतों का शिक्षा में कैसे प्रयोग किया जा सकता है, आइये जानते हैं–

समस्या–समाधान की प्रक्रिया में इस सिद्धांत का प्रयोग किया जा सकता है।

बच्चों को अभ्यास का अवसर दिया जाना चाहिए।

यह सिद्धांत करके सीखने (Learning by doing) पर बल देता है।

बच्चों के द्वारा होने वाली त्रुटियों (errrors) का शिक्षक को मार्गदर्शन करना चाहिए।

बच्चों को उनके लक्ष्य के प्रति Motivated रखना बहुत जरूरी है।

यह सिद्धान्त अधिगम की प्रक्रिया को वैज्ञानिक रूप भी प्रदान करता है।

सिद्धांत के दोष (Flaws of this theory)

इस विधि में अधिगम के कारणों पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया है।

कुछ मनोवैज्ञनिकों का मानना है कि एक काम को बार–बार करने से अच्छा है उसे किसी और विधि से सीख लें।

कभी–कभी अभ्यास की जगह शिक्षक रटने पर बल देने लगते हैं।

यह अधिगम की यांत्रिक प्रक्रिया है।

पावलव का सम्बद्ध प्रतिक्रिया का सिद्धांत (Classical conditioning theory of pavlov)

इस प्रकार का अध्ययन सबसे पहले 'ईवान पी0 पावलव' द्वारा किया गया। यह सिद्धांत 1904 में रूस के मनोवैज्ञानिक पावलव द्वारा प्रतिपादित किया गया। इस सिद्धांत को 'सम्बद्ध प्रत्यावर्तन सिद्धांत' और 'अनुक्रिया अनुकूलित सिद्धांत' भी कहते हैं।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

ये सिद्धांत शरीर विज्ञान से सम्बन्धित है और इसके समर्थक व्यवहारवादी (Behaviourists) हैं। व्यवहारवादियों के अनुसार, ''अधिगम अनुकूलन द्वारा आदत का बनना है।''

अनुकूलित अनुक्रिया का अर्थ है अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक क्रिया का उत्पन्न होना। जैसे – एक छोटा बच्चा फूला हुआ गुब्बारा पकड़ता है जो तीव्र ध्वनि के साथ उसके हाथों में ही फट जाता है और बच्चा डर जाता है। जब अगली बार वह गुब्बारा पकड़ता है तो उसे उस तीव्र ध्वनि का भय, अनुक्रिया (Response) उत्पन्न करता है। यहाँ पर अनुबंधित उद्दीपक (Conditioned stimulus) के रूप में गुब्बारे तथा अनुबंधित उद्दीपक (Unconditioned stitmulus) के रूप में तीव्र ध्वनि साथ–साथ प्रस्तुत किये जाने के कारण ऐसा होता है।

पावलव का प्रयोग (Experiment of pavlov)

पावलव ने एक कुत्ते की लार ग्रन्थि का ऑपरेशन करके उसके गले में लार को एकत्र करने के लिए काँच की एक नली लगाई। इसके बाद कुत्ते को भूखा रखा गया और उसे भोजन देने से पहले कुछ दिनों तक घण्टी बजाई गई। यहाँ पर देखा गया कि घण्टी बजते ही कुत्ते के मुँह से लार टपकने लगती है। कुत्ते द्वारा की जाने वाले इस अनुक्रिया को ही उसके द्वारा सम्बद्ध सहज क्रिया कहा गया (Classical Conditioning)। फिर इस प्रक्रिया में कुत्ते को घंटी बजने के बाद भोजन नहीं किया गया परन्तु वो घंटी बजते ही लार टपकना शुरु कर देता था। घंटी और भोजन के बीच इस connection के फलस्वरूप, घंटी की ध्वनि के प्रति कुत्ते द्वारा लार के स्त्राव के रूप में प्रदर्शित एक नयी अनुक्रिया प्राप्त हुई। इसे अनुबंधन (condition) कहा गया। आपने देखा कि जब कुत्ते को भोजन दिया जाता है तो वह लार टपकाने लगता है। अतः भोजन अनुबंधित उद्दीपक (Unconditioned stimulus) US है और इसके बाद होने वाला लार स्त्राव अनअनुबंधित अनुक्रिया (Unconditioned Response) UR है। जब घंटी की ध्वनि के साथ लार स्त्राव होता है तो घंटी, अनुबंधित उद्दीपक (Unconditioned Stimulus) CS और लार का स्त्राव, अनुबंधित अनुक्रिया

(Conditioned Response) CR। इस प्रकार के अनुबंधन को प्राचीन अनुबंधन (Classical Conditioning) कहते हैं।

संक्षेप में प्रयोग की अवस्थायें –

(1) **पूर्व में :–**

सहज / स्वाभाविक। अनुबंधित अनुक्रिया

अनुबंधित उद्दीपक

(भोजन) ⟶ लार टपकना

Unconditioned Stimulus ⟶ Unconditioned Response

(US) (UR)

(2) **प्रयोग में :–**

घंटी (CS) + भोजन (US) ⟶ लार टपकना (UR)

अनुबंधित उद्दीपक अनुबंधित उद्दीपक अनुबंधित अनुक्रिया

(3) **अनुबंध के बाद :–**

घंटी (CS) + भोजन (US) लार टपकना (UR)

अनुबंधित उद्दीपक अनुबंधित उद्दीपक अनुबंधित अनुक्रिया

'गिलफोर्ड' के अनुसार

"इस तथ्य की सामान्य व्याख्या यह है कि जब दो उद्दीपक बार–बार दिये जाते हैं, पहले नया, बाद में पुराना तो कुछ समय बाद पहली क्रिया भी प्रभावशाली हो जाती है।

'लाडैल' के अनुसार

"अनुकूलित अनुक्रिया में कार्य के प्रति स्वाभाविक उत्तेजक के स्थान पर एक प्रभावहीन उद्दीपक होता है, जो स्वाभाविक उद्दीपक के साथ सम्बद्ध होने के परिणामस्वरूप प्रभावपूर्ण हो जाता है।"

सम्बद्ध प्रतिक्रिया को नियन्त्रित करने वाले कारक (Factors Controlling Conditioned Reaction) :–

अनुकूलित अनुक्रिया को नियन्त्रित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं :–

(1) अनुक्रिया का प्रभुत्व (Dominance of the Response) :–

उद्दीपक में, अनुक्रिया पैदा करने की शक्ति होनी चाहिए और अनुक्रिया को पैदा करने हेतु, उद्दीपक भी होना चाहिए। पावलाव में अपने प्रयोग में घण्टी बजने और भूखे कुत्ते को भोजन के साथ संयुक्त किया है न कि भोजन को घण्टी बजने के साथ। लार मात्र भोजन से ही पैदा हो सकती है, किसी अन्य वस्तु से नहीं।

(2) उद्दीपकों की पुनरावृत्ति (Repetition of Stimulus) :–

किसी क्रिया को जब हम बार–बार करते हैं तो वो हमारे स्वभाव का अंग बन जाती है जैसे–किसी बच्चे को बिल्ली से डराया गया और फिर बाद में रोयेदार चीजों से तो वह उनसे भी डरने लगा।

(3) दो उद्दीपकों में समय का सम्बन्ध (Time Relation Between Two Stimulus) :–

अनुकूलित अनुक्रिया के अन्तर्गत सबसे पहले नया उद्दीपक दिया जाना चाहिए फिर मौलिक। दोनों उद्दीपकों के मध्य ज्यादा अन्तर नहीं होना चाहिए वरना प्रभाव कम हो जाता है। 5 सेकेण्ड के अन्तर का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है।

(4) भावनात्मक प्रेरक (Emotional Motives) :–

इस क्रिया को नियन्त्रित करने वाला सर्वाधिक प्रबल कारक है भावात्मक प्रेरक। Emotional Motives जितने Strong होंगे, अनुक्रिया उतनी ही अधिक होगी और उतना ही अधिक प्रभाव होगा।

सम्बद्ध प्रतिक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing of Conditioned Response) :–

(1) अभिप्रेरणा (Motivation)

(2) बुद्धि (Intelligence)

(3) अभ्यास (Practice)

(4) आयु (Age)

(5) मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health)

(6) बाह्य कारक (External Factors)

(7) प्रानकूलित अनुक्रिया (Deconditioning) :–

जब अन्य क्रिया से अनुकूलित अनुक्रिया के सम्बन्ध में वृद्धि कर दी जाती है तो उसे अनुकूलित अनुक्रिया कहते हैं।

सम्बद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त का शिक्षा में उपयोग (Application of Conditioned Response Theory in Education) :–

यह सिद्धांत **व्यवहार** पर आधारित है। 'वाटसन' का कहना है – ''मुझे कोई भी बच्चा दे दो, मैं उसे जैसा चाहूँ वैसा बना सकता हूँ।''

शिक्षा में इस सिद्धात का प्रयोग कैसे किया जा सकता है, देखते हैं –

कोई भी कार्य बार–बार करने से आदत बन जाता है और इस सिद्धांत द्वारा विभिन्न आदतों का विकास किया जा सकता है।

बच्चों को अक्षर ज्ञान कराने व शब्दों का अर्थ सिखाने के लिये इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

बच्चों में विकसित बुरी आदतों को दूर किया जा सकता है।

बच्चों में संवेगात्मक अस्थिरता का उपचार करने के लिए।

इस विधि के द्वारा बच्चों की वैयक्तिक भिन्नताओं (Individual difference) को ध्यान में रखकर शिक्षण किया जा सकता है।

बच्चों में अनुशासन की भावना का विकास किया जा सकता है।

'जी0 एण्डसन' के अनुसार – ''अनुकूलित अनुक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि उसके आधार पर हमें एक ऐसी आधारभूत वैज्ञानिक सामग्री प्राप्त हुई है, जिसके द्वारा हम अधिगम के एक सिद्धान्त का निर्माण कर सकते हैं।''

सिद्धान्त के दोष (Flaws of This Theory) :–

यह सिद्धान्त प्रौढ़ों के लिए (Adults) के लिए Useful नहीं है।

यह सिद्धान्त अधिगम के शारीरिक आधारों को स्पष्ट करने में सफल नहीं है।

इस सिद्धान्त में स्थायित्व (Durability) की कमी है अर्थात् जब उद्दीपक को हरा लिया जाता है तो कभी–कभी अनुक्रिया भी Effectless हो जाती है।

स्किनर का क्रिया प्रसूत अधिगम सिद्धान्त (Theory of Skinner's Operant Conditioning) :–

क्रिया प्रसूत अधिगम सिद्धान्त का सक्रिय अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन 'B.F. Skinner' ने 1938 में किया। स्किनर ने व्यवहारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में बहुत सारे प्रयोग किये। इस सिद्धान्त के माध्यम से स्किनर ने सीखने के लिए सुनियोजित परिस्थितियों के सृजन पर बल दिया।

'स्किनर' का शोध कार्य 'थार्नडाइक के प्रभाव का नियम के सिद्धांत से प्रेरित था। जिसमें कहा गया था कि सुखद या धनात्मक परिणामों के बाद व्यवहार की Repetition की प्रबल सम्भावना होती है तथा अप्रिय या ऋणात्मक परिणामों के बाद व्यवहार में कमी आने या रूक जाने की सम्भावना होती है।

स्किनर का प्रयोग (Experiment of Skiner) :–

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत स्किनर ने चूहों पर प्रयोग किया। स्किनर ने एक Box में लीवर लगाकर, उस लीवर का सम्बन्ध एक प्याली से कर दिया। इस लीवर को दबाने से खट्ट की ध्वनि के साथ ही प्याली में भोज्य पदार्थ का टुकड़ा आ गिरता था। लीवर के स्थान पर ही बॉक्स में प्रवेश का मार्ग भी रखा गया और उस मार्ग से चूहे को उस box में छोड़ा गया। प्रवेश करते समय चूहे का पैर लीवर पर पड़ा तो खट्ट की आवाज हुई। चूहा बॉक्स में प्रवेश कर गया और रखे हुये खाने को खा लिया। स्किनर ने इस प्रयोग को बार–बार Repeat किया तो उन्होंने देखा कि भूख लगने पर चूहा उस लीवर को बार–बार दबाना सीख गया।

इस आधार पर 'स्किनर' ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि व्यक्ति को किसी क्रिया के उपरान्त कोई उद्दीपक (Stimulus) प्राप्त हो जाये तो वह उसे Curiosity से करने लगता है। इस सिद्धान्त के द्वारा बच्चों को भी पुनरावृत्ति (Repetition) के द्वारा सिखाया जा सकता है। स्किनर ने इसी सिद्धान्त के आधार पर शिक्षण–अधिगम के Process में पुनर्बलन (Reinforcement) को महत्व दिया है।

'M.L. Bigge' के अनुसार –

"सक्रिय अनुकूलित अनुक्रिया, अधिगम की एक प्रक्रिया है जिसमें (Continuous) अनुक्रिया (Response) होती है।"

'स्किनर' के अनुसार –

"व्यवहार प्राणी या उसके अंश भी किसी संदर्भ में गति है, यह गति या तो प्राणी में स्वयं सिद्ध निहित होती है या किसी बाह्य क्षेत्र से आती है।"

अनुक्रिया के प्रकार (Types of Response) :–

Response दो प्रकार के होते हैं –

(1) अनुक्रियात्मक अनुक्रिया (Elicited Response)

(2) निर्गमित अनुक्रिया (Emitted Response)

(1) अनुक्रियात्मक अनुक्रिया (Elicited Response) –

इस अनुक्रिया के अन्तर्गत पुनर्बलन हेतु एक ज्ञात उद्दीपक को वांछित अनुक्रिया के साथ सम्बन्ध कर दिया जाता है।

(2) निर्गमित अनुक्रिया (Positive Reinforcement) –

इस प्रकार का पुनर्बलन सक्रिय प्रतिक्रिया (Active Reaction) की संभावनाओं को बढ़ाता है। Positive Reinforcement आपको हमेशा आगे बढ़ने के लिए Motivate करता है।

(3) नकारात्मक पुनर्बलन (Negative Reinforcement) –

नकारात्मक पुनर्बलन आपकी Performance को low करता है जैसे– दण्ड देना।

पुनर्बलन की सारणियाँ (Schedules of Reinforement) :–

पुनर्बलन की सारणी का अर्थ है कि अनुक्रिया के बाद पुनर्बलन किस क्रम व कितने समय में दिये जाये। पुनर्बलन की चार सारणियाँ निम्न हैं –

(1) निश्चित अनुपात पुनर्बलन (Fixed Ratio Reinforcement) –

इसके अन्तर्गत एक Fixed Ratio में ही पुनर्बलन प्रदान किया जाता है।

(2) निश्चित समय अवधि पुनर्बलन (Fixed Interval Reinforcement) –

इसके अंतर्गत एक निश्चित समयान्तराल पर ही पुनर्बलन दिया जाता है। स्किनर ने अपने प्रयोग में 30 सेकेण्ड से 10 मिनट तक पुनर्बलन का उपयोग किया है।

(3) शत–प्रतिशत पुनर्बलन (Hundred Percent Reinforcement) –

जब वांछित (Needed) अनुक्रिया होती है तो इस प्रकार का पुनर्बलन प्रदान किया जाता है। इस पुनर्बलन द्वारा प्राणी किसी अनुक्रिया से शीघ्र सीख जाता है लेकिन पुनर्बलन की समाप्ति पर अनुक्रिया जल्दी लुप्त भी हो जाती है।

(4) आंशिक पुनर्बलन (Partial Reinforcemtn) –

इसमें अनिश्चित रूप में पुनर्बलन दिया जाता है। व्यक्ति को यह नहीं पता कि उसे पुनर्बलन मिलेगा।

स्किनर के क्रिया प्रसूत सिद्धान्त का शिक्षा में प्रयोग (Application of Operant Conditioning Theory in Education) :–

अधिगम की प्रक्रिया को सरल व प्रभावी बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जाना चाहिए।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

इस सिद्धान्त के द्वारा मानसिक रूप से अस्वस्थ बच्चों को भी सिखाया जा सकता है।

इस सिद्धान्त के द्वारा शिक्षक, छात्रा की अधिगम में Activeness पर बल दे सकते हैं।

शिक्षक को बच्चों के सामने Content को छोटे–छोटे भागों के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए जिससे वो सरलता से सीख पायें।

शिक्षक वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर शिक्षा प्रदान कर सकता है।

कोहलर का सूझ या अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त (Insight Theory of Liestalt):–

'मैक्स वर्थीमर' ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और 'कोफका व कोहलर' ने इस सिद्धान्त को विकसित करके आगे बढ़ाया। 'Gestalt' जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है आकार और स्वरूप। 'मैक्स वर्थीमर' के अनुसार – ''किसी भी समग्राकृति की विशेषतायें मात्र उसके वैयक्तिक तत्वों से नहीं वरन् उसके आन्तरिक संगठन या प्रकृति द्वारा निर्धारित होती है।''

गेस्टाल्ट में किसी वस्तु को छोटे–छोटे भागों में न देखकर उसे समग्र रूप में देखा जाता है। जब किसी समस्या का समाधान खोजते समय एकदम से किसी हल के मस्तिष्क में आते ही प्रत्यक्षीकरण (Actualization) में तीव्र गति से परिवर्तन होता है, तो यह परिवर्तन अन्तदृष्टि कहलाता है।

'गुड' ने कहा है कि – ''अन्तदृष्टि, यथार्थ स्थिति का आकस्मिक, निश्चित एवं तात्कालिक ज्ञान है।''

'स्किनर' के अनुसार– ''अन्तर्दृष्टि को परिभाषित करना जटिल है। इससे आशय है समग्र परिस्थिति की पकड़।''

'एण्डरसन' के अनुसार– ''अन्तर्दृष्टि से आशय, समस्या के निराकरण को अचानक प्राप्त कर लेने से है। इससे प्रारम्भ होने वाली प्रक्रिया परिस्थिति के अनुसार चलती है तथा छल प्रत्यकक्ष ज्ञान के स्थान के सन्दर्भ में होता है।

'कोहलर' के अनुसार– ''एक अधिक तकनीकी अर्थ में सूझ का आशय किसी समस्या के हल को एकाएक पकड़ लेना है जिससे एक ऐसी प्रक्रिया आरम्भ होती है जो परिस्थिति के अनुसार चलती है तथा समस्या का निराकरण प्रत्यक्ष ज्ञान की क्षेत्र संख्या के सन्दर्भ में होता है।''

कोहलर का प्रयोग (Experiment of Kohler):–

कोहलर का अपना पहला प्रयोग चिम्पांजी पर किया। कोहलर ने एक पिंजरे में दो छड़ियों को इस प्रकार रखा, जिसमें दोनों छड़ियों को सरलता से जोड़ा जा सके और केले को पिंजरे के बाहर इतनी दूर रखा, जिससे दोनों छड़ियों को एक बनाकर, केलों को प्राप्त किया जा सके।

चिंपाजी ने पहली बार, केले लेने के लिए केवल एक छड़ी का ही प्रयोग किया लेकिन कुछ समय बाद वह अचानक ही दोनों छड़ियों को जोड़ने में सफल हुआ और उसने दोनों छड़ियों से केले को प्राप्त कर लिया।

इस प्रयोग से निष्कर्ष निकलता है कि सीखने में किसी भी विषय–वस्तु का संगठन करना बहुत आवश्यक है।

सूझ या अन्तर्दृष्टि से सीखने की विशेषताएँ (Characteristics of Insight Learning) :–

(1) अन्तर्दृष्टि अचानक से ही उत्पन्न होती है।

(2) जिसका बौद्धिक स्तर उच्च होता है उसमें अन्तर्दृष्टि का विकास तीव्र गति से होता है।

(3) आयु भी अन्तर्दृष्टि को प्रभावित करती है। यह बच्चों में कम काम करती है।

(4) यह अवबोध पर आधारित होती है।

(5) इसके द्वारा सीखे गये कार्य की पुनरावृत्ति हो सकती है।

सूझ या अन्तर्दृष्टि को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Insight) :–

(1) बुद्धि (Intelligence)

(2) अनुभव (Experience)

(3) समस्या का प्रकार (Type of Problem)

(4) प्रयास (Attempt)

(5) प्रत्यक्षीकरण (Actualization)

सूझ या अर्न्तदृष्टि सिद्धान्त का शिक्षा में प्रयोग (Application of Insight Theory in Education):–

सबसे पहले शिक्षक को बच्चों के सामने समस्या को समग्र रूप में रखना चाहिए।

बच्चों को मानसिक रूप से तत्पर बनाने के लिए।

कार्य बच्चों की क्षमता के अनुरूप होना चाहिए।

अन्तर्दृष्टि का प्रयोग समस्या समाधान में करवाना चाहिए।

शिक्षक को बच्चों के सामने उद्देश्य स्पष्ट रूप से रखना चाहिए।

बच्चों को पूर्वानुभवों के संगठन पर भी शिक्षक को ध्यान देना चाहिए।

बच्चों के ध्यान को समस्या पर केन्द्रित करने के लिए शिक्षक को उनकी जिज्ञासाओं को यथावत् (as it is) रखना चाहिए।

दोष (Flaws):–

इस सिद्धान्त के द्वारा सभी प्रकार का अधिगम नहीं किया जा सकता है।

इस सिद्धांत को बच्चों व पशुओं पर apply नहीं कर सकते हैं क्योंकि उनमें चिन्तन का अभाव होता है।

लिव वाइगोत्सकी का सीखने का सिद्धान्त (Learning Theory of Vygotsky) :–

वाइगोत्सकी रूस के एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक थे जिनका विकासात्मक मनोविज्ञान (Developmental Psychology) के क्षेत्र में विशेष स्थान है। इनका मानना है कि सीखने में सांस्कृतिक संगठन, सामाजिक संस्थाओं, विद्यालय और संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। 'वाइगोत्सकी' के अनुसार– ''सीखना एक आवश्यक और सार्वभौमिक (Universal) तथ्य है जो सांस्कृतिक संगठनों के विकास के प्रयास, खासकर मानव के मनोवैज्ञानिक कार्यों के प्रति उत्तरदायी होता है।''

उनका तात्पर्य है कि सीखने की प्रक्रिया विकास पर आधारित होती है।

बालक के संज्ञात्मक विकास में सामाजिक प्रभावों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यही नहीं बल्कि बालक के विकास के प्रत्येक पक्ष में समाज का योगदान होता है। समाज में बच्चे को जिस प्रकार का वातावरण मिलता है वह उसके विकास को पूरी तरह प्रभावित करता है।

सीखने की प्रक्रिया विकास पर आधारित होती है परन्तु विकास सीखने की प्रक्रिया पर आधारित नहीं होता है।

अन्तःक्रिया (Interaction) के कारण ही बालक में विभिन्न प्रकार का विकास होता है व उसे प्रेरणा मिलती है जो सीखने में Help करती है।

अधिगम में संस्कृति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। वाइगोत्सकी का मानना है कि संस्कृति के द्वारा बालक सीखने का प्रयास करता है।

बालक विभिनन सामाजिक, सांस्कृतिक व ऐतिहासिक परम्पराओं (Rituals) को सीखते हैं।

सीखने की प्रक्रिया में **अनुकरण** का विशेष स्थान होता है। घर में बच्चे माता–पिता व विद्यालय में अपने शिक्षकों का अनुकरण (Imitation) करते हैं।

सीखने की प्रक्रिया का मूल्यांकन वैयक्तिक विशेषताओं के विश्लेषण की जगह सामाजिक गत्यात्मकता (Social dynamics) के विश्लेषण पर आधारित होना चाहिए।

समस्या समाधान की योग्यता सीखने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण चरण (Step) होता है।

वाइगोत्सकी बच्चों कि क्रियाशीलता पर बल देते हैं।

कुछ बालक सामान्य से अधिक व कुछ बालक सामान्य से कम सीखते हैं।

वाइगोत्सकी के अनुसार सीखने की प्रक्रिया सामाजिक (Social), सांस्कृतिक (Cultural) व मनोवैज्ञानिक तथ्य (Psychological facts) द्वारा ही सम्पन्न होती है।

सामाजिक विकास व समाजीकरण (Socail Development And Socialization) :–

जन्म के समय बच्चा सामाजिक प्राणी नहीं होता है। जैसे–जैसे वो समाज के सम्पर्क में आता है वो सामाजिक बनता जाता है। समाज में जन्म लेना, विकसित होना,

इन सबके लिए सामाजिक आदर्शों तथा मूल्यों का अनुसरण करना ही सामाजिक विकास की ओर कदम बढ़ाना है।

'युंग' के अनुसार– ''समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है और समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है तथा जिनके द्वारा समाज के मूल्यों और मान्यताओं को स्वीकार करने की उसे प्रेरणा मिलती है।

वाइगोत्सकी के अनुसार बालक के सामाजिक विकास को जो तत्व प्रभावित करते हैं वे निम्न हैं–

(1) परिवार (Family) :–

बालक को समाज के योग्य बनाने में सबसे महत्वपूर्ण कारक है परिवार। परिवार का वातावरण बच्चे के सामाजिक समायोजन को प्रभावित करता है।

(2) समुदाय (Community) :–

समुदाय बालक के सामाजिक विकास एक महत्वपूर्ण भाग होता है। समुदाय में रहकर बालक समुदाय के नियमों का पालन भी करता है। समाज में रहकर बालक अच्छे व बुरे दोनों व्यवहारों को सीखता है। धीरे–धीरे बालक का व्यक्तित्व सामाजिक दृष्टि से सन्तुलित हो जाता है।

(3) विद्यालय (School) :–

परिवार और समुदाय के बाद विद्यालय बच्चे के सामाजिक विकास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है। विद्यालय में बच्चा न केवल विषय–वस्तु का ज्ञान प्राप्त करता है बल्कि सामाजिक मूल्यों को भी सीखता है।

(4) खेल–कूद (Games) :–

खेल के द्वारा बच्चा अपनी सामाजिक प्रवृत्तियों व सामाजिक व्यवहार का प्रदर्शन करता है। खेल के द्वारा बहुत से सामाजिक गुणों का विकास बच्चे में होता है।

(5) **अवसर की प्राप्ति (Gain to Opportunity) :–**

यदि बच्चे को अपनी क्षमता, रूचि व Creativity के आधार पर प्रयोग करने के अवसर मिलते रहें तो बच्चे का सही दिशा में सामाजिक विकास होता है।

(6) अन्य कारक जैसे धर्म, जाति, संस्कृति आदि भी बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं।

ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत (Bruner's Cognitive Development Theory) :–

ब्रूनर का यह सिद्धांत संज्ञानात्मक विकास पर बल देता है। इन्होंने विकास की तीन अवस्थाओं के बारे में बताया है–

(1) सक्रिय प्रतिनिधित्व की अवस्था (Enactive Stage)

(2) स्थूल प्रतिनिधित्व की अवस्था (Iconic Stage)

(3) प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व की अवस्था (Symbolic Stage)

सक्रिय प्रतिनिधित्व की अवस्था में शिशु अपनी भावनाओं को शब्दहीन Actions द्वारा व्यक्त करता है, जैसे भूख लगने पर वह रोता है। अवस्था– जन्म से 2 वर्ष तक

स्थूल प्रतिनिधित्व की अवस्था में बालक अपनी Feelings को अपने मन में कुछ Images बनाकर प्रकट करता है। जैसे– बच्चा एक साईकिल को Draw करता है उसके बारे में सोचते हुए। अवस्था– 2 से 7 वर्ष तक

Symbolic Stage में बच्चा अपनी भावनाओं को भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है। यहाँ पर बच्चे अपने विचारों को Symbols से Connect कर पाते हैं।

ब्रूनर का मानना है कि अपने विचारों तथा अनुभवों को भाषा व प्रतीकों (Symbols) के माध्यम से प्रकट किया जा सकता है। इन्होंने संज्ञानात्मक विकास को एक क्रमिक प्रक्रिया माना है।

ब्रूनर ने शिक्षण–अधिगम Process में तीन बातों का समावेश किया है–

(1) ज्ञाता के रूप में बालक की प्रकृति

(2) दिये जाने वाले ज्ञान की प्रकृति

(3) ज्ञान–ग्रहण क्रिया की प्रकृति

ज्ञाता की प्रकृति का अर्थ है कि बालक क्या ग्रहण कर सकता है और क्या ग्रहण करना चाहता है।

बच्चे को जो ज्ञान दिया जाना है क्या वो उसे ग्रहण करने में सक्षम (Capable) है।

ज्ञान ग्रहण क्रिया की प्रकृति का अर्थ है बालक को ज्ञान किस प्रकार। विधि द्वारा दिया जाये।

इस प्रकार ब्रूनर के अनुसार Teaching Learning Process में निम्नलिखित 5 बातों का समावेश होना चाहिए –

(1) अधिकतम अधिगम अनुभव (Bruner's Cognitive Development Theory) :–

ब्रूनर के अनुसार बच्चों को अधिगम के अधिक से अधिक अवसर दिये जायें। ये जानने का प्रयास किये जाये कि बच्चों की रूचि, योग्यता, कौशल और लक्ष्य क्या है? इनके लिए तीन बातें आवश्यक हैं –

बालकों में खोज प्रवृत्ति (Discovering Nature) होना।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

अध्यापकों का शिक्षण के प्रति Active होना।

ज्ञान का आदान–प्रदान होना।

(2) अधिगम बोध विकास (Comprehension Learning) :–

ब्रूनर के अनुसार अध्यापक का अन्तिम लक्ष्य यह होना चाहिए कि विद्यार्थी उस विषय को आत्मसात (Assimilate) कर लें। इसके लिए आवश्यक है कि बच्चों की बोध शक्ति को पहचानना और उसके आधार पर ज्ञान को Recreate करना। ब्रूनर के विकास की जो तीन Stages, Enactive - Iconic - Symbolic बतायी है, उनसे यह निर्धारित करना चाहिए कि विद्यार्थी को किस स्तर पर कौन सा ज्ञान दिया जाये।

(3) विषय प्रस्तुति वास्तविक तथा उपयोगी रूप में (Prsentation of Topic in a Realistic and useful way) :–

अध्यापक को अपना विषय बिल्कुल सरल कर सहज व वास्तविक रूप में बच्चे को सिखाना चाहिए। इस रूप से कठिन से कठिन ज्ञान वो सरलता से सीख पायेंगे।

(4) अधिगम में पुनर्बलन (Reinforcement) :–

ब्रूनर ने अधिगम में बाह्य व आन्तरिक दोनों प्रकार के प्रेरकों के महत्व को माना है परन्तु वो आन्तरिक प्रेरक को ज्यादा महत्व देते हैं। जैसे– नवीन ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा होना, ज्ञान का आदान–प्रदान करना।

(5) विचारों को उत्तेजित करने की प्रणाली (Thought Provoking) :–

ब्रूनर के अनुसार शिक्षक को यह पता होना चाहिए कि बच्चों में विचारों के प्रवाह को कैसे बढ़ायें। बच्चों की सोच सीमित न होकर Creative होनी चाहिए।

जैसे– नयी–नयी सम्भावनाओं का पता लगाये, समस्या–समाधान पर खुद विचार करें।

ब्रूनर के अधिगम सिद्धांत का शिक्षा में प्रयोग (Application of Bruner's Theory of Learning in Education) :–

ब्रूनर का मानना है कि बच्चे की रूचि व क्षमता को यदि ध्यान में रखा जाये तो उसे किसी भी अवस्था में कोई भी विषय पढ़ाया जा सकता है।

शिक्षक को बच्चों को यह पहले ही बता देना चाहिए कि वे उनसे किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं।

एक ही आयु वर्ग के बच्चों की ग्रहण करने की क्षमता के अनुरूप ही उन्हें शिक्षा दी जाये।

ज्ञान के उस भाग को अधिक महत्व दिया जाये जो बच्चे की सांस्कृतिक मान्यताओं के अनुरूप हो।

बच्चे के संज्ञानात्मक विकास में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः भाषा विकास पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के according शिक्षण विधियों का use करना चाहिए।

यह सिद्धान्त समस्या समाधान विधि के प्रयोग पर बल देता है।

विषय वस्तु इस प्रकार रखी जाये जिससे बच्चे सरलता से सीख जाये।

शिक्षा के द्वारा ही बच्चों में व्यक्तिगत व सामाजिक गुणों का विकास किया जा सकता है।

यह सिद्धान्त पुनर्बलन पर बल देता है।

दोष (Flaws) :–

(1) यह सिद्धांत खोज विधि पर बल देता है परन्तु प्रत्येक विषय या content को इस विधि से नहीं सीखा जा सकता है।

(2) यह अधिगम सिद्धान्त बच्चों की अपेक्षा शिक्षक की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है।

(3) यह सिद्धांत अन्तदर्शी चिन्तन पर बल देता है। यह सामान्य बच्चों के लिए थोड़ा कठिन हो सकता है।

प्रिमेक सिद्धांत (Premack Principle) :–

इस सिद्धांत को 'डेविड प्रिमेक' ने दिया था। इसके अनुसार अधिक, अधिक पसंदीदा व्यवहार को कम पसंदीदा व्यवहार के लिए पुनर्बलन के रूप में use किया जाता है।

जैसे– बच्चे में पढ़ने की आदत विकसित करने के लिए माँ अपने बच्चे को बाहर खेलने की Permission देती है बशर्ते कि बच्चा 30 मिनट के लिए पढ़ाई करे।

प्रेक्षणात्मक अधिगम (Observational Learning) :–

'अल्बर्ट बंडूरा' व उनके साथियों ने कई अध्ययनों में प्रेक्षणात्मक अधिगम की खोजबीन की। यह अधिगम दूसरों का प्रेक्षण (Observation) करने से घटित होता है। इस अधिगम को पहले अनुकरण (Imitation) कहा जाता था। इस प्रकार के अधिगम में व्यक्ति सामाजिक व्यवहार को सीखता है इसलिए इसे 'सामाजिक अधिगम सिद्धांत' भी कहते हैं। कई बार हमारे सामने ऐसी Situation होती है कि हमें नहीं पता होता है कैसे React करना है, तब हम दूसरे लोगों के व्यवहार को Observe करते हैं और उनकी तरह व्यवहार करते हैं। इस प्रकार के अधिगम को मॉडलिंग (Modeling) भी कहा जाता है।

जैसे– एक छोटा बच्चा जो विद्यालय जाता है वहाँ पर वो बहुत चीजें दूसरों बच्चों को देखकर करता है–

अध्यापक के आने पर खड़ा होना।

दूसरे बच्चों को खाना खाते देख, खुद भी खाना।

बंडूरा का उपयोग (Experiment of Bandura) :–

बंडूरा ने बच्चों को पाँच मिनट के लिए एक फिल्म दिखाई। फिल्म में बड़े कमरे में बहुत सारे खिलौने रखे थे और उनमें एक बड़ा सा गुड्डा था। अब कमरे में एक बड़ा लड़का जाता है और चारो ओर देखता है। लड़का सभी खिलौनों के प्रति क्रोध जाहिर करता है। वह बड़े खिलौने के प्रति बहुत Hyper हो जाता है। वह गुड्डे को मारता है, फर्श पर फेंक देता है और ठोकर मारकर उसी पर बैठ जाता है। इसके बाद का घटनाक्रम तीन अलग रूपों में, तीन फिल्मों में तैयार किया गया।

एक फिल्म में बच्चों के एक समूह ने देखा कि आक्रमक व्यवहार करने वाले लड़के को पुरस्कार दिया गया और उसकी तारीफ की गई।

दूसरी फिल्म में बच्चों के दूसरे समूह ने देखा कि इस लड़के को दंडित किया गया।

तीसरी फिल्म में बच्चों के समूह ने देखा कि लड़के को न ही पुरस्कार दिया गया और न ही दंडित किया गया।

इस प्रकार तीनों समूहों तीन अलग–अलग फिल्में दिखाई गई। इसके बाद सभी बच्चों को एक कक्ष में खिलौनों के साथ स्वतंत्र छोड़ दिया गया। जब छिपकर उन बच्चों को देखा तो पाया कि जिन बच्चों ने आक्रमक व्यवहार पर लड़के को पुरस्कृत होते देखा, वो बच्चे खिलौनों के प्रति बहुत आक्रमक थे।

जिन्होंने उसे दंडित होते हुए देखा उनमें कम आक्रमकता दिखाई दी।

इससे यह सिद्ध होता है कि जैसा व्यवहार बच्चों देखा वैसा ही Follow किया।

बच्चे अधिकांश सामाजिक व्यवहार बड़ों को Observe करके सीखते हैं। परोपकार, आदर, परिश्रम ये सब गुण इसी विधि द्वारा अर्जित किये जाते हैं।

वाचिक अधिगम (Verbal Learning) :–

मनुष्य विभिन्न वस्तुओं, घटनाओं व इन सबके लक्षणों के बारे मुख्यतः शब्दों के माध्यम से ही ज्ञान अर्जित करते हैं। एक शब्द का दूसरे शब्द से साहचर्य (Associate) बन जाता है।

वाचिक अधिगम का अध्ययन 'ऐबिंगहॉस' के द्वारा किया गया। इन्होंने बताया कि वाचिक अधिगम वह सीखना है जिसमें भाषा या शब्दों का प्रयोग हो।

जैसे– दी गई संख्यायें, सूची या अक्षरों को निर्देशानुसार याद करना।

संप्रत्यय अधिगम (Concept Learning) :–

संप्रत्यय एक श्रेणी है जिसका उपयोग अनेक वस्तुओं व घटनाओं के लिए किया जाता है। जैसे– फल, पशु, भीड़ आदि।

जब 'भीड़' शब्द आता है तो सीधे हमारा ध्यान भीड़–भाड़ वाले स्थान पर जाता है। इसका अर्थ यह है कि हमारे Mind में एक Concept बन जाता है। किसी भी घटना से Related, वही सम्प्रत्यय है।

जब हम इन वस्तुओं व घटनाओं को वर्गीकृत करके अध्ययन करते हैं तो उसे सम्प्रत्यय अधिगम कहा जाता है।

मान लीजिए हमें शरीर की आंतरिक संरचना का अध्ययन करना है तो इसके अन्तर्गत जितनी भी क्रियायें हम समझेंगे वो हमारे शरीर से संबंधित Concept होंगी।

कौशल अधिगम (Skill Learning) :–

किसी भी जटिल कार्य को आसानी से दक्षता (Efficiency) से करना ही कौशल (Skill) है। इस प्रक्रिया को सीखना ही कौशल अधिगम कहलाता है।

जैसे– हवाई जहाज उड़ाना, Programming करना, आदि।

'फिट्स' के अनुसार कौशल अधिगम की प्रक्रिया तीन चरणों में होती है–

संज्ञात्मक (Cognitive)

साहचार्यात्मक (Associative)

स्वायत्त (Autonomous)

सृजनवाद का सिद्धांत (Constructivism) :–

यह सिद्धांत प्रगतिवाद का सिद्धांत है। यह विचारधारा बाल केन्द्रित और शिक्षण का समर्थन करती है। यह सिद्धांत व्यवहारिक ज्ञान देने के पक्ष में है।

इस सिद्धांत के अनुसार नवीन ज्ञान तथा पूर्व ज्ञान की अन्तः क्रिया से ज्ञान में मौलिकता का सृजन होता है।

प्रबलन/पुनर्बलन का सिद्धांत (Principle of Reinforcement) :–

इस अधिगम सिद्धांत का प्रतिपादन अमेरिकी मनोवैज्ञानिक C.L. Hull ने 1943 में किया था। 'Principle of Behaviour' इन्हीं की पुस्तक है।

इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयास करता है। सीखने का आधार इसी आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया में होता है। ''सीखना आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया द्वारा होता है।'' हल का मानना है कि व्यक्ति उसी कार्य को सीखता है जिससे उसकी किसी आवश्कयता की पूर्ति होती है।

इसे 'Drive Reduction Theory' (चालक न्यूनता का सिद्धान्त) भी कहा जाता है।

आवश्यकता (Need)– (चालक / Driver) = प्रोत्साहन (Incentine)

हल के अनुसार व्यक्ति की व्यवहार का कारण विभिन्न आवश्यकतायें होती हैं।

चालक व्यक्ति को आवश्यकता पूर्ति की क्रिया करने के लिए प्रेरित करता है।

जिस तत्व से आवश्यकता संतुष्ट होती है उसे प्रोत्साहन कहते हैं।

हल, अधिगम की प्रक्रिया में बालकों की आवश्यकताओं को महत्व देते हैं क्योंकि आवश्यकता पूर्ति की क्रिया में व्यक्ति नवीन ज्ञान, अनुभव तथा व्यवहार करना सीख जाता है।

डिजिटल दुनिया में अधिगम :–

आज का समय कम्प्यूटर और Internet का समय है। सभी लोग इंटरनेट से जुड़े हैं। अतः यह अधिगम व शिक्षा को भी प्रभावित करते हैं। डिजिटल अधिगम में बच्चें घर बैठे इंटरनेट के माध्यम से शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

डिजिटल अधिगम **समय** द्वारा प्रतिबंधित नहीं है। इसे कोई भी कभी भी सीख सकता है।

किसी भी स्थान पर सीख सकते हो।

इसमें आप केवल एक शिक्षक तक सीमित न होकर और भी शिक्षकों से Connect होकर पढ़ सकते हैं।

इसमें सीखने की गति को छात्र अपने अनुसार रख सकता है।

डिजिटल अधिगम के प्रभाव पर किये अध्ययन में मिश्रित परिणाम मिले हैं। कुछ इसके द्वारा धनात्मक रूप से प्रभावित हुए कुछ–कुछ ऋणात्मक।

अधिगम वक्र (Learning Curve) :–

बच्चा जो कुछ भी सीखता है उसके बाद उसका मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन के द्वारा बालक को उसकी प्रगति का निरन्तर ज्ञान कराना भी बहुत आवश्यक है। प्रगति के सम्बन्ध में जो जानकारी बच्चे को मिलती है उससे बच्चे को पता चलता है कि अपने लक्ष्यों को कहाँ तक हासिल कर पाया है और आगे किस प्रकार उसे पढ़ना है।

अधिगम की गति को प्रदर्शित करने वाला वक्र अधिगम वक्र कहलाता है। अधिगम वक्र समय की अवधि (Time Duration) और अधिगम की मात्रा (Quantity of Learning) के बीच सम्बन्ध को दर्शाता है। अधिगम वक्र का ग्राफ कागज पर बनाया जाता है जिससे बच्चे की त्रुटियों व उपलब्धियों का ज्ञान होता है।

अधिगम वक्र की कुछ परिभाषायें

'स्किनर' के अनुसार– ''अधिगम वक्र किसी दी गई क्रिया में व्यक्ति की उन्नति का वर्गीकरण, कागज पर प्रदर्शन है।''

'गेट्स व अन्य'– ''अभ्यास द्वारा अधिगम की मात्रा, गति और उन्नति की सीमा का प्रदर्शन अधिगम वक्र द्वारा होता है।''

'एलेक्जेण्डर' के अनुसार– ''आँकड़ों को ग्राफ पेपर पर अंकित करने से अधिगम वक्र की रचना होती है।''

अधिगम वक्र के प्रकार (Types of Learning Curve) :–

ये तीन प्रकार का होता है–

(1) सकारात्मक/नतोदार वक्र (Positive Curve) :–

सीखने की गति जब प्रारम्भ में कम व बाद में तीव्र होने लगती हैं।

(2) नकारात्मक/उन्नतोदर वक्र (Negative Curve) :–

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

जब अधिगम प्रारम्भ में तीव्र तथा बाद में मन्द गति से होता है।

(3) सीढ़ीदार/मिश्रित वक्र (Mixed Curve) :–

कभी सीखने की गति तीव्र, कभी मन्द फिर तीव्र ऐसे होती रहती है। इस अवस्था में सीढ़ीदार वक्र का प्रयोग किया जाता है।

अधिगम के पठार (Pleateaus of Learning) :–

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है बच्चे के व्यवहार में परिवर्तन लाना। बच्चा जब अधिगम करता है तो उसे उसकी प्रगति की रिपोर्ट मिलती रहनी चाहिए। प्रगति से परिचित कराने का एक तरीका अधिगम वक्र। इस वक्र में एक ऐसा स्थान भी प्रदर्शित होता है जिससे अधिगम की स्थिरता (Stability) का पता चलता है जिसे अधिगम का पठार कहते हैं।

साधारण शब्दों में, अधिगम की ऐसी अवस्था जहाँ पर अधिगम होना रूक जाये या बन्द हो जाये। इससे सीखने में किसी प्रगति न होने का संकेत मिलता है।

वक्र रेखा पर अधिगम का यह पठार कभी भी दिख सकता है।

'स्किनर' के अनुसार– ''पठार एक क्षैतिज प्रसार है जिससे प्रगति का प्रत्यक्ष बोध नहीं होता।''

'रॉस' के अनुसार– ''अधिगम प्रक्रिया की एक प्रमुख विशेषता पठार है जो उस अवस्था के Indicator होते हैं। जब सीखने की प्रक्रिया में कोई प्रगति नहीं होती।''

अधिगम पठारों के कारण (Causes of Plateaus of Learning) :–

शारीरिक सीमा (Physical Limits)

अभ्यास की कमी (Lack of Practice)

दोषपूर्ण विधि (Faulty Method)

जटिल कार्य का उत्पन्न होना (Occurrence of Something Tough)

प्रेरणा की कमी (Lack of Motivation)

रूचि का अभाव (Lack of Interest)

Implefect Environment

अधिगम का स्थानांतरण (Transfer of Learning) :–

जब भी किसी परिस्थिति से हम कुछ सीखते हैं तो उसका प्रयोग आने वाले समय में अवश्य करते हैं। जब एक Situation में सीखी गई बात का उपयोग हम किसी दूसरी Situation को सीखने में करते हैं तो उसे अधिगम का स्थानान्तरण कहते हैं। जैसे– जब एक बच्चे के सामने बहुत सारे बॉल हों और उन्हें गिनने के लिए बोला जाये तो वो उनको अपनी कक्षा में सीखे गये गिनती को Concept से जोड़ता है और Count करता है।

जब शिक्षा में एक विषय के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान का किसी दूसरे विषय में उपयोग हो तो उसे सीखने का स्थानान्तरण कहते हैं।

कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं–

'क्रो & क्रो' के अनुसार– ''जब सीखने के एक क्षेत्र में प्राप्त चिंतन, भावना, कार्य की आदत का ज्ञान का दूसरी परिस्थिति में प्रयोग किया जाता है, वह शिक्षण का स्थानान्तरण कहलाता है।''

'सोरेन्सन' के अनुसार– ''शिक्षण के स्थानान्तरण द्वारा व्यक्ति उस सीमा तक सीखता है, जब तक एक परिस्थति से प्राप्त योग्यताएँ दूसरी परिस्थिति में सहायता देती हैं।''

'कॉल्सनिक' के अनुसार– ''स्थानान्तरण, एक परिस्थिति द्वारा सीखे हुए ज्ञान, निपुणता, आदतों, अभिरूचियों व दूसरी अनुक्रियाओं का दूसरी परिस्थिति में ले जाकर उपयोग करना है।''

अधिगम स्थानान्तण के प्रकार (Types of Transfer of Learning) :–

(1) धनात्मक स्थानान्तण (Positive Transfer of Learning) :–

जब एक Situation में सीखी गई बात, दूसरी Situation में उपयोगी हो, उसे धनात्मक स्थानान्तरण कहते हैं।

जैसे– समाजशास्त्र के अध्ययन का उपयोग समाज को समझने में सहायक होता है।

(2) निषेधात्मक स्थानान्तरण (Negative Transfer of Learning) :–

जब एक परिस्थिति में सीखा गया ज्ञान, दूसरी परिस्थति में बाधक बने तो उसे निषेधात्मक स्थानान्तरण कहते हैं। जैसे– निरन्तर कार चलाने वाले व्यक्ति को, पैदल चलने में कठिनाई होगी।

(3) शून्य स्थानान्तरण (Zero Transfer of Learning) :–

जब एक परिस्थिति में सीखे ज्ञान का, दूसरी परिस्थिति पर कोई प्रभाव न पड़े तो उसे शून्य स्थानान्तरण कहते हैं।

जैसे– गणित का ज्ञान हिन्दी के ज्ञान लेने पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा।

(4) एकपक्षीय स्थानान्तरण (Unilateral Transfer of Learning) :–

जब व्यक्ति के किसी एक अंक को दिया गया प्रशिक्षण (Training) भविष्य में लाभदायक सिद्ध हो तो उसे एकपक्षीय स्थानान्तरण कहते हैं।

जैसे– दायें हाथ में चोट लगने की स्थिति में बायें हाथ को दिया गया प्रशिक्षण आगे चलकर भी उपयोगी सिद्ध होता है।

(5) द्विपक्षीय स्थानान्तरण (Bilateral Transfer of Learning) :–

जब व्यक्ति के अंग को दिया गया प्रशिक्षण दूसरे अंग को भी उपयोगी बना दे तो वह द्विपक्षीय स्थानान्तरण होता है। जैसे– दायें हाथ का काम बायें हाथ से व बायें हाथ का काम दायें हाथ से करना।

(6) लम्बात्मक स्थानान्तरण (Vertical Transfer of Learning) :–

जब एक कक्षा में प्राप्त ज्ञान का उपयोग अगली कक्षा में किया जाये तो उसे लम्बात्मक स्थानान्तरण कहते हैं।

जैसे– तीसरी कक्षा में सीखे गये ज्ञान का प्रयोग चौथी कक्षा में करना।

(7) क्षैतिज स्थानान्तरण (Horizontal Transfer of Learning) :–

जब एक विषय में प्राप्त ज्ञान, दूसरे विषय में उपयोगी सिद्ध होता है तो वह क्षैतिज स्थानान्तरण कहलाता है। जैसे– गणित का ज्ञान, भौतिक विज्ञान (Physics) को समझने में सहायक होता है।

अधिगम स्थानान्तण के सिद्धान्त (Theories of Transfer of Learning):–

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम स्थानान्तरण के विभिन्न सिद्धान्त दिये हैं, कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

(1) मानसिक शक्तियों का सिद्धान्त (Theory of Facilities) :–

यह सिद्धान्त कहता है कि मानव मस्तिष्क में तर्क, कल्पना, स्मृति, अवधान, निरीक्षण आदि शक्तियाँ होती हैं। इन मानसिक शक्तियों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस प्रक्रिया में अभ्यास के द्वारा मानसिक शक्ति दृढ़ होती है।

(2) समान तत्वों का सिद्धान्त (Theory of Identical Elements) :–

ये सिद्धान्त 'थार्नडाइक' ने दिया। इसके अनुसार एक विषय का सीखना दूसरे विषय में तभी सहायक होगा जब दोनों में ही कुछ समान तत्व हों। जैसे– यदि एक व्यक्ति मोटरसाईकिल चलाना, जानता है तो वह ट्रैक्टर चला सकता है क्योंकि दोनों में कुछ समानतायें हैं।

थार्नडाइक का मानना है कि जब कोई व्यक्ति कार्य करता है तो मस्तिष्क में अनेक स्नायु संयोग (Neural Bonds) बनते हैं। फिर भविष्य में उसी प्रकार के कार्यों की आवश्यकता होने पर वे स्नायु संयोग जाग्रत हो जाते हैं और व्यक्ति का पूर्व अनुभव नयी समस्या को हल करने में सहायक सिद्ध होता है।

(3) सामान्यीकरण का सिद्धान्त (Theory of Generalization) :–

यह सिद्धांत 'जुड' द्वारा दिया गया था। इस सिद्धांत के अनुसार जब हम किसी कार्य के सिद्धांतों को अच्छी तरह से समझ जाते हैं और सामान्य सिद्धांत बना लेते हैं तो हम एक कार्य में प्राप्त अनुभवों को दूसरे कार्यों में भी स्थानान्तरण कर लेते हैं।

(4) दो तत्व सिद्धांत (Two Factor Theory) :–

इस सिद्धांत के प्रतिपादक 'स्पीयरमैन' हैं। स्पीयरमैन ने बुद्धि को दो भागों में बाँटा–

(1) सामान्य बुद्धि (General Intelligence) 'G'

(2) विशिष्ट बुद्धि (Specific Intelligence) 'S'

सामान्य बुद्धि का प्रयोग जीवन के प्रत्येक कार्य में होता है लेकिन विशिष्ट बुद्धि का प्रयोग विशेष कार्य के लिए किया जाता है।

अधिगम स्थानान्तरण सम्बन्धी कुछ प्रयोग (Experiments in Transfer of Learning) :–

सबसे पहले 'जेम्स' ने स्थानान्तरण सम्बन्धी प्रयोग किया। उन्होंने अपने प्रयोग में देखा कि एक कविता याद करने से दूसरी कविता याद करने में कितनी सहायता मिलती है और कितना समय लगता है। उन्होंने एक पुस्तक 'सातीर' की 158 lines याद की, फिर 'पैराडाईज लॉस्ट' के प्रथम भाग को 34 दिन तक याद किया। फिर से उन्होंने 158 पंक्तियों का परीक्षण किया तो पाया कि इस बार याद करने में और अधिक समय लगा।

(लेखक) – (पुस्तक)

'विक्टर ह्यूगो' – 'सातीर'

'मिल्टन' – 'पैराडाईज लॉस्ट'

'वुडवर्थ' ने अपने प्रयोग से ये निष्कर्ष निकाला कि एक हाथ को दिया गया प्रशिक्षण दूसरे हाथ के लिये भी उपयोगी सिद्ध होता है। मिरर ड्राइंग के प्रयोग द्वारा एक हाथ को दिया गया प्रशिक्षण (Training) दूसरे हाथ पर स्थानान्तरित हो जाता है।

'विंच' ने एक कक्षा के बालकों को दो समूहों में बाँटा। एक समूह को उसने एक सप्ताह तक अंकगणित की समस्याओं को हल करना सिखाया व दूसरे समूह को विद्यालय की सामान्य गतिविधियों से सीखने दिया गया। बाद में यह देखा गया कि पहले group ने दूसरे group से 30% अधिक कार्य किया। इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि अंकगणित का प्रश्न दूसरी तार्किक (Logical) समस्याओं को solve करने में help करता है।

'वुडी' ने अपने प्रयोग में यह बताया है कि फ्रेन्च पढ़ने से अंग्रेजी पढ़ने में कुछ मदद मिलती है।

'जुड' के अनुसार– प्रशिक्षण के द्वारा नयी परिस्थिति का सामना करने की योग्यता मिलती है क्योंकि छात्र नयी व पुरानी स्थिति में सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।

'स्लाईट' के अनुसार–

अधिगम का स्थानान्तरण उसी दिशा में होगा जिसमें उन्हें अभ्यास कराया गया हो।

एक विषयक का दूसरे विषयक को सीखने में ही धनात्मक व ऋणात्मक दोनों ही प्रभाव होते हैं।

स्थानांतरण की परिस्थितियाँ (Condition of Transfer) :–

स्थानान्तरण की कुछ महत्वपूर्ण परिस्थितियाँ निम्न हैं –

सीखने वाले की समझ

सीखने वाले की इच्छाशक्ति

सीखने वाले की बुद्धि

शिक्षण विधियाँ

विषय सामग्री

सामान्यकरण (Generalization) की योग्यता

स्थानांतरण की शिक्षा व महत्व (Importance of Transfer of Learning in Education) :–

शिक्षा में शिक्षण के स्थानान्तरण के लिए अध्यापक को चाहिए कि बच्चों को शिक्षा इस प्रकार दी जाये कि एक विषय से प्राप्त ज्ञान का वो दूसरे विषय में भी प्रयोग कर पाये।

शिक्षक को ऐसे Points को अच्छे से समझाना चाहिए जिनका Use और स्थानों पर भी किया जाता है।

विषय सिखाने के साथ–साथ उसका अभ्यास भी करना चाहिए जिससे उस विषय से सम्बन्धित कोई भी समस्या बच्चों को न आये।

शिक्षण को विषय जितना हो सके सरलतापूर्ण ढंग से पढ़ाना चाहिए।

शिक्षक को बच्चों की योग्यता व क्षमता के अनुकूल ही शिक्षण करना चाहिए।

शिक्षक को समय–समय पर Motivate करते रहना चाहिए।

शिक्षक को खुद उस विषय में रूचि व ज्ञान होना बहुत आवश्यक है।

बच्चों को प्राप्त ज्ञान का उपयोग सामान्य जीवन में करने के लिए Motivate करें।

शिक्षक को Audio-Visual Aids का प्रयोग भी करना चाहिए।

अधिगम को सुगम बनाने वाले कारक (Factors That Facilitate Learning) :–

सतत व आंशिक प्रबलन (Continuous & Partial Inforcement)

अभिप्रेरणा (Motivation)

अवधान व रूचि (Attention and Interest)

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

स्मृति (Memory)

चिन्तन और भाषा (Thinking and Language)

संवेग (Emotions)

सतत व आंशिक प्रबलन (Continuous & Partial Inforcement) :–

सतत प्रबलन में प्रतिभागी को प्रत्येक लक्षित अनुक्रिया (Target Response) के बाद प्रबलन दिया जाता है। इस प्रबलन अनुसूचि का प्रयोग करने पर Response Rate बहुत अधिक होती है। परन्तु जब प्रबलन देना बन्द किया जाता है तो Response की दर (Rate) बहुत तेजी से घट भी जाती है।

ऐसी अनुसूचियों में जहाँ प्रबलन लगातार नहीं किया जाता है वहाँ पर कुछ अनुक्रियाओं को प्रबलित नहीं किया जाता है इसलिए इसे आंशिक प्रबलन कहा जाता है।

अभिप्रेरणा (Motivation) :–

अभिप्रेरणा व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रबलता से काम करने के लिए ऊर्जा प्रदान करती है। अधिगम के लिए व्यक्ति का Motivate होना बहुत जरूरी है।

जैसे– जब किसी बॉक्स में किसी भूखे चूहे को बंद कर दिया जाता है तो भोजन की आवश्यकता के कारण वह बॉक्स में चारो ओर घूम–घूमकर भोजन की तलाश करता है और फिर अचानक उससे दीवार में बना लीवर दब जाता है और बॉक्स में भोजन का एक टुकड़ा गिर जाता है। चूहा उसे खा लेता है और फिर वह इस Process को Repeat करता है और सीख जाता है कि लीवर दबाने से उसे भोजन मिलेगा।

अभिप्रेरणा को एक प्रणोदक बल (Driving Force) के रूप में कहा जा सकता है जो विभिन्न शारीरिक या मानसिक गतिविधियों को शुरू व संचालित (Drive) करता

है। अभिप्रेरणा शब्द लैटिन भाषा के शब्द 'मोवरे' से बना है जिसका अर्थ है 'आगे बढ़ना'।

अभिप्रेरणा की परिभाषाएँ (Definitions of Motivation) :–

'वुडवर्थ'– ''प्रेरक/प्रेरणा व्यक्ति की वह स्थिति है जो उसे निर्धारित व्यवहार करने हेतु तथा निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु उत्तेजित करती है।''

'बर्नार्ड'– ''जिस लक्ष्य के प्रति पहले कोई आकर्षण नहीं था, उस लक्ष्य के प्रति कार्य की उत्तेजना ही अभिप्रेरणा है।''

'गुड'– ''क्रिया को उत्तेजित करने, नियंत्रित करने तथा नियंत्रित रखने की प्रक्रिया को अभिप्रेरणा कहते हैं।''

'गिलफोर्ड'– ''प्रेरक कोई विशिष्ट आन्तरिक कारक या दशा है जिसमें क्रिया को प्रारम्भ करने तथा बनाये रखने की प्रवृत्ति होती है।''

'गेट्स व अन्य'– ''प्रेरक प्राणी के अन्दर को वे शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दशायें हैं, जो उसे विशिष्ट प्रकार की क्रिया करने हेतु अभिप्रेरित करती है।''

अभिप्रेरणा की विशेषताएँ (Characteristics of Motivation) :–

किसी भी कार्य को पूरा करने के लिए अभिप्रेरणा एक साधन है।

व्यक्ति के व्यवहार को अभिप्रेरणा उत्तेजित करती है।

अभिप्रेरणा सक्रियता (Activeness) का प्रतीक है।

अभिप्रेरणा किसी क्रिया को उत्तेजित करने, जारी रखने व नियंत्रित रखने की प्रक्रिया है।

अभिप्रेरणा के प्रकार (Types of Motivation) :–

अभिप्रेरणा दो प्रकार की होती है–

(1) आन्तरिक अभिप्रेरणा (Internal Motivation)

(2) बाह्य अभिप्रेरणा (External Motivation)

(1) आन्तरिक अभिप्रेरणा (Internal Motivation) :–

जब हमारी आन्तरिक शक्तियाँ हमें कोई कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं तो उसे आन्तरिक अभिप्रेरणा कहते हैं। इसमें बच्चे की आन्तरिक शक्ति अत्यन्त प्रबल होती है। इसमें बच्चा अपनी इच्छानुसार कार्य को लगन से करता है तथा इसके परिणाम भी अत्यधिक प्रभावी होते हैं।

(2) बाह्य अभिप्रेरणा (External Motivation) :–

जिस लक्ष्य को बालक प्राप्त करना चाहता है वही बाह्य अभिप्रेरणा का उत्तेजक होता है। इसमें बच्चे की इच्छा का महत्व नहीं होता। बाह्य अभिप्रेरणा के प्रमुख कारक हैं– निन्दा, प्रशंसा आदि।

अभिप्रेरणा की आवश्यकता व महत्व (Need & Importance of Motivation) :–

बच्चों के मानसिक विकास के लिए अभिप्रेरणा बहुत ही आवश्यक है। अभिप्रेरणा के द्वारा बच्चों में रूचि पैदा की जाती है जिससे उद्देश्य की प्राप्ति की जा सके।

बच्चों में स्वस्थ मनोवृत्ति उत्पन्न करने के लिए अभिप्रेरणा आवश्यक है। उचित प्रेरकों का प्रयोग करने से बच्चों में विभिन्न गुणों जैसे– सहयोग, सद्भाव, निष्ठा आदि का विकास होता है।

उचित मार्गदर्शन देने के लिए समय–समय पर Motivation बहुत आवश्यक है। विषय के चयन में, समायोजन में, अनुशासन बनाने के लिए यह बहुत आवश्यक है।

अभिप्रेरणा बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करती है। सीखने की गति, मात्रा आदि पर प्रेरणा प्रभाव डालती है।

विद्यार्थियों द्वारा विभिन्न Activities में भाग लेने के लिए भी उन्हें प्रेरित करना आवश्यक है जिससे बच्चों के व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाये जा सकें।

यह नितान्त आवश्यक है कि बालकों को समुचित वातावरण में रखकर उन्हें सामाजिक व्यवहारों हेतु अभ्यास कराया जाये, जिसके लिए अध्यापक विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरकों का प्रयोग कर सकता है।

बच्चों में किसी विषय के प्रति अवधान (Attention) व रूचि (Interest) विकसित करने के लिए Motivation बहुत ही आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक विभिन्न प्रेरकों के माध्यम से छात्रों के अवधान को पाठ्यवस्तु में केन्द्रित करके, उन्हें अधिगम की दिशा में प्रेरित करें।

शिक्षक, उचित प्रेरकों के द्वारा बच्चों स्वानुशासन (Self-discipline) का विकास करें।

अभिप्रेरणा के सिद्धांत (Principles of Motivation) :–

ऐसे अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जिनके द्वारा अभिप्रेरणा की युक्तियों को प्रभावी बनाकर छात्रों की अधिगम तत्परता में वृद्धि की जा सकती है। अभिप्रेरणा के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की बात करते हैं –

(1) कर्ट लेविन का सिद्धान्त :–

इन्होंने अपने सिद्धान्त में व्यक्ति के क्षेत्र, जीवन–विस्तार, बाधायें आदि के आधार पर अधिगम को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार, अधिगम में प्रेरणा का प्रयोग बहुत आवश्यक है क्योंकि प्रेरणा के द्वारा विद्यार्थी निश्चित लक्ष्यों के प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ता है।

(2) मूल प्रवृत्तियों का सिद्धान्त (Principle of Original Instinct) :–

इसके प्रतिपादक 'विलियम मैक्डूगल' हैं। उनका मानना है कि व्यक्ति का व्यवहार उसकी मूल प्रवृत्तियों से संचालित होता है। यदि हम मूलप्रवृत्तियों तथा इनसे सम्बन्धित संवेगों को पृथक कर दें तो मनुष्य किसी भी प्रकार का कार्य नहीं कर सकेगा।

(3) मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Psychoanalytic Principle) :–

इसके प्रतिपादक 'फ्रायड' हैं। उनका कहना है कि मनुष्य के द्वारा जितने भी कार्य किये जाते हैं, उनकी पृष्ठभूमि में उसकी सुखवादी प्रवृत्ति व इच्छायें निहित होती है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति के अचेतन में निहित ये इच्छायें ही मानव को किसी निश्चित व्यवहार की दिशा में प्रेरित करती है।

(4) उद्दीपन–अनुक्रिया सिद्धान्त (Stimulus-Response) :–

इसके प्रतिपादन में 'स्किनर' का नाम भी शामिल है। उनके अनुसार व्यक्ति का समस्त व्यवहार किसी न किसी उद्दीपक का ही परिणाम होता है। उद्दीपक की वजह से ही व्यक्तिगत अनुक्रिया करता है।

(5) इच्छाशक्ति पर आधारित सिद्धान्त –

इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति का समस्त व्यवहार उसकी इच्छा या संकल्प शक्ति का ही परिणाम होता है।

अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Motivation) :–

अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले कारकों का निर्धारण मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है वे निम्न हैं :–

प्रोत्साह (Encouragement) :–

प्रशंसा (Praise) और निन्दा (Condemnation)

जागरूकता (Arousal)

आकांक्षा (Expectancy)

दण्ड (Punishment)

आवश्यकताएँ (Needs)

संवेगात्मक स्थिति (Emotional Status)

प्रगति का ज्ञान (Knowledge of Progress)

प्रतियोगिता (Competition)

अभिप्रेरणा की प्रविधियाँ (Techniques of Motivation) :–

अभिप्रेरणा के प्रयोग से एक ऐसी आन्तरिक शक्ति (Internal Power) उत्पन्न होती है कि बच्चे स्वतः सीखने के लिए प्रेरित होने लगते हैं व रूचि, ध्यान और उत्साहपूर्वक विषय को पढ़ते हैं। बच्चों को प्रेरित करने के लिए कुछ Techniques का उपयोग किया जा सकता है–

(1) अवधान एवं रूचि (Attention And Internal) :–

बच्चों को Motivate करने के लिए यह आवश्यक है कि सीखने की दिशा में उनके ध्यान को केन्द्रित किया जाये और उनमें रूचि पैदा की जाये।

(2) कक्षा का वातावरण (Classroom Environment) :–

कक्षा के वातावरण को रूचिकर बनाना बहुत महत्वपूर्ण है। ऐसा वातावरण शिक्षा सामग्री को प्रयुक्त कर तथा नयी शिक्षा पद्धतियों को अपनाकर बनाया जा सकता है।

(3) नवीनता (Novelity) :–

बच्चों को सतत् रूप से तत्पर तथा उत्साहित बनाये रखने हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षक, विभिन्न पद्धतियों तथा विषयवस्तु के Presentation को नये तरीके से पढ़ाये।

(4) अधिगम की इच्छा तथा आकांक्षा (Desire to learn and Level of Aspiration) :–

अधिगम हेतु सीखने की इच्छा व आकांक्ष्द्धा के स्तर का अत्यन्त महत्व होता है। अतः शिक्षक को चाहिए कि बच्चों में सीखने की इच्छा को अभिप्रेरणा के माध्यम से जाग्रत करें।

(5) पुरस्कार व प्रशंसा (Reward and Praise) :–

प्रगति की दिशा में बढ़ते हुए बच्चों को यदि पुरस्कार व प्रशंसा प्रदान की जाये तो इससे उन्हें प्रोत्साहन मिलता है और उनका मनोबल बढ़ता है।

(6) दण्ड एवं निंदा (Punishment and Blame) :–

दण्ड के द्वारा छात्रों को भय दिया जाता है तथा अनुकूल व्यवहार करने हेतु अभिप्रेरित किया जाता है। पीड़ा से बचने हेतु छात्र शीघ्र ही अपने व्यवहार को परिवर्तित करने का प्रयास करने लगते हैं।

(7) प्रतियोगिता एवं सहयोग (Competition and Cooperation) :–

बच्चों को अभिप्रेरित करने के लिए यह आवश्यक है कि उनमें स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना विकसित की जाये। इससे बच्चों में संघर्ष व उत्साह की भावना का विकास होता है।

(8) सफलता (Success) :–

शिक्षक को प्रयास करना चाहिए कि बच्चे अपने कार्य में सफल हों। जब बच्चे सफल होते हैं तो उनमें उत्साह बढ़ता है तथा उनमें अधिगम के प्रति रूचि बढ़ती है।

(9) प्रगति से अवगत कराना (Knowledge of Progress) :–

यह आवश्यक है कि शिक्षक अधिगम वक्रों व परीक्षा परिणामों के माध्यम से बालकों को उनकी प्रगति से अवगत करायें।

(10) आवश्यकताओं का ज्ञान (Knowledge of Needs) :–

अध्यापक को, किसी कार्य को शुरु करने से पहले, छात्रों को यह बता देना चाहिए वह कार्य उनकी किन–किन आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगा।

अभिप्रेरणा एवं शिक्षा (Motivation and Education) :–

अभिप्रेरणा व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक काम में आवश्यक होती है। इसी प्रकार अधिगम में भी अभिप्रेरणा का बहुत अधिक महत्व है। इससे निम्न कार्यों में सहायता मिलती है–

सीखने की इच्छा

आवश्यकताओं का ध्यान

प्रशंसा व निंदा

मूल्यों व मान्यताओं का विकास

बच्चों में रूचि व अभियोग्यता का विकास

उत्तम शिक्षण विधियों का प्रयोग

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

अवधान और रूचि (Attention And Interest)

अवधान (Attention) :–

हम अपने वातावरण में अनेक वस्तुओं को देखते हैं लेकिन सभी वस्तुओं की ओर हमारा ध्यान समान रूप से नहीं जाता है। हम केवल कुछ ही वस्तुओं की ओर ध्यान देते हैं यही नहीं ध्यान, अवधान (Attention) कहलाता है। अवधान की प्रक्रिया में तीन मुख्य तत्व होते हैं–

प्रेरणा (Motivation)

तत्परता (Readiness)

चुनाव (Selection)

अवधान वह प्रेरणात्मक तथा चयनात्मक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम किसी वस्तु या क्रिया को चुनकर अपनी चेतना में केंद्रित करते हैं।

परिभाषाएँ :–

'मैग्डूगल'– ''ज्ञान क्रिया पर प्रभाव डालने वाली चेष्टा या इच्छा को अवधान कहते हैं।''

'स्टाउट'– ''अवधान मात्र उस सीमा तक अच्छा है, जहाँ तक वह अपनी सन्तुष्टि के लिए अपनी वस्तुओं का पूर्ण ज्ञान चाहता है।''

'मन'– ''हम चाहे जिस दृष्टि से विचार करें, अन्तिम विश्लेषण में यह एक प्रेरणात्मक प्रक्रिया है।''

'रॉस'– ''अवधान विचार की वस्तु को मन के सामने बतलाने की प्रक्रिया है।''

'डाम्बिल'– ''यह अन्य वस्तुओं की अपेक्षा एक वस्तु पर चेतना का केन्द्रीयकरण है।''

'B.N. Jha'– ''अवधान किसी प्रभाव या विचार की चेतना में केन्द्रित करने की प्रक्रिया है।''

अवधान की विशेषताएँ (Characterstics of Attention) :–

अवधान की मुख्य विशेषतायें निम्न हैं–

(1) प्रयोजनता (Purpose) :–

जब तक व्यक्ति के सामने कोई प्रयोजन नहीं होगा तब तक वह उस वस्तु, विचार, स्थान या क्रिया पर अपना अवधान केन्द्रित नहीं कर पायेगा।

(2) उद्योगशीलता :–

जब व्यक्ति अपना ध्यान किसी व्यक्ति, वस्तु या क्रिया पर लगाता है तो उसे शारीरिक व मानसिक दोनों ही दृष्टि से मेहनत करनी पड़ती है।

(3) चयनात्मकता (Selection) :–

अवधान एक मानसिक चयनात्मक क्रिया है। अवधान अनेक वस्तुओं में से एक ही वस्तु का चयन करके उस पर केन्द्रित होता है। विचारों का चयन मस्तिष्क पर निर्भर करता है।

(4) गति समायोजन (Speed Adjustment) :–

अवधान केन्द्रित होते समय ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ व माँसपेशियाँ आदि पूर्ण समायोजित होकर, एक ही केन्द्र की ओर उन्मुख होती हैं। जैसे– किसी भाषण देने वाले को देखना व सुनना।

(5) अस्थिरता (Instability) :–

अवधान को बहुत कठिनता से केन्द्रित किया जाता है। स्वभाव की चंचलता, रूचि की कमी व विषय की नीरसता से व्यक्ति अस्थिर होकर अवधान केन्द्रित नहीं कर पाते हैं।

(6) संकुचित विस्तार (Compressed Inpansion) :–

ध्यान की प्रक्रिया में हम विभिन्न वस्तुओं में से किसी एक वस्तु को चुनकर उसके किसी एक विशेष पक्ष को चुनते हैं। इस प्रकार ध्यान में चेतना का संकुचन होता है।

(7) सजीवता और स्पष्टता (Liveliness And Clarity) :–

हम जिन वस्तुओं पर ध्यान देते हैं वे हमेशा हमारी चेतना में सजीव व स्पष्ट हो जाती हैं। यह स्पष्टता ही अवधान की स्थिति होती है।

अवधान के प्रकार (Types of Attention) :–

अवधान के कुछ मुख्य प्रकारों की बात करते हैं–

(1) ऐच्छिक अवधान (Natural Attention) :–

कुछ ऐसी घटनायें या वस्तुयें होती हैं जिन्हें ग्रहण करने के लिए हम हमेशा तत्पर रहते हैं और इनकी ओर हमारा ध्यान स्वतः ही केन्द्रित हो जाता है, वही स्वाभाविक अवधान है। जैसे– बच्चे खेल के प्रति स्वतः ही आकर्षित होते हैं।

बच्चों का अवधान केन्द्रित करने के उपाय :–

बालकों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं–

कक्षा व विद्यालय का वातावरण शान्त होना चाहिए।

बच्चों को ज्यादा लम्बे समय तक लगातार एक विषय को न पढ़ायें, इससे वो थक जाते हैं और उनका ध्यान नहीं लग पाता है।

विषय सामग्री उद्देश्यपूर्ण, सरल व रूचिकर होनी चाहिए जिससे बच्चे उसमें ध्यान लगा सकें।

बच्चों को क्रियाशील रखने का प्रयास करें जिससे वो भी सक्रिय होकर पढ़ाई में भाग लें।

बच्चों में जिज्ञासा उत्पन्न करनी चाहिए जिससे उनमें शिक्षण के प्रति रूचि उत्पन्न हो।

शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए दृश्य–श्रव्य सामग्री (Audio-Video Aids) का प्रयोग करना चाहिए जिससे वो अधिगम में रूचि लें।

अवधान की दशाएँ (Condition of Attention) :–

अवधान केन्द्रित करने की कुछ दशायें होती हैं–

(1) बाह्य (External)

(2) आन्तरिक (Internal)

बाह्य या वस्तुगत दशाएँ (External or Subjective Condition) :–

ये दशायें वातावरण से सम्बन्ध रखती हैं। प्रेरणा की सशक्त बनाने वाले कारक ही अवधान के लिये सहायक बाह्य दशायें हैं।

ये दशायें कौन–कौन सी होती हैं आइये जानते हैं–

उत्तेजना की प्रकृति (Nature of Excitement) :–

उत्तेजना की प्रकृति से तात्पर्य दृष्टि, श्रव्य, स्पर्श या स्वाद आदि की उत्तेजना से है। अन्य उत्तेजनाओं की अपेक्षा दृश्य व श्रव्य क्रियायें हमारा अधिक ध्यान आकर्षित करती हैं।

उत्तेजना की तीव्रता (Intensity of Excitement) :–

उत्तेजना जितनी प्रबल होगी, वो उतनी ही शीघ्रता से हमारा ध्यान आकर्षित करेगी जैसे– चमकीली वस्तु, तेज प्रकाश आदि।

उत्तेजना का आकार (Size of Excitement) :–

सामान्यतः छोटे आकार के उत्तेजकों की अपेक्षा बड़े आकार के उत्तेजक हमारा ध्यान अधिक आकर्षित करते हैं। दीवार पर चिपके बड़े चित्र, बैनर हमारा ध्यान अधिक आकर्षित करते हैं।

उत्तेजना की स्थिति (Situation of Excitement) :–

जो वस्तुयें आँखों के सामने होती हैं, वे हमारे अवधान को शीघ्र आकर्षित करती हैं।

उत्तेजना का परिवर्तन (Change of Excitement) :–

एक क्रम में होने वाले परिवर्तन से, अचानक हुआ परिवर्तन अधिक ध्यान आकर्षित करता है। जैसे–जब टक–टक करती घड़ी अचानक बन्द हो जाये तो एकदम उसी पर ध्यान जाता है।

उत्तेजना की नवीनता (Novelty of Excitement) :–

कोई भी नवीन वस्तु, व्यक्ति हमारे सामने आता है तो हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित हो जाता है। नये कपड़े, नये शब्द, नये विचार आदि।

उत्तेजना की गति (Speed of Excitement) :–

जिन उत्तेजनाओं में गति होती है, उनकी ओर हमारा ध्यान एकदम आकर्षित होता है जैसे– दौड़ता हुआ घोड़ा, चलती रेलगाड़ी आदि।

पुनरावृत्ति (Repetition) :–

जब कोई क्रिया बार–बार दोहरायी जाती है तो उस ओर हमारा ध्यान आसानी से चला जाता है।

आन्तरिक दशाएँ (Internal Conditions) :–

रूचि (Interest)

अभिवृत्ति (Attitude)

आदत (Habit)

लक्ष्य (Target)

जिज्ञासा (Curiosity)

अर्थ (Meaning)

रूचि (Interest) :–

किसी वस्तु या विषय से अपने को सम्बन्धित करना, उसमें रूचि रखना कहलाता है। रूचि का स्वरूप ज्ञानात्मक न होकर भावात्मक है। रूचि अवधान की आन्तरिक दशा है। रूचि अवधान को जगाती है और स्थिर रखती है। जहाँ व्यक्ति को रूचि होती है वहाँ उसका ध्यान लगता है।

परिभाषायें :–

'मैग्डूगल'– ''रूचि अव्यक्त ध्यान है और ध्यान क्रियाशील रूचि है।''

'ट्रेवर'– ''अपने गतिशील रूप में संस्कार ही रूचि है।''

'विद्यम'– ''रूचि वह प्रवृत्ति है जिसे हम किसी अनुभव से उत्तेजित होकर बनाये रखना चाहते हैं।''

'क्रो & क्रो'– ''रूचि वह प्रेरक शक्ति है जो हमें किसी वस्तु, व्यक्ति या क्रिया के प्रति अवधान आकर्षित करने के लिए प्रेरित करती है।''

'मैग्डूगल'– ''रूचि एक प्रकार का गुप्त अवधान है।''

रूचि के प्रकार (Types of Interest) :–

रूचि दो प्रकार की होती है :–

(1) जन्मजात रूचि (Inborn Interest) :–

ऐसी रूचि जो व्यक्ति में जन्म से ही होती है उसे जन्मजात रूचि कहते हैं। ये हमारी मूल प्रवृत्तियों (Instinct) में ही होती है।

जैसे– बच्चों को जन्म से ही खेल के प्रति रूचि होती है।

कुछ लोगों को जन्म से ही विशेष क्षेत्र में रूचि होती है जैसे– संगीत, कला आदि।

(2) अर्जित रूचि (Acquired Interest) :–

हमारे दैनिक जीवन में कुछ वस्तुयें/घटनायें ऐसी होती हैं जो हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं और हमें अच्छी लगने लगती हैं। ऐसे ही वो हमारी रूचि बन जाती हैं। उसे ही अर्जित रूचि कहते हैं।

जैसे– कुछ बच्चे जब बड़े होते हैं तब उन्हें पढ़ाई में Interest आने लगता है और धीरे–धीरे ये उनकी Choice बन जाती है, जिसे उन्होंने अर्जित किया है।

रूचि उत्पन्न करने की विधियाँ व अधिगम में रूचि का महत्व (Methods of Arousing Interest and Importance of Interest in Learning) :–

कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिनमें खेलने–कूदने को तो बहुत रूचि होती है परन्तु वे पढ़ाई में बहुत कम रूचि लेते हैं। इसलिए वे पढ़ाई में बहुत कम रूचि लेते हैं। इसलिए कुछ ऐसी विधियाँ/तरीके अपना सकते हैं जिनसे बच्चों को अधिगम की ओर आकर्षित किया जाये और बच्चों को अधिगम का महत्व बताया जाये।

आइये बात करते हैं उन महत्वपूर्ण विधियों के बारे में–

शिक्षक को, बच्चों को उनके जीन में अधिगम का महत्व बताना चाहिए।

छात्रों को अधिगम के लक्ष्य बताते हुये ही इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाना चाहिए।

कक्षा का वातावरण शांत व सुगम (Comfortable) होना चाहिए जिससे बच्चों को ध्यान केन्द्रित करने में कोई समस्या न हो।

शिक्षक का छात्रों के प्रति व्यवहार भी बच्चों के अधिगम को प्रभावित करता है इसलिए शिक्षक का व्यवहार सरल व सहयोगपूर्ण होना चाहिए।

रूचि उत्पन्न करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि बच्चों को योग्यता, क्षमता व बुद्धि के स्तर के अनुरूप ही शिक्षण प्रदान किया जाये।

सरल व रोचक शिक्षण विधियों का प्रयोग करने का प्रयास करना चाहिए।

कक्षा में समय–समय पर विभिन्न गतिविधियों को भी कराते रहना चाहिए जिससे बच्चों में Activeness बनी रहे और रूचि भी बनी रहे।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

दृश्य–श्रव्य सामग्री (Audio-Visual Aids) का उपयोग बहुत ही महत्वपूर्ण व प्रभावशाली होता है।

रूचि का अधिगम में बहुत महत्व है और इसके द्वारा आप किसी विषय को सरलतापूर्वक सीख सकते हैं।

शिक्षकों को रूचिपूर्वक व रचनात्मक रूप से बच्चों को सिखाना चाहिए।

रूचि परीक्षण (Measurement of Interest) :–

किसी विषय को लेकर, किसी व्यक्ति में कितनी रूचि है इसका परीक्षण किया जा सकता है। सबसे पहले 'कार्नेगी' के औद्योगिक संस्थान ने 1914 में एक रूचि परीक्षण की खोज की।

कुछ महत्वपूर्ण रूचि परीक्षण इस प्रकार हैं –

1918 में 'माइनर' ने माध्यमिक कक्षाओं के लिए एक रूचि सूची (List) बनाई।

1927 में 'पेटर्सन' ने मिनिसोटा व्यवसायिक सूची बनाई।

1927 में 'स्ट्रांग' ने रूचि सूची बनाई।

1938 में 'कूडर' ने प्राथमिकता प्रपत्र बनाया।

1953 में 'थर्स्टन' ने खण्ड विश्लेषण विधि पर रूचि सूची बनाई।

भारत में पहली बार 1956 में व्यवसायिक रूचि प्रपत्र बनाया गया। ('कूडर' रूचिपत्र पर आधारित)

1958 में 'स्ट्रांग' के व्यवसायिक रूचि प्रपत्र का भारतीय परिस्थितियों में अनुकूलन करने का पहला प्रयास 'वेशगोपाल सिगरन' ने किया।

'S.P. कुलश्रेष्ठ' का शैक्षिक रूचि प्रपत्र

'S. चटर्जी' का अशाब्दिक प्राथमिकता रिकॉर्ड

'हेपनर' की व्यवसायिक रूचि लब्धि

'क्लीटन' की व्यवसायिक रूचि अनुसूची

'ब्रेनार्ड' की विशिष्ट अभिरूचि–अनुसूची

'स्टीवार्ड' की विशिष्ट अभिरूचि–अनुसूची

स्मृति (Memory) :–

मानसिक चेतना से युक्त वह शक्ति जिसमें आपके विचार व अनुभव Stored होते हैं, स्मृति कहलाती है। साधारण भाषा में कहें तो सभी सवालों का जवाब देने के लिए आप जिस मानसिक प्रक्रिया का उपयोग करते हैं वही स्मृति है।

यह एक संज्ञानात्मक कार्य करने के लिए आवश्यक समय पर, जानकारी को बनाए रखने और इसे फिर से समय आने पर Use करने की क्षमता है। स्मृति की तीन अवस्थाएँ होती हैं–

(1) कूट संकेतन (Encoding) :–

यह स्मृति की पहली अवस्था है जिसका अर्थ उस प्रक्रिया (Process) से है जिसके द्वारा सूचना स्मृति तंत्र (Memory System) में पहली बार स्थापित (Registered) होती है ताकि उसको फिर से उपयोग किया जा सके। कूट संकेतन में आने वाली सूचना को ग्रहण किया जाता है तथा उससे कोई अर्थ निकाला जाता है। उसे इस प्रकार से Present किया जाता है कि उसका Reprocess हो सके।

(2) भंडारण (Storage) :–

यह स्मृति की दूसरी अवस्था है। वह सूचना जिसको Encode किया गया है उसका Store होना भी जरूरी है जिससे बाद में आवश्यकता पड़ने पर उसका Use किया जा सके।

(2) पुनः प्राप्ति (Retrieval) :–

यह स्मृति की तीसरी अवस्था है। सूचना का उपयोग तभी किया जा सकता है जब कोई व्यक्ति अपनी Memory से उसे वापिस प्राप्त कर सके। विभिन्न कार्यों जैसे– समस्या–समाधान, निर्णयन (Decision Making) करने के लिए जब Stored सूचना को फिर से संज्ञान में लाया जाता है तो उसे पुनः प्राप्ति कहते हैं।

इनमें से किसी भी अवस्था में यदि कमी रह जाये अर्थात् Processing ठीक से ना हो तो स्मृति विफलता (Memory Failure) हो सकती है। आप किसी भी सूचना को पुनः प्राप्त तभी कर पायेंगे जब आपने ठीक तरह से कूट संकेतन करके उसे Store किया हो।

स्मृति की परिभाषाएँ (Interest) :–

'रॉस'– ''स्मृति एक नवीन अनुभव है जो पूर्व अनुभव की स्थितियों में निर्धारित होता है और दोनों के बीच का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है।''

'बुडवर्थ'– ''पहले सीखे हुए को स्मरण करना ही स्मृति है।''

'स्टाउट'– ''स्मृति एक आदर्श पुरावृत्ति (Repition) है, जिसमें अतीत काल के अनुभव उसी क्रम और ढंग से जाग्रत होते हैं, जैसे वे पहले हुए थे।''

'मैकडूगल'– ''स्मृति का तात्पर्य भूतकालीन घटनाओं के अनुभव को कल्पना में लाना और यह पहचान कर लेना है कि वे अपने ही भूतकालीन अनुभव हैं।''

अर्थात् Past के अनुभव को सोचना व पहचानना।

स्मृति के प्रकार (Types of Memory) :–

मस्तिष्क के विभिन्न भाग विभिन्न प्रकार की यादों के लिए जिम्मेदार होते हैं। अवस्था मॉडल के अनुसार ये तीन प्रकार की होती हैं–

(1) संवेदी स्मृति (Sensory Memory)

(2) अल्पकालिक स्मृति (Short Term Memory)

(3) दीर्घकालिक स्मृति (Long Term Memory)

सामान्यतः ये 6 प्रकार की होती हैं–

(1) तात्कालिक स्मृति

(2) स्थायी स्मृति

(3) रहन्त स्मृति

(4) सक्रिय स्मृति

(5) निष्क्रिय स्मृति

(6) यांत्रिक स्मृति

(1) तात्कालिक स्मृति (Short Term Memory) :–

इस स्मृति में याद की गई घटना/वस्तु तुरन्त भुला दी जाती है अर्थात् बहुत कम समय तक ये रहती है, 30 Sec से कम। यदि इसका निरंतर अभ्यास न किया जाये तो 30 Sec से कम समय में ही अल्पकालिक स्मृति से बाहर चली जाती है। ये स्मृति कमजोर होती है परन्तु संवेदी स्मृति से कमजोर नहीं।

(2) स्थायी/दीर्घकालिक स्मृति (Long-term Memory) :–

ऐसी वस्तु/विषय/घटना, जो अल्पकालिक स्मृति की क्षमता व अवधि की सीमाओं को पार कर जाती है वह दीर्घकालिक स्मृति में प्रवेश कर जाती है जिसकी

क्षमता व्यापक (Comprehensive) है। यहाँ पर नयी से नयी व पुरानी से पुरानी सभी सूचनाएँ एकत्र होती हैं।

यहाँ पर कोई भी घटना/बात को हम लम्बे समय तक याद रखते हैं।

(3) संवेदी स्मृति (Sensory Memory) :–

कोई भी नयी सूचना सबसे पहले संवेदी स्मृति में आती है। इसकी अवधि/सेकेण्ड से भी कम होती है। यह स्मृति प्राप्त सूचना का अल्पकालिक भंडारण करती है। कोई एक क्रिया एक संवेदी प्रतिक्रिया का कारण बनती है जो संक्षेप (Short) में Store होती है।

पाँच प्रकार की संवेदी स्मृति होती हैं–

(1) दृश्य संवेदी स्मृति (Visual Sensory Memory)

(2) श्रवण संवेदी स्मृति (Audio Sensory Memory)

(3) प्राण (गंध) संवेदी स्मृति (Olfactory Sensory Memory)

(4) स्वाद संवेदी स्मृति (Taste Sensory Memory)

(5) स्पर्श संवेदी स्मृति (Tactile Sensory Memory)

(4) रटन्त स्मृति (Rote Memory) :–

जब हम रटकर किसी विषय/वस्तु/क्रिया को याद रखते हैं तो उसे रटन्त स्मृति कहते हैं। यह स्मृति आपको बच्चों में अक्सर देखने को मिल जाती है।

(5) सक्रिय स्मृति (Active Memory) :–

हमारे पूर्व अनुभवों के आधार पर जो भी सूचना हमारी चेतना में Store होती है उसका Use हमारी सक्रिय स्मृति करती है। जब हम किसी भी कार्य को कर या सीख रहे होते हैं तो यह स्मृति सक्रिय रहती है।

(6) निष्क्रिय स्मृति (Inactive Memory) :–

जब पूर्व अनुभवों का प्रयोग किये बिना हम कुछ सोचते हैं तो वह निष्क्रिय स्मृति के अन्तर्गत आता है। साधारण भाषाा में कहें तो जिस घटना। वस्तु को याद करने में ज्यादा कोशिश न करनी पड़े वह निष्क्रिय स्मृति में आता है।

(7) यांत्रिक स्मृति/आदतजन्य स्मृति (Mechanical Memory) :–

जब हम किसी कार्य को बार–बार करते हैं तो हमें शारीरिक रूप से उसकी आदत पड़ जाती है, ऐसे कार्य ही यांत्रिक स्मृति में आते हैं।

कार्य करते–करते ही बिना सोचे ही उसका Process स्वतः ही होता रहता है।

जैसे– कार चलाते वक्त स्थिति के अनुसार गियर व ब्रेक का Use हम Automatically करने में लगते हैं।

(8) मनोवैज्ञानिक स्मृति (Psychological Memory) :–

जब किसी विशिष्ट तरीके/विधि से सीखा कोई कार्य हम याद रखते हैं तो उसे मनोवैज्ञानिक स्मृति के अन्तर्गत रखा जाता है।

स्मृति के कारण (Factors of Memory) :–

स्मृति के कुछ कारकों की बात करते हैं :–

(1) सीखना (Learning) :–

सीखना हमारी स्मृति को बहुत प्रभावित करता है। जब हम कुछ सीखते हैं तभी उसे अपने स्मृति में रखते हैं। कोई कार्य देखकर या सीखकर ही स्मृति में रखा जा सकता है।

(2) धारण (Retention) :–

सीखने के बाद हम किसी अनुभव या प्रक्रिया को धारण करते हैं। धारण का अर्थ है किसी चीज/प्रक्रिया को हमेशा के लिए आत्मसात करना। दिमाग में रखना।

कुछ व्यक्ति जल्दी सीख जाते हैं और कुछ देर में। अपनी क्षमता के अनुरूप लोग उसे अपने मस्तिष्क में रख पाते हैं। सामान्यतः देखने को मिलता है कि बच्चों की धारण शक्ति बड़ो की अपेक्षा अच्छी होती है।

(3) पुनः स्मरण (Re-Call) :–

जो अनुभव/प्रक्रिया हम अपने मस्तिष्क में रखते हैं उन्हें समय आने पर प्रयोग करना ही पुनः स्मरण है। यदि हमने किसी प्रक्रिया को अच्छे से धारण किया हो तो वो आसानी से Recall हो जाती है।

(4) अभिज्ञान (Recognition) :–

यह एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें हम अपने अनुभवों को पुनः स्मरण करके उसे प्रत्यक्ष रूप देते हैं। किसी वस्तु में पाई जाने वाली वह विशेषता जिसके द्वारा उसे दूसरी वस्तु से भिन्न माना जाए। जैसे– हम हम किसी वस्तु को पहली बार देखते हैं और फिर काफी समय बाद उसे उदेखते हैं तो एकदम से उसके बारे में याद नहीं आता। फिर जब हम समय से जोड़कर उसे याद करने की कोशिश करते हैं तो हम उसे याद कर लेते हैं।

स्मृति की विशेषताएँ (Characteristics of Memory) :–

स्मृति की विशेषता है कि आप किसी व्यक्ति/वस्तु स्थान को शीघ्र/जल्दी पहचान सकते हैं।

स्मृति की सहायता से ही आप किसी प्रक्रिया को जल्दी समझ पाते हैं।

स्मृति के द्वारा ही आप चीजों को Recall कर पाते हैं।

स्मृति के द्वारा ही आप अपने अनुभवों को धारण कर पाते हैं।

जिन क्रियाओं को आपने अच्छे से सीखा है उन्हें स्मृति लम्बे समय तक आपके साथ रखती है।

स्मृति को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Memory):–

सीखने की इच्छा (Willing to learn)

धारणा शक्ति (Retention Power)

शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य (Physical And Mental Health)

सीखने की विधि (Method of Learning)

परीक्षण (Test)

प्रेरणा (Motivation)

स्मृति की विधियाँ (Methods of Memory) :–

(1) पूर्ण विधि (Whole Method) :–

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

जब हम किसी विषय वस्तु को एक बार में ही याद कर लेते हैं तो उसे पूर्ण विधि कहा जाता है। छोटे Topics के लिए यह विधि अधिक प्रभावशाली है। बुद्धिमान बच्चों के लिए इस विधि से याद करना उपयोगी होता है।

(2) आंशिक/खण्ड विधि (Part Method) :–

जब हम किसी विषय वस्तु को कई भागों में बाँटकर याद रखते हैं तो उसे खण्ड विधि कहा जायेगा। जैसे किसी बड़े पाठ को छोटे–छोटे भागों में बाँटकर पढ़ना। मन्दबुद्धि बच्चों के लिए यह विधि सबसे उपयुक्त मानी जाती है।

(3) मिश्रित विधि (Mixed Method) :–

जब कोई विषय वस्तु बहुत बड़ी होती है तब हम पूर्ण व खण्ड दोनों विधियों के द्वारा उनको याद करते हैं, वही मिश्रित विधि कहलाती है।

(4) विराम विधि (Spaced Method) :–

इस विधि में हम किसी विषय–वस्तु को रूक–रूककर याद करते हैं जिससे थकान भी कम होती है और मन भी लगता है। यह विधि स्थायी स्मृति के लिए उपयोगी है।

(5) अविराम विधि (Unspaced Method) :–

इस विधि में हम किसी विषय–वस्तु को बिना रूके, लगातार याद करते हैं। इसमें हमे कई बार थकान भी अनुभव होने लगती है। तात्कालिक स्मृति के लिए यह विधि उपयोगी है।

(6) सक्रिय विधि (Active Method) :–

इस विधि में बच्चे बोल–बोलकर याद करते हैं। बोलकर याद करने से बच्चों का उच्चारण भी अच्छा होता है। प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए यह विधि काफी उपयोगी है।

(7) निष्क्रिय विधि (Passive Method) :–

इस विधि में बच्चे बिना बोले, मन ही मन में याद करते हैं। यह बड़े बच्चों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

(8) विचार–साहचर्य विधि (Method of Associaction of Ideas) :–

इस विधि में हमें जो याद करना है उसे हम अन्य किसी प्रमुख विषय–वस्तु से जोड़कर याद करते हैं। ऐसा करने से विषय–वस्तु जल्दी और लम्बे समय तक याद रहती है।

(9) वाचन विधि (Recitation Method) :–

इस विधि में हम बोलकर याद करते हैं तथा फिर उसको बिना देखे Revise करते हैं।

(10) बोध विधि (Understanding Method) :–

इस विधि में विषय–वस्तु को समझ–समझकर याद किया जाता है।

(11) क्रिया द्वारा ज्ञानार्जन विधि (Activity Method) :–

इस विधि में हम किसी क्रिया द्वारा सीखते हैं तथा फिर उसे याद रखते हैं। इससे सीखा हुआ हम ज्यादा समय तक याद रख पाते हैं।

(12) पुरावृत्ति विधि (RepetitionMethod) :–

इस विधि में विषय–वस्तु को पूरा पढ़कर फिर से उसे याद किया जाता है।

स्मृति व शिक्षण (Memory And Teaching) :–

किसी भी क्रिया को सीखने के बाद उसे स्मृति में रखा जाता है। सीखना/अधिगम बहुत ही महत्वपूर्ण है। सीखने की प्रक्रिया भी हमारी स्मृति को बहुत

प्रभावित करती है। शिक्षण करते समय शिक्षक को कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

कोई भी विषय–वस्तु स्मृति में तभी रहेगी जब उसको ठीक से सीखा गया हो। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक सरल तरीके से बच्चों को सिखाये।

सिखाते समय विषय–वस्तु को बच्चों के पूर्व ज्ञान से जोड़ने का प्रयास करें, जिससे बच्चे आसानी से समझ पायें।

बच्चों की क्षमता व योग्यता के अनुसार ही शिक्षण विधियों का उपयोग करना चाहिए।

Activity द्वारा बच्चों को सिखाना चाहिए उससे वो देर तक याद रखते हैं।

यदि बच्चे रूचिपूर्वक सीखते हैं तो उनके लिए अधिगम सरल हो जाता है। शिक्षक को प्रयास करना चाहिए कि अधिगम को रूचिपूर्ण बनायें।

स्मृति मापने की विधियाँ (Methods to Measurement Memory) :–

'हरमन एबिंगहौस' ने 1885 में पहली बार स्मृति का वैज्ञानिक अध्ययन किया और उन्होंने बताया कि धारण (Retention) का परीक्षण Recall से किया जा सकता है।

(1) प्रत्याहान विधि (Recall Method) :–

जो आपने सीखा है उसे कुछ समय बाद जब आप याद करते हैं तो उसे प्रत्याहान कहते हैं। ये दो प्रकार का होता है–

(i) मुक्त प्रत्याहान (Free Recall) :–

इस विधि में प्रतिभागियों को कुछ शब्द दिये जाते हैं जो उन्हें याद करने होते हैं। कुछ समय बाद उन्हें, उन शब्दों को किसी भी क्रम में Recall करने के लिये कहा जाता है। जितना अधिक वे Recall कर पाते हैं, उनकी अच्छी स्मृति मानी जाती है।

(ii) क्रमिक प्रत्याहान (Serial Recall) :–

इस विधि में भी प्रतिभागियों को कुछ शब्द याद करने के लिए दिये जाते हैं। इसके बाद उन शब्दों को उसी क्रम में Recall करना होता है जिसमें उन्हें प्रस्तुत किया गया था।

(2) वाक्य सत्यापन विधि (Sentence Verification Method) :–

इस विधि में प्रतिभागियों को यह बताना होता है कि दिये गए वाक्य सही हैं या गलत? जो जितनी जल्दी उत्तर देता है, उतनी ही अच्छी तरह से सूचना धारित होती है, जो वाकयों को Verify करने के लिए आवश्यक होती है।

(3) प्राथमिक लेप जिस सूचना को हम शाब्दिक रूप से नहीं बता सकते (For that Information we cannot report verbally) :–

इस विधि में प्रतिभागियों को शब्दों की एक सूची दिखाई जाती है जैसे–बंदरगाह, रात, विषय आदि। फिर उन्हें इन शब्दों के कुछ अंश जैसे– बंद, रा, वि और दूसरे शब्दों के अंश जिन्हें उन्होंने पहले नहीं देखा है, के साथ मिलाकर दिखाये जाते हैं। प्रतिभागी पहले देखे हुए शब्दों के अंश को अनदेखे शब्दों के अंश की तुलना में जल्दी पूरा करते हैं। हालांकि प्रतिभागियों को लगता है कि ये कार्य उन्होंने अंदाज से पूरा किया है।

(4) पुनः सीखना/बचत विधि (Relearning) :–

इस विधि को 'एबिंहास' के द्वारा दिया गया था। इसके द्वारा स्मृति की मात्रात्मक क्षमता की माप की जाती है। प्रतिभागियों को कुछ सामग्री पूरी याद करने के लिए दी जाती है। फिर कुछ समय बाद उसी सामग्री को फिर से याद करने के लिए कहा जाता है। प्रतिभागियों द्वारा लिया गया समय व प्रयास को Note कर लिया जाता है।

$$\frac{\text{(सीखने में किये प्रयास–पुनः सीखने में किये प्रयास)}}{\text{*100}}$$

बचत प्रतिशत = सीखने में किये प्रयास

स्मृति विधि (Memory Enhancement) :–

स्मृति सुधार की विधियों को स्मृति–सहायक संकेत कहा जाता है। इसकी दो प्रमुख विधियाँ हैं–

(1) मुख्य शब्द विधि (Keyword Method) :–

इस विधि में आप किसी सीखी हुयी चीज से कुछ नया सीखने का प्रयास करते हैं। जैसे– मान लीजिए आपको एक शब्द 'Scowl' सीखना है जिसका अर्थ है 'गुस्सा दिखाना'। अब इसका अर्थ सीखने के लिए आपको एक ऐसा Keyword ढूँढना होगा जिससे आप परिचित हों और वह 'Scowl' की तरह Sound करता हो। अब एक Image का Use करके इस शब्द को कीवर्ड से जोड़ने का प्रयास करें। 'Owl' अर्थात् उल्लू शब्द 'Scowl' के साथ तुकबन्दी करता है तो आप गुस्से में एक उल्लू की तस्वीर की कल्पना कर सकते हैं। इस विधि को रट्टा विधि से बेहतर माना गया है।

(2) स्थान विधि (Loci Method) :–

'Loci' किसी स्थान को बताता है। यह विधि जानकारी प्राप्त करने के लिए संकेत के रूप में एक परिचित (Known) स्थान की Location का Use करती है।

जैसे– बाजार जाते समय आपको ब्रेड, अंडा, साबुन याद रखना है तो आप मन में ये सोचें कि ब्रेड व अंडा रसोईघर में, साबुन स्नानघर में रखा है। जब बाजार पहुँचते हैं तो अपने रसोईघर से स्नानघर तक Mentally चलिये और जो भी खरीदना है उसे Recall करते जाइये।

विस्मृति (Forgetting) :–

सामान्य भाषा में भूल जाना ही विस्मृति है। जब हम कुछ सीखते हैं या याद करते हैं और कुछ समय बाद हमें याद न रहे तो उसे विस्मृति कहते हैं। इस स्थिति में हमारे मस्तिष्क में बने स्मृति चिन्ह (Memory Signs) कमजोर हो जाते हैं। कहा जाता है कि जैसे हम सीखते जाते हैं और समय बीतता जाता है तो हम उनमें से कुछ चीजें भूलते जाते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक सक्रिय और कुछ निष्क्रिय मानसिक प्रक्रिया बताते हैं।

'एबिंग' के अनुसार– शुरुआत में हम विस्मृति बहुत तेजी से होती है फिर धीरे–धीरे कम होने लगती है।

'फ्रायड' के अनुसार– यह एक सक्रिया मानसिक क्रिया है, जो किसी विषय को भूल जाने की प्रबल इच्छा के कारण होती है।

विस्मृति की क्रिया भी कहीं–कहीं महत्वपूर्ण होती है। जैसे– यदि कोई दुःखद घटना हो जाये तो उसे भूल जाना ही बेहतर होता है।

परिभाषा :–

'ड्रेवर'– ''विस्मृति से अभिप्राय किसी समय प्रयास करने पर भी किसी पूर्व अनुभव का स्मरण करने पर मिलने वाली असफलता है।''

'मन'– ''जो कुछ अर्जित किया गया हो उसे धारण न कर सकना ही विस्मृति है।''

'फ्रायड'– ''जो असुखकारी हो, उसे दूर रखने की प्रवृत्ति ही विस्मृति है।''

'भाटिया'– ''जो व्यक्ति मूल उद्दीपक की सहायता बिना पूर्व अनुभव को चेतन मस्तिष्क में नहीं ला पाता है तो इसे विस्मृति कहते हैं।''

विस्मृति के प्रकार (Types of Forgetting) :–

ये सामान्यतः दो प्रकार की होती हैं–

(1) सक्रिय विस्मृति (Active Forgetting) :–

जब हम किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना को जानबूझकर भूलते हैं तो उसे सक्रिय विस्मृति कहा जाता है। इसमें अपने जीवन से जुड़ी दुःखद घटनाओं को भूलना शामिल है।

(2) निष्क्रिय विस्मृति (Passive Forgetting) :–

जब हम अपने आप ही घटनाओं को भूल जाते हैं उसे निष्क्रिय विस्मृति कहते हैं।

विस्मृति के कारण (Causes of Forgetting) :–

विस्मृति के कारण की चर्चा करते हैं–

अभ्यास की कमी

थकान होना

मानसिक रूप से अस्वस्थ होना

सीखने की विधियाँ

समय का बीतना

उत्तेजनाओं के कारण जैसे– क्रोध, डर, चिन्ता आदि

इच्छानुसार (अर्थात् जब हम कुछ स्वयं ही भूलना चाहते हैं।)

मादक पदार्थ का सेवन

सीखने की असीमित मात्रा

स्मृति अनुपयोग के कारण

पहले सीखी गई क्रिया के अवरोध के कारण

विस्मृति को दूर करने के उपाय (Suggestion to Avoid Forgetting) :–

विस्मृति को कुछ उपायों द्वारा कम किया जा सकता है–

बच्चों को लगातार बहुत अधिक मात्रा में पाठ्य सामग्री न पढ़ाई जाये। उससे वे मानसिक रूप से थक जाते हैं और भूलने लग जाते हैं।

शिक्षक जो भी पढ़ाये उसका समय–समय पर अभ्यास कराते रहें।

पाठ्य वस्तु को बच्चों की योग्यता व क्षमता के अनुसार रखें व रूचिपूर्ण ढंग से शिक्षण करें।

एक विषय वस्तु को दूसरे से सम्बन्धित करके पढ़ायें जिससे वो अपने पूर्वज्ञान का उपयोग कर सकें।

Activity द्वारा बच्चों को सिखाने का प्रयास करें जिससे वो लम्बे समय तक विषय को याद रख सके।

शिक्षा में विस्मृति का महत्व (Importance of Forgetting in Education):–

विस्मृति कुछ संदर्भों में उपयोगी भी सिद्ध होती है जैसे–

बच्चे समाज में रहकर अच्छी व बुरी दोनों बातें सीखते हैं। विस्मृति के द्वारा यदि हम बुरी बातों को भूल जाते हैं तो यह हमारे लिए उपयोगी साबित होती है।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

स्मृति से यदि पुरानी बातें निकलती हैं तो उसमें कुछ नई बातें भी आती हैं जो हमारे लिए आवश्यक होती हैं।

अपने बुरे व दुःखद अनुभव को भूलने में विस्मृति उपयोगी है।

'कॉलसनिक' के अनुसार, ''जीवन के अनेक अनुभवों का केवल क्षणिक महत्व होता है और वे याद रखने के योग्य नहीं होते हैं।''

संवेग (Emotion) :–

संवेग एक लैटिन शब्द 'एमोवर' से बना है जिसका अर्थ है असंतुलित अवस्था। संवेग किसी व्यक्ति, कार्य, घटना से उत्पन्न प्रक्रिया है। हर्ष, प्रेम, दुःख, घृणा तथा अन्य भावनायें हम अनुभव करते हैं। संवेग का अर्थ सामान्यतः दो शब्दों से लेते हैं– भावना तथा मनोस्थिति (State of Mind)।

भावना, संवेग के सुख–दुख की स्थिति को दर्शाता है। इसमें शारीरिक क्रियाएँ भी निहित होती हैं।

मनोस्थिति कुछ लम्बे समय तक रहने वाली भावात्मक अवस्था है किन्तु यह संवेग से कम तीव्र होती है। संवेग को मानव व्यवहार के प्रेरक के रूप में भी कहा जाता है। जैसे– भूख की आवश्यकता लगने पर भूख लगती है, प्यास की आवश्यकता के परिणामस्वरूप प्यास लगती है।

संवेग हर जगह अनुभव किये जाते हैं–

क्रोध (Anger), भय (Fear), प्रसन्नता (Happiness), दुख (Pain), आश्चर्य (Wonder), विरूचि (Dislike)

परिभाषायें :–

'गेट्स'– ''किसी भी व्यक्ति का संवेगात्मक व्यवहार उसके शारीरिक व मानसिक विकास से ही सम्बन्धित होता है।''

'वुडवर्थ'– ''संवेग एक ऐसी उत्तेजित अवस्था है जिसको व्यक्ति स्वयं अनुभव करता है। यह पेशी व ग्रन्थी क्रिया का असमायोजन है ऐसा प्रतीत होता है।''

'डॉ0 एस माथुर'– ''यदि मनोवैज्ञानिक रूप से देखें तो संवेग के अन्तर्गत भाव, आवेग तथा शारीरिक प्रक्रियायें आती हैं।''

'गेलडार्ड'– ''संवेग क्रियाओं को उत्तेजित करते हैं।''

'जरसील्ड'– ''संवेग, किसी भी तरह के आवेग में आने, भड़कने या Hyper होने की दशा है।''

संवेग के प्रकार (Types of Emotions) :–

संवेग मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं–

(1) मूल भावनायें (Basic Emotions) :–

ये वो संवेग होते हैं जो आमतौर पर सभी लोगों में पाये जाते हैं जैसे– क्रोध, खुशी, भय, घृणा आदि।

ये सामान्यतः जन्मजात होते हैं। सभी प्रकार के संवेग कुछ मूल संवेगों से ही मिलकर बनते हैं।

(2) आत्म चेतन भावनायें (Self Conscious Emotions) :–

वे संवेग जो कि आत्म चेतन (Self Thingking) तथा स्वयं की प्रक्रिया पर क्रमबद्ध रूप से की गई प्रतिक्रिया को दर्शाने के लिए अपेक्षित (Expected) होते हैं। जैसे– शर्मिंदगी, गर्व, अपमान आदि।

ये भावनायें इस बात से प्रभावित होती हैं कि हम खुद को कैसे देखते व समझते हैं।

संवेग के घटक (Components of Emotion) :–

संवेग के 6 मुख्य घटक हैं :–

संज्ञानात्मक मूल्यांकन (Cognitive Evaluation) :–

यहाँ व्यक्तिगत अर्थ के आधार पर परिस्थिति का आंकलन किया जाता है। इस मूल्यांकन में पहले उत्तेजना का मूल्यांकन किया जाता है और फिर उसके अनुरूप प्रतिक्रिया की जाती है जैसे– यदि कोई दुःख की उत्तेजना मिलती है तो हम दुख के साथ प्रतिक्रिया करते हैं। जब हमारी पसन्दीदा टीम मैच हार जाये तो हमारी प्रतिक्रिया दुख की होती है।

व्यक्तिनिष्ठ अनुभव (Subjective Experience) :–

यह भावात्मक स्थिति से संबंधित होता है जो Emotions द्वारा प्राप्त होता है।

विचार व क्रिया प्रवृत्ति (Thought And Action Tendency) :–

इस स्थिति में व्यक्ति एक विशेष तरीके से सोचता है या कार्य करता है।

जैसे– जब कोई व्यक्ति गुस्से में होता है तो वह आक्रामक तरीके से व्यवहार करता है।

आंतरिक शारीरिक परिवर्तन (Internal Physical Changes) :–

इस स्थिति में मुख्य रूप से स्वायत्त तंत्रिका तंत्र में परिवर्तन होता है। जैसे– व्यक्ति को पसीना आना, हृदय गति में परिवर्तन होना।

चेहरे के भाव (Facial Expression) :–

चेहरे के विभिन्न भागों जैसे– नाक, गाल आदि पर परिवर्तन होता है। जैसे– खुश होने पर व्यक्ति मुस्कुराता है।

संवेगों के प्रति प्रतिक्रिया (Response to Emotion) :–

एक व्यक्ति किस प्रकार अपने संवेगों का सामना करता है और Response देता है। कोई खुशी की खबर मिलने पर आप कैसे प्रतिक्रिया करेंगे?

बहुत समय से चल रही नौकरी की तैयारी के बाद एक दिन आपको सफलता मिल जाये आप कैसे प्रतिक्रिया करेंगे?

संवेगों के प्रकार्य (Functions of Emotions) :–

संवेग दूसरों के साथ बातचीत करने में मदद करते हैं।

संवेग व्यक्ति को आगे की क्रिया/परिस्थिति के लिए तैयार करते हैं।

किसी व्यक्ति के भविष्य के व्यवहार को आकार देने में संवेग बहुत महत्वपूर्ण हैं।

संवेग अपनी सोच व भावनाओं को प्रकट करने में मदद करते हैं।

संवेगों के सिद्धांत (Principles of Emotion) :–

(1) जेम्स–लैंग सिद्धान्त :–

इस सिद्धान्त को 'विलियम' जेम्स व कार्ल लैंग' ने प्रस्तावित किया था। इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्तियों द्वारा संवेगों का अनुभव शारीरिक परिवर्तनों के कारण होता है। एक व्यक्ति बाहरी घटना या स्थिति में आने के बाद शारीरिक प्रतिक्रिया का अनुभव करता है।

जैसे– एक शिक्षक कक्षा में अचानक से पढ़ाई की जगह खेलने वाले छात्र से प्रश्न पूछने लगता है। इस स्थिति में छात्र का दिल तेजी से धड़कता है और प्रतिक्रिया 'डर' के रूप में आती है।

(2) कैनन बार्ड सिद्धान्त :–

यह सिद्धान्त 'वाल्टर कैनन व फिलिप बार्ड' ने दिया था। यह बताता है कि समान तंत्रिका उत्तेजना (Nerve Stimulation) एक ही समय में शारीरिक उत्तेजना व संवेगात्मक अनुभव पैदा करती है।

समान तंत्रिका उत्तेजना (जो थैलेमस से निकलती है) जब तक संवेग उत्पन्न करने वाला उद्दीपक (Stimulus) एक व्यक्ति द्वारा देखा जाता है तो एक संकेत थैलेमस द्वारा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को भेजता है जो कि जो संवेगात्मक प्रतिक्रिया के संबंध में आंतो (Intestine) की प्रतिक्रिया को उत्पन्न करता है व साथ ही साथ सेरेब्रल कोरटेक्स को भी एक साथ भेजता है।

जैसे– मान लीजिए आप अपने घर आते हैं और वहाँ बिजली नहीं है। आपको एहसास होता है कि वहाँ अंधेरा है और आप अकेले हैं। आप अपने आस–पास (अंधेरा, अकेला) के बारे में संवेदी जानकारी प्राप्त करते हैं जिससे आपको डर लग रहा है। आप डर महसूस करते हैं और आपकी धड़कन बढ़ने लगती है।

डर संज्ञात्मक → घटक

हृदय गति बढ़ना → शारीरिक प्रतिक्रिया

(3) शैक्टर–सिंगर सिद्धांत :–

इस सिद्धांत को **'स्टेनली शैक्टर व जेरोम ई सिंगर'** द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इसे दो कारक सिद्धांत भी कहा जाता है। यह सिद्धांत बताता है कि अनुभव किये गये संवेगों को व्यक्ति द्वारा पर्यावरण के अवलोकन के आधार पर तथा दूसरों के साथ खुद की तुलना करके पहचाना जाता है। इसके अन्तर्गत संवेगों के दो अवयव हैं– शारीरिक उद्वेलन (Physical Arousal) व संज्ञानात्मक (Cognitive) Label।

जैसे– आपका हृदय उस समय तेजी से धड़कता है जब आप क्रोधित या भयभीत होते हैं। आप शरीर क्रियात्मक रूप से उद्वेलित होते हैं तथा बाह्य वातावरण का इस आशा से अवलोकन करते हैं कि इस उद्वेलन की व्याख्या कर सकें।

(4) विरोधी प्रक्रिया सिद्धान्त (Opposing Process Theory) :–

यह सिद्धांत बताता है कि भौतिकी (Physics) का नियम, जो प्रत्येक क्रिया के बाद प्रतिक्रिया होती है को बताता है, वह संवेग पर भी लागू होता है।

जैसे– एक व्यक्ति यदि ड्रग्स का उपयोग करना शुरु कर दे तो वह शुरु में तीव्र/अधिक आनंद का अनुभव कर सकता है। बार–बार प्रयोग से आनंद की तीव्रता में कमी होती है और वापसी से संबंधित प्रतिक्रियायें मजबूत हो जाती हैं। इस प्रकार व्यक्ति अब नकारात्मक भावनाओं जो कि उसे नशा न लेने पर प्राप्त होंगी से बचने के लिए दवाओं का सेवन करने लगता है।

(5) संवेगात्मक मूल्यांकन संवेग का सिद्धांत (Principle of Cognitive Evaluation Emotion) :–

रिचर्ड लेजारस :–

इस सिद्धान्त के अनुसार, किसी भी जानकारी को विभिन्न माध्यमों से मूल्यांकित किया जाता है और यह मूल्यांकन मुख्य रूप से संज्ञान (Cognition) पर आधारित होता है। इस प्रकार हम जिस संवेग का अनुभव करते हैं वो हमारे अंतर्मन व आस पास के वातावरण से प्राप्त सूचनाओं का परिणाम होता है।

जैसे– जब किसी छात्र को बताया जाता है कि उसे प्रिंसिपल ने बुलाया है तो छात्र को **आशंका** होने लगती है कि उसे क्यों बुलाया है लेकिन जैसे ही उसे पता चलता है कि अच्छे नंबर प्राप्त करने के कारण उसको पुरस्कार दिया जायेगा तो परिस्थिति बदलेंगी और वह छात्र अब खुशी का अनुभव करेगा।

संवेगों की अभिव्यक्ति (Expression of Emotions) :–

संवेग एक आन्तरिक अनुभूति है जिसका दूसरे सीधे Observation नहीं कर सकते। संवेंगों का अनुमान उनके वाचिक तथा अवाचिक (Verbal and Non-verbal)

अभिव्यक्तियों के द्वारा ही होता है। जिस तरह से प्रत्येक संवेग को समझा या अनुभव किया जा सकता है उसमें परिवर्तन भी हो सकता है।

जैसे– खुशी को स्वर के बजाय चेहरे की अभिव्यक्ति से अधिक सटीक रूप में समझा जा सकता है। वहीं चेहरे की अभिव्यक्ति की तुलना में क्रोध को आवाज के रूप में अधिक सटीक रूप से समझा जा सकता है।

संचार के वाचिक माध्यम में वाचिक शब्द तथा बोलने की दूसरी विशेषताएँ जैसे– पिच, बोली का ऊँचापन आते हैं। अवाचिक माध्यमों में चेहरे के हाव–भाव, गतिक (मुद्रा, शरीर की गति) व्यवहार आते हैं। चेहरे की हाव–भाव से होने वाली अभिव्यक्ति सांवेगिक संचार का सबसे अधिक प्रचलित माध्यम है।

मूल संवेगों (Basic Emotions) की मुख द्वारा अभिव्यक्ति (हर्ष, क्रोध, दुख, भय, विरुचि व आश्चर्य) जन्मजात व सार्वभौमिक (Universal) होती है।

संवेगों का मापन (Measurement of Emotions) :–

संवेगों का मापन इस बात पर निर्भर करता है कि संवेग कैसे प्रकट हो रहे हैं। संवेग बहुआयामी (Multidimensional) होते हैं इसलिये इनका मापन थोड़ा मुश्किल होता है।

(i) गैर–मौखिक उपकरण (Non Verbal Instrument) :–

ये उपकरण संवेगों के शारीरिक पहलू का मापन करते हैं। कोई भी संवेग किसी न किसी अभिवृत्ति के साथ होता है और इस प्रकार संवेगों को चेहरे के भावों के साथ–साथ मौखिक अभिव्यक्ति के रूप में भी मापा जा सकता है। चेहरे की अभिव्यक्ति को फोटो या वीडियो द्वारा विश्लेषण किया जा सकता है।

ऐसा ही एक उपकरण है 'कैंसर व वेहरले' का मौखिक अभिव्यक्ति विश्लेषण उपकर FACS (Facial Action Coding System) का उपयोग चेहरे में मांसपेशियों की गति का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। शारीरिक घटकों को मापने के लिए

पॉलीग्राफ का भी उपयोग किया जाता है। पॉलीग्राफ एक व्यक्ति के तंत्रिका तंत्र (Nervous System) में होने वाले सूक्ष्म परिवर्तनों को मापता है।

(ii) आत्म विवरण प्रश्नावली (Self Report Questionnaire) :–

इस विधि में किसी व्यक्ति को प्रश्नावली के जवाब देने के लिए कहा जाता है। इस मापन में मुख्य रूप से व्यक्तिगत घटकों का ही मापन किया जाता है। कुछ इस प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं –

जैसे– आप क्या महसूस कर रहे हैं?

आत्म विवरण प्रश्नावली का एक उदाहरण सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव अनुसूची (PANAS-X) है। इस प्रश्नावली द्वारा 11 संवेगों का मूल्यांकन किया जाता है– भय, उदासी, शर्म, थकान, अपराधबोध, आश्चर्य, उत्साह, आत्म आश्वासन, सावधानी व शांति।

अधिगम अशक्तताएँ (Learning Diability) :–

अधिगम अशक्तता का अर्थ उन विकारों से है, जिनके कारण किसी व्यक्ति में सीखने, पढ़ने, लिखने, बोलने, तर्क करने व गणित के प्रश्न हल करने आदि में कठिनाई होती है। इन विकारों के स्त्रोत (Source) बच्चे में जन्मजात रूप से निहित होते हैं। ऐसा माना जाता है कि केन्द्रिय तंत्रिका तत्रं (Central Nervous System) की कार्यविधि में समस्याओं के कारण अधिगम अशक्तता पाई जाती है। अधिगम अशक्तता के साथ–साथ किसी बच्चे में शारीरिक अक्षमता, संवेदी अक्षमता, बौद्धिक अक्षमता भी हो सकती है। यदि अधिगम अशक्तता का समुचित प्रबंध नहीं किया जाये तो यह जीवन पर्यंत बनी रहती है और व्यक्ति की क्रियाओं को प्रभावित करती है।

अधिगम अशक्तता के लक्षण (Symptoms of Learning Diability) :–

अधिगम अशक्तता वाले बच्चों में लक्षण भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रकट होते हैं–

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

अक्षरों, शब्दों व वाक्यों को लिखने में, लिखी हुए विषय वस्तु को पढ़ने में तथा बोलने में बहुत कठिनाई पायी जाती है।

अधिगम अशक्तता वाले बच्चों में स्थान व समय की समझ भी कम देखने को मिलती है। ये नये स्थानों को आसानी से नहीं पहचान पाते और समय की कम समझ के कारण कार्य को या तो समय से बहुत पहले या बहुत देर से कर पाते हैं।

अधिगम अशक्तता वाले बच्चों में अवधान (Attention) से जुड़े विकार/दोष भी पाये जाते हैं। वे किसी एक चीज पर देर तक ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते हैं।

ये बच्चे काम करने के मौखिक अनुदेशों (Veribal Instructions) को समझने में भी असफल होते हैं।

दृष्टि, श्रवण, स्पर्श व गति से जुड़े संकेतों का प्रत्यक्षण (Perception) करने में ये अधिक त्रुटि करते हैं जैसे– फोन की घंटी व दरवाजे की घंटी में अंतर करने में ये असफल होते हैं।

इन बच्चों का पेशीय समन्वय (Muscular Coordination) भी ठीक से नहीं होता है। जैसे– साइकिल चलाना सीखने में इन्हें अधिक कठिनाई होती है।

अधिगम अशक्तता वाले अधिकांश बच्चों में पठनवैकल्य (dyslexia) के लक्षण भी पाये जाते हैं। ये कई बार अक्षर व शब्द की नकल (Copy) नहीं कर पाते। जैसे– ट, ठ, प, फ में अन्तर करना, सोना तथा खोना में अन्तर।

अधिगम अशक्तता के कारण (Cause of Learning Disability) –

अधिगम अशक्तता मस्तिष्क के उस हिस्से से सम्बन्धित है जहाँ भाषा का संचालन किया जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम अशक्तता के निम्न कारण बताये हैं :–

(1) वंशानुगत कारण (Hereditary Causes) :–

भाषा से सम्बन्धित अधिगम समस्यायें जैसे dyslexia आदि एक परिवार में वंश के द्वारा आगे बढ़ते देखे गये हैं। dyslexia में मस्तिष्क के कार्य गोलार्द्ध में पढ़ने के लिए कोई विशिष्ट स्वरूप नहीं होता। अतः परिवार में जब कोई अधिगम अशक्तता किसी को होगी तो वह स्वाभाविक रूप से वंश दर वंश आगे बढ़ेगी।

(2) जैविक कारण (Organic Causes) :–

यह अशक्तता मानसिक dysfunction के कारण होती है। यह dysfunction केन्द्रीय स्नायु तंत्र (Central Nervous System) में उत्पन्न होता है। हमारे मस्तिष्क का ठीक प्रकार से कार्य न कर पाना मस्तिष्क के dysfunction के कारण ही होता है।

(3) वातावरणीय कारण (Hereditary Causes) :–

कुछ वातावरणीय कारक होते हैं जो अधिगम अशक्तता उत्पन्न करते हैं जैसे–

⇒ जन्म के बाद यदि बच्चे को कम पोषण वाला भोजन मिलता है तो भी उसके मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है।

⇒ समय से पूर्व जन्म होने से भी बच्चा अधिगम असमर्थ हो जाता है।

⇒ यदि माँ को शुगर या और कोई बीमारी है या माँ नशीली दवाईयों का सेवन करती है तो भी बच्चे के मस्तिष्क का विकास रूक जाता है।

अधिगम अशक्तता का वर्गीकरण (Classification of Learning Disabilities) –

अधिगम अशक्तता का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जाता है जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित विकार आते हैं :–

1. डिस्लेक्सिया (पढ़ने संबंधी विकार)
2. डिस्ग्राफिया (लिखने संबंधी विकार)
3. डिस्कैलकुलिया (गणितीय कौशल संबंधी विकार)
4. डिस्फैसिया (वाक् क्षमता संबंधी विकार)
5. डिस्प्रैक्सिया (लेखन व चित्रांकन संबंधी विकार)
6. डिसऑर्थोग्राफिया (वर्तनी संबंधी विकार)
7. ऑडिटरी प्रोसेसिंग डिसऑर्डर (श्रवण संबंधी विकार)
8. विजुअल परसेप्शन डिसऑर्डर (दृश्य प्रत्यक्षण क्षमता संबंधी विकार)
9. सेंसरी इंटिगेशन OR प्रोसेसिंग डिसऑर्डर (इन्द्रीय समन्वयन क्षमता संबंधी विकार)
10. ऑर्गनाइजेशनल लर्निंग डिसऑर्डर (संगठनात्मक पठन संबंधी विकार)

ये विकार पुस्तक 'Supporting Students with Learning Disability : A guide for Teachers' में दिये गये हैं।

पढ़ने संबंधी विकार (Dyslexia) –

पढ़ने के लिए अक्षर, शब्द व वाक्य की पहचान करना बहुत जरूरी होता है। अक्षर स्वर व व्यंजन से मिलकर बनते हैं। अक्षरों से मिलकर शब्द व शब्द से मिलकर वाक्य बनते हैं। जब हमें इन अक्षर/शब्द/वाक्य को पहचानने व बोलने में परेशानी होती है तो उसे Dyslexia कहा जाता है। इसमें भाषा का प्रयोग, वाक्, ध्वनि, प्रतीकों का प्रयोग सम्बन्धी विकार देखने को मिलते हैं।

लक्षण (Symptoms) :–

⇒ दिशाओं का भ्रम होना। दायें को बायें व बायें को दायें समझना।
जैसे – W को M समझना या d को b पढ़ना।

⇒ अक्षरों का क्रम इधर उधर करके पढ़ना।
जैसे – मान को नाम पढ़ना।
सरल को लरस पढ़ना

⇒ अक्षरों की ध्वनि सीखने में कठिनाई समान उच्चारण वाली ध्वनियों को न पहचानना।
जैसे– काम, राम, शाम

⇒ शब्दकोष का अभाव

⇒ एकाग्रता में कमी

⇒ वर्तनी दोष होना

⇒ तालमेल (Balance) की कमी।
जैसे– शर्ट का बटन न लगा पाना।

⇒ धीमी गति से पढ़ना

⇒ English में Spelling errors जैसे–
Cat को mat समझना
rain को rane कर देना।

डिस्लेक्सिया की पहचान व उपचार (Identification and Treatment of Dyslexia) –

डिस्लेक्सिया की पहचान उपर्युक्त कारणों के साथ–साथ कुछ परीक्षणों द्वारा भी की जाती है। 1973 में अमेरिका के फिजिशियन 'एलेना वोडर' ने 'वोड बेस्ट ऑफ रीडिंग–स्पेलिंग पैटर्न' नाम के परीक्षण का विकास किया। भारत में भी इसके लिए 'डिस्लेक्सिया अली स्क्रीनिंग टेस्ट' व 'डिस्लेक्सिया स्क्रीनिंग टेस्ट' का Use किया जाता है।

डिस्लेक्सिया को पूर्ण रूप से ठीक करना थोड़ा मुश्किल है परन्तु उचित शिक्षण–अधिगम पद्धति द्वारा इसे कम किया जा सकता है।

⇒ बच्चों को, शब्दो को क्रमिक रूप से पढ़वाना व वाचन कराना।

⇒ अभ्यास के द्वारा अक्षरों की पहचान करवाना।

⇒ शिक्षकों को प्रशिक्षण देना जिससे उन्हें dyslexia सम्बन्धी सारी जानकारी हो।

⇒ सबसे आवश्यक कार्य बच्चों को सकारात्मक रखना तथा उन्हें Motivate करना कि वो कर सकते हैं।

(1) लेखन संबंधी विकार (Dysgraphia) –

ये विकार हमारी लेखन क्षमता को प्रभावित करता है। इसमें बच्चा लेखन के साथ–साथ शब्दों और वाक्यों में मात्राओं के लेखन में त्रुटियाँ अधिक करता है। अपने विचारों को लिखित रूप में व्यक्त करने में परेशानी होती है।

लक्षण (Symptoms) –

⇒ अशुद्ध वर्तनी के अनियमित रूप व आकार वाले अक्षर को लिखना

⇒ अपूर्ण अक्षर/शब्द लिखना

⇒ लेखन सामग्री पर कमजोर पकड़

⇒ लाइनों का ऊपर–नीचे लिखा जाना

⇒ मात्राओं की त्रुटि

⇒ लिखते समय स्वयं से बातें करना

उपचार (Treatment) –

इसके उपचार के लिए यह आवश्यक है कि इस अधिगम अक्षमता वाले बच्चे को लेखन का ज्यादा से ज्यादा अभ्यास कराया जाये।

लेखन में आने वाले विकार को इन सिद्धांतों की मदद से दूर किया जा सकता है–

- शीघ्र हस्तक्षेप करके अतिरिक्त सहायता प्रदान करना।
- लेखन सुधारने के लिए तकनीकी उपकरणों प्रयोग करना।
- कोशिश करें कि बच्चा सीखकर व समझकर लिखे।
- लिखने में आने वाली रुकावटों की पहचान करना।

(3) गणित कौशल संबंधी विकार (Dyscalculia) –

इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के गणित संबंधी कौशल विकार जैसे– अंकों व संख्याओं को समझने में परेशानी, अंकगणितीय समस्या, सूत्र व सिद्धांतों के प्रयोग में अयोग्यता शामिल है।

इसके अतिरिक्त गणित का नाम सुनते ही Anxiety होना, गिनती न कर पाना आदि।

लक्षण (Symptoms) –

⇒ अंकों की पहचान न कर पाना।

⇒ जोड़, घटाव, गुणनफल, भाग का सही परिणाम न आना।

⇒ घड़ी देखकर समय न बता पाना।

⇒ मानसिक रूप से गणित की Calculation न कर पाना।

⇒ अंकगणित में चिन्हों में समझने में परेशानी।

⇒ गिनने के लिए उंगलियों का प्रयोग करना।

कभी–कभी तार्किक चिंतन न कर पाने के कारण या कार्यकारी स्मृति (Memory) के अभाव के कारण भी डिग्राफिया हो जाता है।

उपचार (Treatment) –

⇒ बच्चों को अभ्यास के लिए अतिरिक्त समय देना चाहिए।

⇒ फ्लैश कार्ड्स को Use करना चाहिए।

⇒ पाठ्य वस्तु को उदाहरण के माध्यम से समझाये जिसे बच्चे अपने वास्तविक जीवन से जोड़ पायें।

⇒ अंकों को समझने के लिए ग्राफ पेपर का Use करें।

⇒ बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

(4) वाक् क्षमता संबंधी विकार (Dysphasia) –

यह एक भाषा व वाक् (Speech) संबंधी विकार है जिससे बोलने में कठिनाई होती है। यह विचारों की अभिव्यक्ति में एक बाधा है। यह विकार मुख्य रूप से Brain Damage की वजह से होता है।

ये अन्य कारणों जैसे दांत न होना, जीभ में चोट लगना आदि कारणों से भी हो जाता है। जैसे– किसी बच्चे को स्टेज पर कुछ बोलने के लिए बुलाया जाये और वो पूर्ण या आंशिक रूप से बोलने में कठिनाई का अनुभव करे तथा उसे घबराहट होने लगे।

यह एक संचार सम्बन्धी विकार है। इसके अन्तर्गत एक विकार आता है।

अफेज्या (Aphasia) –

Aphasia में बच्चा मौखिक (Verbal) रूप से भाषा को ग्रहण करने व व्यक्त करने में असमर्थ होता है। बोलने के लिए वह शब्दों का चुनाव नहीं कर पाता है। बच्चें शब्दों का निर्माण भी नहीं कर पाते हैं और बोलने में भी हिचकिचाते हैं। यह भी एक संचार संबंधी विकार है। जैसे– अध्यापक ने एक बच्चे को कुछ बोला, परन्तु वह बच्चा उसे समझ नहीं पा रहा है। यदि बच्चे को कुछ बोलने को कहा जाये तो वह बोलने में समस्या का अनुभव करता है। इस विकार से ग्रसित बच्चे बोलने के बजाय लिखना पसन्द करते हैं।

(5) लेखन व चित्रांकन सम्बन्धी विकार (Dyspraxia) –

इस विकार में बच्चों को लिखने व चित्र बनाने में कठिनाई होती है। डिस्प्रेक्सिया शारीरिक कौशल विकृति व गति विकृति भी है। इसमें बच्चा अपने हाथों व आँखों के बीच समन्वय/सन्तुलन नहीं बना पाता है। इसे Sensory Integration Disorder कहते हैं।

जैसे – साइकिल चलाना सीखने में कठिनाई
– गेंद फेंकने में कठिनाई।

अप्रैक्सिया (Apraxia) –

इस विकार के कारण बच्चों को शारीरिक व गतिक कौशलों में कठिनाई होती है। जैसे– लिखने में, चलने में, टहलने में, बोलने में।

गतिक कौशल (Motor Skills) विकार में बच्चा अपने शरीर में संतुलन नहीं बना पाता है। जैसे– हाथ व आँखों में Coordination न हो पाना।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

यह विकार मस्तिष्क में सेरेब्रम की क्षति/ठीक से कार्य न कर पाने के कारण होता है।

जैसे – जूते का फीता न बाँध पाना।
– शर्ट का बटन न लगा पाना।

इसमें आप कार्यों का पैटर्न याद नहीं रख पाते हैं। ये लेखन व गतिक विकार है।

(6) Dysorthographia –

यह वर्तनी संबंधित विकार से संबंधित है। इस विकार के कारण बच्चे शब्दों को/वाक्यों को सही से नहीं लिख पाते हैं।

जैसे– शब्द में से कोई अक्षर हटा लेना, व्यंजन व स्वर में अन्तर न कर पाना, व्याकरण संबंधी गलतियाँ आदि।

इस विकार से ग्रसित बच्चे बोलने या पढ़ने में तो ठीक होते हैं परन्तु शब्दों से उनका तालमेल लिखते समय नहीं बन पाता।

(7) Auditory Processing Disorder (APD) –

यह एक श्रवण (सुनने) संबंधी विकार है। यह हमारे मस्तिष्क को समझने से रोकता है कि वह क्या सुन रहा है।

इस अवस्था में बच्चे जो सुनते हैं उसे समझ नहीं पाते क्योंकि उनके मस्तिष्क व कान का तालमेल नहीं बन पाता है।

जैसे– भीड़–भाड़ वाले स्थान पर भाषण को समझने में परेशानी होना।

(8) Visual Perception Disorder (VPD) दृश्य प्रत्यक्षण विकार –

यह दृश्य प्रत्यक्षण (Visual Perception) क्षमता संबंधी विकार है। इस विकार में बच्चे जो सामने देखते हैं उसे समझ नहीं पाते हैं।

⇒ कई बार अक्षरों व संख्याओं को उल्टा लिख देते हैं। जैसे– b को d लिख देना।

⇒ समय बताने में परेशानी होती है (घड़ी द्वारा)।

⇒ किसी वाक्य/शब्द की नकल करने में परेशानी।

⇒ लिखते समय किसी वाक्य की लाइन छोड़ देते हैं।

(9) Sensory Integration OR Processing Disorder (SPD) (इन्द्रीय समन्वयन क्षमता संबंधी विकार) –

इंद्रियों से संबंधित वे चीजें जिन्हें हम देखते, सुनते, चखते, छूते या सूँघते हैं, इस विकार से प्रभावित होती है। बच्चें अक्सर उन चीजों के लिए अधिक संवेदनशील (Sensitive) या उत्तेजित (Excited) हो जाते हैं जो दूसरों के लिए सामान्य हैं।

जैसे– इस विकार से पीड़ित बच्चे को वो चीजें बिल्कुल पसंद नहीं होती जो उनके Senses को उत्तेजित करें, जैसे– बहुत ज्यादा शोर होना, बहुत ज्यादा खुशबू होना आदि।

इस विकार में इंद्रियों से आने वाली जानकारी को ग्रहण करके उस पर React करने में परेशानी होती है।

Alexia –

जब बच्चे के मस्तिष्क में कोई क्षति/रुकावट हो जाती है तो उस कारण से ये विकार उत्पन्न हो जाता है। यह एक अर्जित (Acquired) विकार हो इसमें पढ़ने व सीखने की शक्ति कम या लुप्त हो जाती है। इसे शब्द अंधता या पाठ अंधता भी कहते हैं।

ये पठन संबंधी विकार है।

जैसे– वर्णमाला अधिगम में कठिनाई होना, शब्दों को उल्टा पढ़ना, समान उच्चारण वाली ध्वनियों को न पहचानना

Hyperlexia –

इसमें पढ़ने व लिखने संबंधी समस्या बच्चों को होती है। वाक्य व शब्दों को समझने में कठिनाई होती है।

ये पठन संबंधी विकार है।

जैसे– पढ़ते समय स्वर वर्णों का छूट जाना।

Acalculia –

इस विकार में बच्चों को अंकगणित (Arithmetic) की संगणना (Calculation) करने में कठिनाई होती है।

ये गणित संबंधी विकार है।

जैसे–

```
  5 2
– 2 3
-------
  3 1
```

Agraphia –

इस विकार में बच्चों की लेखन व स्पेलिंग में कठिनाई होती है। स्पेलिंग को सही से न समझ पाने के कारण लिखने में भी दिक्कत होती है।

ये लेखन संबंधी विकार है।

जैसे– boy को doy लिख देना।

ADHD (Attention Deficit Hyperactivity Disorder) (ध्यान अभाव अति क्रियाशीलता विकार) –

इस विकार में बच्चों को ध्यान केन्द्रित करने में समस्या आती है। ये बच्चे अक्सर संवेगात्मक (Emotionaly) रूप से भी अस्थिर होते हैं। ऐसे बच्चे अक्सर अपने आवेगों (Impulses) को नियंत्रित नहीं कर पाते हैं। लड़कों में ये विकार ज्यादा देखने को मिलता है। ऐसे बच्चे बहुत जल्दी विचलित हो जाते हैं और दूसरों की भी कम सुनते हैं।

Autism (स्वलीनता) –

Autism एक विकास संबंधी विकार है जिससे ग्रसित बच्चों को पढ़ने–लिखने, बात करने व समाज से मेल–जोल बनाने में परेशानी आती है। ये बच्चें अक्सर अकेलें रहना पसन्द करते हैं। कई बच्चों का व्यवहार गुस्सैल व अशांत भी देखने को मिलता है। कुछ बच्चें तो अपने आप को नुकसान पहुँचाने की भी कोशिश करते हैं। ये बच्चे खेल–कूद इससे ग्रसित बच्चें कई बार चीजों/क्रियाओं को दोहराते हैं।

डिस्मोरफिया (Dysmorphia) –

इसमें रंग–रूप से संबंधित भावनायें व विचार आपको परेशान करने लगते हैं। इसमें व्यक्ति को ये भ्रम रहता है कि उसके शरीर के अंग बहुत छोटे या अपूर्ण हैं या फिर बनावट और रंग अच्छा नहीं है। ये अक्सर अपनी शारीरिक संरचना की तुलना दूसरों से करते हैं।

डिस्थीमिया (Dysthymia) –

यह एक गंभीर तनाव की अवस्था है। इस विकार में व्यक्ति उदास और निराश रहता है। इस विकार से ग्रसित लोग कभी संतुष्ट नहीं हो पाते और ज्यादातर नेगेटिव सोचते हैं। बार–बार गुस्सा आना भी इसका एक लक्षण है। इसे Persistent

Depressive Disorder (PDD) भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त नींद की समस्या, थकान आदि की समस्या भी होती है।

डिमेंशिया (Dementia) –

इस विकार में व्यक्ति की स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है। व्यक्ति तर्क नहीं कर पाता है। मानसिक कार्यों की गति धीमी हो जाती है। इस विकार से ग्रस्त लोग किसी वस्तु का चित्र देखकर ये नहीं समझ पाते हैं कि ये क्या है? समस्या समाधान में भी उन्हें परेशानी होती है।

लेखन अक्षमता (Writing disorder) –

⇒ Dysgraphia
⇒ Dyspraxia
⇒ Apraxia
⇒ Agraphia
⇒ Dysorthographia

पठन अक्षमता (Reading disorder) –

⇒ Dyslexia
⇒ Alexia
⇒ Hyperlexia

गणितीय अक्षमता (Mathematical disorder) –

⇒ Dyscalculia
⇒ Acalculia

वर्तनी अक्षमता (Verbal disorder) –

CHAPTER – 5

पढ़ने के लिए वातावरण का सृजन करना (Formulating Environment For Learning Reading) :–

यदि बच्चों के आस–पास एक ऐसा वातावरण बनाया जाये, जो उनकी अधिगम प्रक्रिया को Positively प्रभावित करे, तो बच्चे सीखने के लिए प्रेरित होते हैं व खुद से सीखते हैं। न सिर्फ बच्चे बल्कि हम सब अपने वातावरण से प्रभावित होते हैं। हमारे आस–पास कैसे लोग हैं, क्या संस्कृति है हम उसे कहीं न कहीं धारण करते जाते हैं। वातावरण स्वतः ही हमें अपने रूप में ढाल लेता है।

जैसे लोग हमारे परिवार या आस–पास रहते हैं, तो बहुत सम्भावना है कि हम भी उन्हीं व्यवहारों को अपनाते हैं।

यदि हमारे आस–पास कुछ लोग रहते हैं, जो आए दिन दुर्व्यवहार करते हैं ,अपशब्द बोलते हैं तो उस आचरण का भी हम पर प्रभाव पड़ सकता है।

बच्चों के लिए अच्छे वातावरण का सृजन करना बहुत आवश्यक है। बच्चे अनुकरण (Imitation) द्वारा सीखते हैं। वो जब छोटे होते हैं तो उन्हें सही–गलत की पहचान नहीं होती है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि उनके आस–पास का वातावरण, उनके व्यवहार व सीखने के लिए उत्तम हो। वातावरण के अन्तर्गत परिवार, समाज, विद्यालय आदि सभी तत्व शामिल हैं।

बच्चें किस प्रकार सीखते हैं (Formulating Environment For Learning Reading) :–

बच्चें आमतौर पर दूसरों को देखकर सीखते हैं। इसके अलावा सिखाने पर, सुनकर व करके सीखते हैं। बच्चें वातावरण के साथ जुड़कर सबसे अच्छा सीखते हैं। जन्म से लेकर 6 वर्ष तक की आयु का समय, सीखने व अपने चारों ओर की दुनिया को समझने की स्वाभाविक इच्छा का समय होता है। प्रारम्भिक रूप से बच्चे अपने परिवार के लोगों में

रहकर सीखते हैं। इसके अलावा, कहानी, खेल, गीत के द्वारा बच्चे रुचिपूर्ण ढंग से सीखते हैं।

सीखने की प्रक्रिया केवल पुस्तकों व विद्यालयों तक ही सीमित नहीं होती है। सीखना एक व्यापक शब्द है। वातावरण हमें हर प्रकार की परिस्थिति का सामना कराता है जिससे हम सीखते हैं। बच्चा जब पैदा होता है तभी से वह ये सीख लेता है कि किसी भी आवश्यकता के लिये उसे रोना है जैसे– भूख लगने पर, किसी को आस–पास न पाने पर।

वातावरण का सृजन :–

बच्चा अपने आस–पास के लोगों व घटनाओं से सबसे ज्यादा सीखता है। जैसे– परिवार, समाज, संस्कृति, विद्यालय, प्रकृति आदि।

इन सब तत्वों से किस प्रकार बालक के लिए पढ़ाई का वातावरण तैयार किया जा सकता है?

आइये चर्चा करते हैं।

अधिगम वातावरण को शिक्षार्थी केन्द्रित, ज्ञान केन्द्रित व आकलन केन्द्रित में वर्गीकृत किया जाता है। ये सामान्यतः 4 भागों में बाँटा जा सकता है :–

⇒ औपचारिक वातावरण (Formal)

⇒ अनौपचारिक वातावरण (Informal)

⇒ वर्चुअल (आभासी) वातावरण (Virtual)

⇒ औपचारिकेतर वातावरण (Non Formal)

(1) औपचारिक वातावरण :–

इस प्रकार के अधिगम में एक निश्चित पाठ्य–विवरण व इससे जुड़ी परीक्षा प्रणाली होती है। यह एक ऐसा अधिगम वातावरण है जो सबसे अधिक जाना जाता है। जैसे– विद्यालय।

विद्यालय (School) :–

इसमें व्यवस्थित प्रबंधन, कुशल व दक्ष शिक्षक व नामांकन शिक्षार्थी शामिल होते हैं। इसमें बच्चों को कक्षा में उपस्थित होना, लिखना, दिये गये कार्य को पूरा करना व परीक्षाएँ देना होता है। विद्यालय में बच्चा पढ़ाई तक ही सीमित नहीं रहता है बल्कि सामाजिक मूल्यों को भी सीखता है। विद्यालय में भय हो या स्वच्छता, बच्चे उससे खुद ही सीखते हैं। इसलिए आवश्यक है कि बच्चे को विद्यालय में अच्छा वातावरण उपलब्ध कराया जाये। विद्यालय में सब कुछ व्यवस्थित व पूर्ण–निर्धारित होना चाहिए। समय–समय पर बच्चों का आंकलन भी किया जाना चाहिए। विद्यालय में विभिन्न समाज व संस्कृति के बच्चे आते हैं जो एक–दूसरे से सामाजिक मूल्यों को सीखते हैं।

(2) अनौपचारिक वातावरण :–

हम किसी को देखकर सीखते हैं, अपनी मातृभाषा सीखते हैं, ये सब हमारे सीखने का अनौपचारिक माध्यम है। इसमें सीखने के लिए किसी संगठित व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती है।

ये अधिगम कहीं पर भी हो सकता है अर्थात् जहाँ पर भी अवसर मिले वहीं पर सीखना। स्व निर्देशित अधिगम, अनुभावात्मक अधिगम, कोचिंग आदि अनौपचारिक अधिगम के उदाहरण हैं। ये वातावरण आपको परिवार में समाज–समुदाय में विद्यालय में, कहीं पर कभी भी मिल सकता है। ये हमारे दैनिक जीवन में शामिल होता है।

(i) परिवार (Family) :–

बच्चा सबसे पहले अपने घर से ही सीखना शुरु करता है। वह धीरे–धीरे अपने परिवार के सदस्यों को जानने लगता है और फिर उनको देखकर कार्य करने का प्रयास करता है। बच्चे एकल परिवार की अपेक्षा संयुक्त परिवार में ज्यादा सीखते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वहाँ बच्चा ज्यादा लोगों के संपर्क में आता है। अतः आवश्यक है कि घर का वातावरण अच्छा हो, जो बच्चों को अच्छी बातें व आचरण सिखाएं। बच्चे को बहुत सी आदतें उसके परिवार से ही मिलती हैं, जैसे–

वो कैसा व्यवहार करते हैं, कैसे संवाद करते हैं आदि। बच्चे का प्रारम्भिक अधिगम परिवार से ही शुरु होता है। बच्चा घर पर सभी तरह के मूल्यों को सीखता है चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक। इसलिए आवश्यक है कि परिवार से वह सकारात्मक मूल्यों को सीखे। जिसके लिए सभी सदस्यों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वो जैसा व्यवहार करेंगे, उनके बच्चे भी वैसा ही सीखेंगे।

(ii) समाज व समुदाय (Society and Community) :–

परिवार की तरह ही समाज का भी बच्चे के अधिगम व अनुभवों पर प्रभाव पड़ता है। बच्चा समाज से, अच्छी–बुरी आदतें, साहस, संकोच, गुस्सा आदि को ग्रहण करता है। बच्चे को समुदाय विशेष में रहकर उनकी भाषा, रहन–सहन, खान–पान का ज्ञान स्वतः ही हो जाता है। आपके समाज की संस्कृति व मूल्यों को आप ग्रहण करते हैं। यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप एक ऐसे समाज में रहें जो आपको जीवन की सकारात्मक दिशा में आगे बढ़ायें। समाज या समुदाय एक नहीं बल्कि सभी लोगों से मिलकर बनता है, इसलिए ये सभी का कर्त्तव्य है कि वो सब मिलकर एक अच्छे वातावरण का सृजन करें जिससे उनके बच्चें अच्छे मूल्यों को सीखें।

(iii) अनौपचारिक रूप से आप अपने परिवार व समाज के साथ–साथ विद्यालय में भी बहुत कुछ सीखते हैं। विद्यालय में एक–दूसरे के प्रति प्रेम सद्भावना व आदर करना आप सीखते हैं।

(iv) आपका अधिगम, आपकी मित्र–मंडली से भी प्रभावित होता है। यदि आपके मित्र पढ़ाई में ध्यान देते हैं, खेल भी खेलते हैं, बड़ों का सम्मान करते हैं तो आप में भी ये गुण विकसित हो जाते हैं। गुण के साथ–साथ यदि उनमें कुछ अवगुण हैं, तो भी आप उनसे प्रभावित होते हैं।

(3) आभासी वातावरण (Virtual Learning Environment-VLE) :–

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

कोविड–19 के दौरान पूरे देश व दुनिया में कई महीनों तक लॉकडाउन रहा। उस दौरान औपचारिक शैक्षिक वातावरण काफी समय तक बंद था। तब ऑनलाइन कक्षाओं का सहारा लिया गया।

इंटरनेट के द्वारा ऑनलाइन कक्षायें चलायी गईं। प्रत्येक विद्यालय व संस्थान कम्प्यूटर व इंटरनेट के माध्यम से पढ़ाई जारी रख रहे थे। इस प्रकार के अधिगम वातावरण को वर्चुअल अधिगम वातावरण कहा जाता है। यह एक ऐसा अधिगम वातावरण है जो वेब के माध्यम से बच्चों को अधिगम सामग्री साझा व संप्रेषित (Communicate) करती है। इस वातावरण के अन्तर्गत सबसे अधिक उपयोग किये जाने वाले उपकरणों में गूगल क्लासरूम, गूगल मीट, जूम आदि हैं। वर्चुअल अधिगम किस प्रकार बच्चों की पढ़ाई में सहयोगी हो सकता है और उसे कैसे प्रयोग करना है, आइये जानते हैं –

⇒ अधिगम को छोटे–छोटे भागों में बाँटकर तैयार करना।

⇒ वीडियो लेक्चर में बच्चों की रुचि व योग्यता को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए।

⇒ बच्चों को अपने विचार रखने का अवसर दें।

⇒ समय–समय पर आंकलन करना, ट्रैक करना भी आवश्यक है।

⇒ इसके लिए इंटरनेट कनेक्टिविटी आवश्यक है।

(4) औपचारिकेतर वातावरण :–

कई बार कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जो सीखना तो चाहते हैं पर वे औपचारिक अधिगम वातावरण तक नहीं पहुँच पाते। ऐसे में बालक औपचारिकेतर अधिगम वातावरण के माध्यम से सीख सकते हैं। ऐसा अधिगम जिसमें फर्नीचर, चार–दीवारी, प्रबंधन, शिक्षक आदि की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन फिर भी किसी प्रकार के संगठनात्मक ढाँचे में निहित होता है। इसका वातावरण विद्यालय के वातावरण से अलग होता है। जैसे– दूरस्थ शिक्षा (Distance Education), व्यक्तिगत अनुदेशन (Personal Instruction), कम्प्यूटर आधारित अनुदेशन (Personal Instruction), कम्प्यूटर आधारित अनुदेशन, खेल क्लब आदि। ये

अधिगम सामान्यतः वयस्क शिक्षा से जुड़ा है। इन दिनों कौशल विकास की संकल्पना को बढ़ावा देने के लिए इस प्रकार के अधिगम पर बल दिया जा रहा है। इसमें शिक्षार्थी पूर्णकालिक (Full Time) या अंशकालिक (Part Time) अधिगम कर सकता है।

(5) शिक्षण विधियाँ :–

शिक्षक को बच्चों की रुचि क्षमता व योग्यता के अनुरूप ही शिक्षण विधियों को चुनना चाहिए। यदि शिक्षण विधि बच्चों के अनुरूप होगी तो बच्चें बेहतर तरीके से सीखेंगे। जैसे कुछ विधियाँ इस प्रकार हैं :–

(1) निगमनात्मक विधि (Deductive Method) :–

इस विधि में पहले साामान्य नियम/सिद्धान्त सिखाया जाता है, उसके बाद उदाहरण के माध्यम से बताया जाता है।

प्रतिपादक – 'अरस्तू'

(2) आगमनात्मक विधि (Inductive Method) :–

यहाँ निगमनात्मक का उल्टा होता है अर्थात् पहले उदाहरण बताकर, फिर नियम सिखाया जाता है।

(3) संश्लेषणात्मक विधि (Synthetic Method) :–

जब विषय का ज्ञान छोटे भाग से शुरु करके बड़े भागों तक दिया जाये तो उसे संश्लेषणात्मक विधि कहते हैं।

जैसे– शरीर की संरचना पढ़ाने के लिए पहले प्रत्येक अंग के बारे में एक–एक करके बताया जाये।

(4) विश्लेषणात्मक विधि (Analysis Method) :–

जब पूर्ण भाग से छोटे–छोटे भागों की ओर अधिगम कराया जाये तो उसे विश्लेषणात्मक विधि कहा जाता है।

जैसे– हिंदी में पहले वाक्य सिखाये, फिर शब्द और बाद में वर्ण।

प्रतिपादक– 'हेनरी एडवर्ड आर्मस्ट्रांग'

(5) प्रोजेक्ट विधि (Project Method) :–

यह विधि 'किल पैट्रिक' के द्वारा दी गई थी। इसमें छात्र स्वतंत्र रूप से कार्य करता है तथा स्वयं समस्या–समाधान करने का प्रयास करता है। इसमें छात्र समूह में रहकर सीखते हैं।

(6) अनुकरण विधि (Imitation Method) :–

इस विधि में छात्र अनुकरण अर्थात् दूसरों को देखकर सीखते हैं। इसमें छात्र, शिक्षक को देखकर सीखता है। शिक्षक कैसे बोलते हैं, कैसे आचरण करते हैं, ये सब छात्र उनसे सीखते हैं।

(7) व्याख्यान विधि (Lecture Method) :–

ये विधि शिक्षक केन्द्रीय मानी जाती है। इसमें शिक्षक किसी Topic पर बोलकर बताता है व छात्र उन्हें सुनते हैं। ये शिक्षण की सबसे प्राचीन विधि है।

(8) अनुसंधान विधि (Research Method) :–

इस विधि में छात्र स्वयं विषय के ऊपर खोजबीन करते हैं तथा तथ्यों को एकत्रित करते हैं। इस विधि द्वारा बच्चों में गणितीय व वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी विकसित होता है। यह विधि बच्चों को खोजने के लिए प्रेरित करती है।

प्रतिपादक– 'आर्मस्ट्रांग'

(9) समस्या समाधान विधि (Problem-Solving Method) :–

इस विधि में छात्रों के समक्ष एक समस्या होती है, जिसका समाधान उन्हें स्वयं के प्रयासों द्वारा निकालना होता है। यह विधि छात्रों में समस्या समाधान की योग्यता विकसित करती है। यह विधि मानसिक चिंतन पर बल देती है।

(6) शिक्षण अधिगम सिद्धांत (Teaching Learning Principles) :–

शिक्षण की प्रक्रिया में कुछ आधारों को लेकर शिक्षण किया जाता है, उन्हीं आधारों को शिक्षण के सिद्धान्त कहा जाता है।

शिक्षण के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की चर्चा करते हैं–

⇒ प्रेरणा का सिद्धांत (Principle of Motivation) :–

जब किसी कार्य को करने के लिए आपको प्रोत्साहित किया जाये तो उसे प्रेरणा कहा जाता है।

जब आप किसी परीक्षा में अच्छे अंक लाते हैं तो आपके माता–पिता व शिक्षक आपको शाबाशी देते हैं, जिससे आपको और अच्छा करने की प्रेरणा मिलती है। शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में प्रेरणा बहुत ही आवश्यक है।

प्रेरणा के तरीके

शाब्दिक (Verbal)	अशाब्दिक (Non-Verbal)
अच्छा, तारीफ करना	दण्ड, पुरस्कार

प्रेरणा वह प्रक्रिया है जो अधिगम को प्रारम्भ करती है, जारी रखती है व पूरा होने तक चलती है।

⇒ क्रियाशीलता का सिद्धान्त (Principle of Productivity) :–

यह सिद्धांत करके सीखने पर बल देता है। इसमें अधिगम के दौरान आपको सक्रिय रहना आवश्यक है। केवल अधिगम ही नहीं बल्कि किसी भी कार्य को करने के लिए

क्रियाशील होना बहुत जरूरी है। जितनी अधिक क्रियाशीलता उतनी ही अधिक सीखने की प्रक्रिया सरल व रुचिकर होगी।

माण्टेसरी, किण्डरगार्टन, डाल्टन पद्धतियाँ क्रियाशीलता पर बल देती हैं। महात्मा गाँधी की बेसिक योजना व NCF 2005 भी करके सीखने पर बल देती हैं। इस विधि में व्यवहार परिवर्तन के साथ–साथ, अधिगमकर्ता का आत्मविश्वास भी बढ़ता है।

⇒ **रुचि का सिद्धांत (Principle of Interest) :–**

जब हमें किसी विषय में रुचि होती है तो उसे हम सरलता व तत्परता से सीखते हैं। शिक्षण कार्य को बच्चों की रुचि व योग्यता के अनुसार ही करना चाहिए। यदि शिक्षक पाठ्य वस्तु को चित्रों व कहानियों की सहायता से पढ़ाते हैं तो वह बच्चों के लिए रुचिकर होता है।

⇒ **नियोजन का सिद्धांत (Principle of Planning) :–**

जब तक कोई भी कार्य बिना किसी तैयारी/नियोजन के ना हो तो वह ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। यही नियोजन का सिद्धांत है। शिक्षक को सदैव एक योजना के तहत ही शिक्षण करना चाहिए। वर्तमान में पाठ योजना विधि पर भी बल दिया जाता है। योजना द्वारा कार्य करने से समय की बचत होती है तथा कार्य का उद्देश्य भी पूरा होता है।

⇒ **चयन का सिद्धान्त (Principle of Selection) :–**

शिक्षण की प्रक्रिया में इस सिद्धान्त का काफी महत्व है। शिक्षक को यह चयन करना होता है कि कौन सा पाठ पहले पढ़ाया जाये, कौन सी विधि से पढ़ाया जाये, कैसे मूल्यांकन किया जाये।

'रायबर्न' के अनुसार– ''शिक्षक के अच्छे चयन की योग्यता पर उसके कार्य की सफलता निर्भर करती है।''

⇒ **वैयक्तिक भिन्नता का सिद्धांत (Principle of Individual differences) :–**

शिक्षण अधिगम में वैयक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखना बहुत ही आवश्यक है। कुछ बच्चें जल्दी समझ लेते हैं– कुछ देर में। सभी बच्चों की क्षमता व योग्यता भी भिन्न

होती है। शिक्षक को इन भिन्नताओं का विशेष ध्यान रखना होता है। यदि शिक्षण इस आधार पर नहीं होगा तो कुछ छात्रों को समझ आयेगा, कुछ को नहीं।

⇒ **आवृत्ति का सिद्धान्त (Principle of Repetition) :–**

आवृत्ति का अर्थ है– किसी कार्य को बार–बार करना। जब हम किसी कार्य को बार–बार करते हैं तो वह कार्य आसान हो जाता है। शिक्षण में जिस पाठ को हम बार–बार पढ़ते या पढ़ाते हैं तो उसका हमें अच्छे से अभ्यास हो जाता है। बार–बार दोहराने से किसी तथ्य को भूलने की संभावना भी कम हो जाती है।

जैसे– आप गणित के सवालों को जब बार–बार Practice करते हैं तो, उनका Concept आपको बहुत अच्छी तरह से समझ आ जाता है।

⇒ **विभाजन का सिद्धान्त (Principle of Division) :–**

शिक्षण की प्रक्रिया को यदि छोटे–छोटे भागों में बाँटकर किया जाये तो ये अधिक प्रभावी होता है। पाठ्यवस्तु को विभाजित करके सरल से कठिन की ओर चलना चाहिए। इस सिद्धान्त की महत्ता इसलिए भी है क्योंकि इस विधि में शिक्षक को छात्रों की गति व स्तर का ज्ञान होता है और उसके अनुसार अपनी शिक्षण प्रक्रिया में सुधार कर सकता है।

(7) पूर्व ज्ञान (Previous Knowledge) :–

शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में पूर्व ज्ञान को वर्तमान अधिगम से जोड़ना बहुत लाभप्रद होता है। पहले से सीखी हुई क्रियाओं या तथ्यों को नये ज्ञान से जोड़कर सीखा जा सकता है। जो आपने पहले सीखा है, उसका आपके जीवन में कहीं न कहीं Use अवश्य होता है जिससे आप उस वर्तमान स्थिति को भली–भाँति समझ पाते हो। पिछली कक्षाओं में पढ़े पाठ को अगली कक्षा में आधार बनाकर उस पाठ की आगे की अवधारणा को समझ सकते हैं।

(8) तत्परता (Readiness) :–

आप किसी कार्य को करने के लिए कितने तत्पर हैं ये आपके सीखने की प्रक्रिया को बहुत प्रभावित करता है। अगर आप जिज्ञासा के साथ किसी Topic को पढ़ते हैं तो

आप आनन्दपूर्वक व सरलतापूर्वक उसे सीख पाते हैं। आपकी रुचि उस कार्य में होने लगती है और आप पूरी मेहनत से उस कार्य को पूरा करने का प्रयास करते हैं। अगर आप एक जिज्ञासु हैं अर्थात् अपको हर चीज के बारे में जानना अच्छा लगता है तो आप निश्चित ही अपने कार्य को तत्परता से करेंगे। शिक्षक को पाठ के प्रति बच्चों में रुचि व जिज्ञासा उत्पन्न कराने का प्रयास करना चाहिए।

(9) अन्तः क्रिया (Interaction) :–

समाज में सभी व्यक्ति एक–दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और एक ही क्रिया का उत्तर अर्थात् प्रतिक्रिया दूसरा व्यक्ति देता है, यही अन्तः क्रिया है। जब दो लोगों या समूहों के बीच में प्रक्रिया होती है तो इसे अन्तः क्रिया कहा जाता है।

जैसे– किसी को हँसता देख, हम भी कुछ प्रतिक्रिया करते हैं (हँसते हैं)।

यहाँ पर एक व्यक्ति का व्यवहार दूसरे को प्रभावित करता है।

(10) गतिविधि द्वारा (Activities) :–

बच्चों को अधिगम में क्रियाशील रखने के लिए उन्हें गतिविधियाँ कराना बहुत आवश्यक है। गतिविधि द्वारा बच्चें करके सीखते हैं और उनका पूरा ध्यान उस विशेष Topic पर रहता है। शिक्षक को चाहिए कि समय–समय पर वो गतिविधियों के द्वारा बच्चों को सिखाये और उन्हें उसमें भाग लेने के लिए प्रेरित करे।

(11) शिक्षक का व्यवहार (Teacher's Behaviour) :–

शिक्षक का व्यवहार सीधे–सीधे बच्चों को प्रभावित करता है। बच्चे अपने शिक्षकों को अपना आदर्श मानते हैं और उनका अनुकरण करते हैं। जैसा व्यवहार शिक्षक करेंगे, बच्चें भी वैसा ही सीखेंगे। शिक्षक का बोलना, व्यवहार करना, बच्चों के प्रति प्रेम व सद्भाव, ये सब बच्चों को प्रभावित करते हैं। एक शिक्षक कितने बच्चों पर अपनी छाप छोड़ सकता है, ये तो आप जानते ही हैं, इसलिए ये आवश्यक है कि शिक्षक का व्यवहार उत्तम हो।

(12) मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) :–

उत्तम अधिगम के लिए उत्तम मानसिक स्वास्थ्य का होना भी बहुत आवश्यक है। घर, विद्यालय, समाज, वातावरण, शारीरिक स्वास्थ्य, इन सबके साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य भी ठीक होना आवश्यक है। यदि बच्चा मानसिक रूप से अस्वथ्स्थ लग रहा है तो शिक्षक को माता–पिता की सहायता से कारण का पता लगाकर उचित मार्गदर्शन करना चाहिए। बच्चा यदि किसी चीज को लेकर असहज महसूस कर रहा है तो शिक्षक को बच्चे से सहजता से बात करनी चाहिए व उसका समाधान निकालने का प्रयास करना चाहिए।

मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक–

(1) पारिवारिक कारक– गरीबी, माता–पिता का व्यवहार आदि।

(2) विद्यालयी कारक– अनुचित पाठ्यक्रम, शिक्षक का व्यवहार, शिक्षण विधि

(3) शारीरिक अस्वस्थता– तनाव, वंशानुगत कारक, बीमारी आदि।

(13) पुनर्बलन (Reinforcement) :–

बच्चों को उनकी छोटी–बड़ी उपलब्धि पर पुरस्कृत करना, उनकी प्रशंसा करना या किसी अन्य रूप से उन्हें प्रोत्साहित करना ही पुनर्बलन है।

'स्किनर' के अनुसार– ''पुनर्बलन वह स्थिति है जो छात्रों की प्रतिक्रिया (Response) को बढ़ावा देती है।''

यह शिक्षक पर निर्भर करता है कि किस समय, किस प्रकार और कैसे बच्चों को पुनर्बलित करना है। शिक्षक के हाव–भाव से भी बच्चे पुनर्बलित होते हैं जैसे– मुस्कुराना, सिर हिलाना आदि। जब बच्चों को पुनर्बलित किया जाता है तो उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है और वो ज्यादा लगन से पढ़ाई करते हैं।

CHAPTER – 6

दिव्यांग छात्रों हेतु विशेष व्यवस्था व समावेशी शिक्षा

(Understanding Children With Special Needs And Concept Of Inclusive Education)

विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चें (Children With Special Need) :–

कुछ बच्चें सामान्य होते हैं और कुछ विशिष्ट। अक्सर सामान्य बच्चें उन्हें कहा जाता है जिनका शारीरिक व मानसिक स्तर औसतन 90–110 बुद्धि–लब्धि (I.Q.) वाला होता है। विशिष्ट बच्चें वो होते हैं जो इन बच्चों से अलग होते हैं अर्थात् योग्यता, क्षमता, व्यक्तित्व, व्यवहार में जो सामान्य से अलग होते हैं। ये जो अलग व्यवहार विशिष्ट बच्चों में पाया जाता है ये उनकी योग्यता के उच्च या निम्न होने के कारण हो सकता है।

जिन कार्यों को सामान्य बच्चें सहजता से कर लेते हैं, विशिष्ट बच्चें उसमें अपने आप को असहज पाते हैं।

प्रश्न ये उठता है कि ये बच्चे विशिष्ट क्यों बनते हैं? जैसा कि सभी जानते हैं कि सभी बच्चें एक–दूसरे से भिन्न होते हैं तथा उनकी क्षमता, रुचि, योग्यता भी अलग–अलग होती है। कुछ बच्चे जल्दी सीखते हैं, कुछ औसत गति से व कुछ बहुत ही मन्द गति से सीख जाते हैं। शारीरिक व मानसिक दोष के कारण ये विशिष्टता बच्चों में पाई जाती है। कई बार मानसिक मन्दता (Mental retardation) भी इसका कारण होता है। ये विशिष्टता वातावरण द्वारा, वंशानुगत या दोनों के संयोजन के कारण भी हो सकती है। विशिष्ट बच्चों में इन सभी दोषों को उचित शिक्षण व प्रशिक्षण के द्वारा सुधार लाया जा सकता है। किस विशिष्ट बच्चें में कितना सुधार किया जा सकता है, ये उसकी अक्षमता के स्तर पर भी निर्भर करता है।

परिभाषायें (Definitions) :–

''हीबर्ड'– ''विशिष्ट बच्चें वो बच्चे होते हैं जिन्हें सीखने में कठिनाई होती है या फिर जिनमें मानसिक या शैक्षिक निष्पादन (Performance) अत्यन्त उच्चकोटि का होता है या जिनकों सांवेगिक, सामाजिक व व्यवहारिक समस्यायें घेर लेती हैं या वे शारीरिक अपंगताओं से पीड़ित रहते हैं, जिस वजह से उनके लिए अलग से विशिष्ट शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ती है।''

'क्रो & क्रो'– ''विशिष्ट शब्द, किसी गुण से युक्त उस व्यक्ति पर लागू होता है जिसके कारण वह व्यक्ति, अन्य व्यक्तियों का ध्यान अपनी ओर विशिष्ट रूप से आकर्षित करता है और इससे उसके व्यवहार की अनुक्रियायें (Responses) भी प्रभावित होती हैं।''

'बेकर'– ''वो बच्चें जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व सांवेगिक दृष्टि से, सामान्य बच्चों से या सामान्य गुणों से इस सीमा तक अलग होते हैं कि उन्हें अपने विकास के लिए विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है, विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चें कहलाते हैं।''

'क्रिक'– ''विशिष्ट बच्चें वे होते हैं जो शारीरिक, मानसिक व सामाजिक गुणों में सामान्य बच्चों से अलग होते हैं। इस भिन्नता को देखते हुये उन्हें स्कूल के सामान्य कार्यों में विशिष्ट शिक्षा सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। इन बच्चों को अनुदेशन इस प्रकार देना पड़ता है जिससे वो अपनी अधिकतम क्षमता का विकास कर पायें।''

'टेलफर्ड व सॉरे'– ''वे बच्चें जो शारीरिक, मानसिक व सामाजिक विशेषताओं में सामान्य बच्चों से इतने भिन्न होते हैं कि उन्हें अपनी क्षमता के विकास के लिये विशेष शैक्षिक व सामाजिक सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है।''

इस प्रकार हम ये निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ''विशिष्ट बच्चें वे बच्चें होते हैं जो शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक, सांवेगिक, सामाजिक व व्यवहारिक विशेषताओं के कारण सामान्य बच्चों से उस सीमा तक अलग होते हैं जहाँ उन्हें अपनी योग्यताओं, क्षमताओं आदि को समुचित रूप से विकसित करने के लिए शिक्षण विधियों में संशोधन या विशिष्ट विधियों की आवश्यकता होती है।

इस श्रेणी में वो बच्चें आते हैं जो–

⇒ शारीरिक रूप से अक्षम

⇒ प्रतिभाशाली

⇒ मन्दबुद्धि

⇒ सृजनात्मक

⇒ बाल–अपराधी

⇒ असमायोजित

⇒ समस्याग्रस्त

⇒ सांवेगिक रूप से अस्थिर होते हैं।

विशिष्ट बच्चों की पहचान या लक्षण (Identification of special children):–

सभी मनुष्यों की तरह बच्चों में भी वैयक्तिक भिन्नतायें पायी जाती हैं। जैसे कुछ बच्चें मन्दबुद्धि होते हैं तो कुछ प्रखर बुद्धि के, कुछ सामान्य बच्चों की तरह कार्य नहीं कर पाते, कुछ की सीखने की गति बहुत धीमी होती है और कुछ कार्यों को सीखना ही नहीं चाहते। ये सब लक्षण जिनमें होंगे वो विशिष्ट बच्चों की श्रेणी में आते हैं। अब यदि इन विशिष्ट बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ ही शिक्षा दी जायेगी तो ये बच्चें उस गति से नहीं सीख पायेंगे। इसलिए आवश्यकता होती है इन बच्चों की पहचान कर, इनकी क्षमता के अनुसार इन्हें शिक्षा दी जाये। इनकी पहचान करने के कुछ तरीके हैं–

(1) निरीक्षण द्वारा (Inspection) :–

शिक्षक अपनी कक्षा में विभिन्न लक्षणों जैसे– मन्दबुद्धिता– सामान्य से कम गति से समझना, सीखने की इच्छा न रखना, कार्य न करना आदि को बच्चों में Notice करके। इसके अतिरिक्त कोई छात्र यदि दिव्यांग है तो उसकी पहचान करके।

(2) मानसिक परीक्षण (Mental Test) :–

कुछ ऐसे मानसिक परीक्षण होते हैं जिनके द्वारा विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान की जा सकती है। जैसे– हरमन रोशा का स्याही धब्बा परीक्षण, थिमैटिक अपरसेप्शन टेस्ट (TAT) आदि।

(3) चिकित्सकीय परीक्षण (Clinical Test) :–

जब सामान्य रूप से विशिष्ट बच्चे की पहचान न हो पाये, परन्तु कहीं न कहीं ये संशय हो कि बच्चे में कुछ–न–कुछ परेशानी है तब शरीर व मस्तिष्क का चिकित्सकीय परीक्षण किया जा सकता है।

(4) व्यवहार अवलोकन द्वारा (Behaviour Observation) :–

विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के व्यवहारों के मनोवैज्ञानिक परीक्षण व विश्लेषण द्वारा उनके विशिष्ट होने का पता लगाया जा सकता है। जैसे– यदि कक्षा में कोई बच्चा हमेशा अकेला बैठा रहता है, किसी से वह बात नहीं करता और न ही कक्षा–कक्ष की क्रियाओं में भाग लेता है, तब शिक्षक को इसका कारण पता लगाना बहुत आवश्यक है।

(5) शैक्षिक परिणाम द्वारा (Educational Result) :–

बच्चे के परीक्षा में प्राप्त अंकों का अवलोकन व विश्लेषण करके इनके विशिष्ट होने का पता लगाया जा सकता है।

जैसे– शिक्षक यह Observe करता है कि एक बच्चा लगातार पिछले बहुत सारी परीक्षाओं से, सभी विषयों में निम्नतम अंक लेकर आ रहा है। अब शिक्षक को इसके पीछे के कारण को जानने की आवश्यकता है।

(6) साक्षात्कार द्वारा (Interview) :–

विशिष्ट बच्चों की पहचान के लिए प्रत्यक्ष विधि से साक्षात्कार करके, उनकी पहचान की जा सकती है।

विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों के प्रकार (Types of Special Need Children) :–

(1) शैक्षिक रूप से भिन्न :–

⇒ शैक्षिक रूप से समृद्ध

⇒ शैक्षिक रूप से पिछड़ा

⇒ सीखने की निर्योग्यता

⇒ सम्प्रेषण बाधित

(2) शारीरिक रूप से भिन्न :–

⇒ सांवेदिक रूप से भिन्न

⇒ गति रुप से बाधित

⇒ बहुल बाधित

(3) मानसिक रूप से भिन्न :–

⇒ प्रतिभाशाली बच्चे

⇒ सृजनात्मक बच्चे

⇒ मन्दबुद्धि बच्चे

(4) सामाजिक रूप से भिन्न :–

⇒ वंचित बच्चे

⇒ असमायोजित बच्चे

⇒ बाल अपराधी बच्चे

⇒ सांवेगिक रूप से परेशान बच्चें

⇒ समस्यात्मक बच्चें

⇒ माता–पिता द्वारा तिरस्कृत बच्चें

दिव्यांगता के प्रकार (Types of Disability) :–

दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम 2016 के अनुसार कुल 21 प्रकार बतायें गये हैं–

(1) अंधापन
(2) कमजोर दृष्टि
(3) कुष्ठ रोग पीड़ित
(4) श्रवण बाधिता
(5) बौनापन
(6) गतिविषयक दिव्यांगता
(7) बौद्धिक दिव्यांगता
(8) मानसिक रोग
(9) स्वपरायणता वर्णक्रम विकार
(10) माँसपेशीय दुर्विकास
(11) प्रमस्तिष्क घात
(12) गंभीर स्नायु दोष
(13) विशेष अधिगम अशक्ततायें
(14) थैलीसीमिया
(15) मल्टीपल स्केलेरोसिस
(16) वाक व भाषा अशक्तता
(17) सिकल सेल रोग
(18) हीमोफीलिया
(19) बहु–दिव्यांगतायें–अंधापन व श्रवण बाधित के साथ
(20) पार्किंसन रोग
(21) तेजाब से घायल व्यक्ति

पहले उपयोग में लाये जाने वाले शब्द	वर्तमान शब्दावली
विकलांग व्यक्ति	दिव्यांगजन
दृष्टिहीन व्यक्ति	दृष्टि बाधित व्यक्ति
मानसिक मंदता	बौद्धिक दिव्यांगता
बधिर	श्रवण बाधित
अपंग	शारीरिक बाधिता

अब एक–एक करके इन सभी विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की बात करते हैं–

(1) प्रतिभाशाली/असाधारण प्रतिभा वाले बच्चे (Gifted Children) :–

सामान्य रूप में उन बच्चों को प्रतिभाशाली कहा जाता है जो शिक्षा के क्षेत्र में लगातार असाधारण प्रदर्शन करते हैं। उनमें एक प्रकार की श्रेष्ठ बौद्धिक प्रतिभा (Intellectual talent) होती है। ऐसे बौद्धिक क्षमता वाले बच्चें, कुल बच्चों के उच्च स्तर के 2 या 3 प्रतिशत ही होते हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि ऐसे छात्र, किसी विद्यालय में 15 से 20 प्रतिशत की संख्या में सबसे ऊँची श्रेणी वाले होते हैं।

न केवल शिक्षा के क्षेत्र में बल्कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में जैसे कलाओं या खेलों में आप विविध प्रतिभाओं का प्रदर्शन करते हैं, प्रतिभाशाली बच्चों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है क्योंकि उनकी आवश्यकतायें सामान्य बच्चों से अलग होती है। प्रतिभावान बच्चों के मामले में सबकी धाराणायें (Assumptions) अलग–अलग होती है।

कुछ लोग बौद्धिक स्तर के उच्च होने को प्रतिभा मानते हैं अर्थात् जिनका बुद्धिलब्धि (I.Q.) उच्च होती है (120–140 या 140 से ऊपर)

इसके अतिरिक्त खेलों में, कलाओं में, सृजनशीलता (Creativity) में असाधारण प्रदर्शन के लिए भी प्रतिभा शब्द का उपयोग किया जाता है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रतिभावान बच्चें वो होते हैं, जिनमें किसी क्षेत्र में प्राकृतिक (Naturally) रूप से ऐसी योग्यतायें होती हैं जो उनकी आयु के अन्य बच्चों में

ऊपर के 3% बच्चों में होती हैं। उन बच्चों की ये विशिष्टता उनके आरम्भिक जीवन में ही दिखने लगती है। ऐसे बच्चों को विशिष्ट प्रशिक्षण व मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।

परिभाषायें (Definitions) :–

'टरमन व ओडन'– ''प्रतिभाशाली बच्चें शारीरिक गठन, सामाजिक समायोजन (Social Adjustment), खेल की सूचनाओं, व्यक्तित्व के लक्षणों व रुचियों आदि में सामान्य बच्चों से अधिक श्रेष्ठ होते हैं।''

'कॉलसनिक'– ''वो बच्चे जो किसी भी योग्यता में अपनी आयु के बच्चों से अधिक हों व समाज के लिए कुछ नया करते हों।''

'पसरीचा'– ''वह बच्चा जो बुद्धि की दृष्टि से श्रेष्ठ होता है और उन क्षेत्रों में विशेष योग्यतायें रखता है जहाँ अधिक बुद्धि से सम्बन्धित होना आवश्यक नहीं है।''

'टरमन'– ''जिनका बुद्धि लब्धि स्तर 140 से ऊपर होता है वो बच्चे प्रतिभाशाली होते हैं।''

'हैविंगहर्स्ट'– ''जो बच्चे निरन्तर किसी भी कार्यक्षेत्र में अपनी कार्यकुशलता का परिचय देते हैं, प्रतिभाशाली कहलाते हैं।''

प्रतिभाशाली बालकों की विशेषताएँ (Characteristics of Gifted Children):–

सभी प्रतिभाशाली बच्चें एक जैसी विशेषतायें रखते हों, ऐसा आवश्यक नहीं है। इन बच्चों में निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं–

⇒ ये बच्चें सामान्य तौर पर औसत आयु से पहले व जल्दी पढ़ना–लिखना सीखने लगते हैं।

⇒ उनमें अमूर्त (Abstract) व प्रतिकात्मक (Symbolic) चिन्तन की विशेष योग्यता होती है।

⇒ उनकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी होती है।

⇒ ये बच्चें हर नई चीज को सीखने के लिए उत्सुक रहते हैं।

⇒ इन बच्चों के पास शब्दों का भण्डार होता है।

⇒ इन बच्चों में समस्या समाधान की अच्छी योग्यता होती है।

⇒ इन बच्चों को समय सारणी में लचीलापन (Flexibility) पसन्द होता है।

⇒ किसी एक क्षेत्र में विशेष रुचि होती है।

⇒ उनके सोचने की प्रक्रिया, लिखने की प्रक्रिया से अधिक तेज होती है। इस कारण कई बच्चों की लिखावट सही नहीं होती।

⇒ शारीरिक विशेषतायें (Physical Characteristics) :–

- इन बच्चों में शारीरिक दोष, सामान्य बच्चों की अपेक्षा कम होते हैं।
- इन बच्चों के दाँत, सामान्य बच्चों की अपेक्षा 2 महीने पहले निकल आते हैं तथा ये जल्दी ही बोलना व चलना–फिरना शुरु कर देते हैं।
- इनमें किशोरावस्था के लक्षण भी शीघ्र दिखने लगते हैं।

⇒ बौद्धिक विशेषतायें (Intellectual Characteristics) :–

- ये बच्चें अमूर्त तथ्यों को समझने की विशेष योग्यता रखते हैं।
- इन बच्चों में समस्या–समाधान की विशेष योग्यता होती है।

⇒ शैक्षिक उपलब्धि (Educational Achievement) :–

- ये बच्चें तार्किक रूप से तथ्यों व विचारों को अर्थ पूर्ण ढंग से जोड़ पाते हैं।
- इन बच्चों में अधिकांशतः अभिसारी चिन्तन (Divergent Thinking) की दक्षता होती है।
- ये बच्चे विज्ञान, गणित, साहित्य, इतिहास, भूगोल आदि विषयों में अच्छा प्रदर्शन करते हैं।

- ये बच्चे पुरस्कार आदि जीतने में सबसे आगे रहते हैं जैसे– वाद–विवाद प्रतियोगिता आदि।
- ये बच्चे पढ़ाई में ही अधिक रुचि लेते हैं।

⇒ **संवेगात्मक विशेषतायें (Emotional Characteristics) :–**

- ये बच्चें सांवेगिक रूप से स्थिर (Stable) होते हैं।
- ये बच्चें नई परिस्थितियों में शीघ्र ही घुल–मिल जाते हैं।
- ये बच्चें खुद की योग्यताओं पर गर्व करते हैं व प्रसन्न रहते हैं।

⇒ **व्यक्तिगत विशेषतायें (Personal Charactristics) :–**

- ये बच्चें सामान्य तौर पर खुश रहते हैं।
- ये बच्चें दूसरों का सहयोग भी करते हैं।
- ऐसे बच्चों को अन्य बच्चें भी पसन्द करते हैं व इनसे सीखते हैं।

⇒ **सामाजिक विशेषतायें (Social Characteristics) :–**

- ये बच्चें स्कूल के अलावा सामाजिक कार्यों में भी भाग लेते हैं।
- ये बच्चें अपने आयु के बच्चों के साथ ही खेलना–कूदना पसन्द करते हैं।
- ये बच्चें अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों को भी समझते हैं क्योंकि ये परिपक्व (Mature) होते हैं।
- ये बच्चें अधिक विश्वसनीय व ईमानदार होते हैं।
- इन बच्चों में नेतृत्व करने की योग्यता होती है।
- कुछ प्रतिभाशाली बच्चें समाज से कम मेल–जोल रखते हैं।

⇒ **सृजनशीलता (Creativity) :–**

सृजनशीलता का अर्थ है किसी कार्य को नये तरीके से करना। ये बच्चें नये विचारों को खोजते हैं। सृजनशील बच्चे का व्यवहार लचीला होता है अर्थात् आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन लाने की क्षमता होती है। ये बच्चें सदैव अलग ढंग से सोचते हैं।

⇒ लिंग विशेषतायें (Sex Characteristics) :–

सीधे तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि लड़के या लड़कियों में कौन ज्यादा प्रतिभाशाली होता है। कुछ अध्ययनों में लड़के व कुछ में लड़कियाँ अधिक प्रतिभाशाली पायी गई हैं।

⇒ सहगामी क्रियायें (Co-curricular Activities) :–

- मनोवैज्ञानिक 'लेमन व विट्टी' के अनुसार प्रतिभाशाली लड़के पढ़ाई में व लड़कियों खेल–कूद में अधिक रुचि लेते हैं।
- ये बच्चें मानसिक क्रियाओं वाले खेलों में अधिक रुचि लेते हैं।
- इन बच्चों के माता–पिता सामान्य लोगों से अधिक शिक्षित होते हैं।
- शहरी क्षेत्रों में अधिक बच्चें ऐसे पाये जाते हैं। (अध्ययन के अनुसार)
- कला, संगीत, शारीरिक, यांत्रिक, सामाजिक आदि के क्षेत्र में विशेष प्रतिभा देखी जा सकती है।

⇒ प्रतिभाशाली बच्चों की पहचान (Identification of Gifted Children):–

प्रत्येक बच्चा एक–दूसरे से भिन्न होता है। सभी की अपनी योग्यतायें व क्षमतायें होती हैं। एक विद्यालय में और एक कक्षा में बहुत सारे छात्र होते हैं। शिक्षक के लिए सभी की वैयक्तिक भिन्नताओं का पता लगाना और ध्यान रखना कोई आसान काम नहीं है। फिर भी कुछ ऐसी विधियाँ हैं जिनके माध्यम से प्रतिभाशाली बच्चों को पहचाना जा सके। किसी एक निश्चित विधि द्वारा बता पाना कि कौन प्रतिभाशाली है और कौन सामान्य, थोड़ा मुश्किल है।

भारत में 2010 में प्रतिभावान बच्चों की पहचान के लिए एक अभियान शुरु किया गया था। तब पहली राष्ट्रीय योजना इन बच्चों के लिए शुरु की गई– 'Development of Parameters and tools for the Identification of 3-15 Years'। इसके आधार पर प्रतिभावान बच्चों के लिए तीन मानक (मॉडल) तैयार किये गये–

(1) The NIAS मॉडल :–

National Programme on Identification and Mentoring of Gifted Children (0-18) years, known as NIAS-EGT (Education for the Gifted and Talented Programme.

यह एक तीन स्तरीय मॉडल है, जिसे प्रतिभावान बच्चों की पहचान करने व उनकी समुचित शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्य से तैयार किया गया है।

⇒ पहले स्तर पर शिक्षकों व अभिभावकों द्वारा, टीचर नॉमिनेशन बिहेवियरल रेटिंग स्केल पैरेंट व नॉमिनेशन बिहेवियरल रेटिंग स्केल की मदद से बच्चों का नामांकन किया। ये नामांकन फॉर्म शोध टीम (Research Team) द्वारा तैयार किये गये।

⇒ दूसरे स्तर पर सामान्य मानसिक योग्यता तथा सृजनात्मक चिंतन के आधार पर साइकोमेट्रिक स्क्रीनिंग परीक्षणों की व्यवस्था की गई व चुने गये बच्चों के लिए केस प्रोफाइल तैयार किये गए।

⇒ तीसरे स्तर पर प्रतिभावान बच्चों के रूप में पहचाने गये बच्चों को समुचित शिक्षा प्रदान कराने के लिए अभिभावक कार्यशालाएँ शुरु की गई तथा शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण (Training) कार्यशालाएँ शुरु की गई। बच्चों के लिए ग्रीष्मकालीन व शीतकालीन कार्यशालाएँ शुरु की गईं व साथ ही प्रतिभावान बच्चों के बारे में जनसामान्य में जागृति (Awareness) पैदा करने के लिए समाचार पत्रों व मीडिया के अन्य संसाधनों द्वारा लेख तैयार किये गये।

(2) दिल्ली विश्वविद्यालय मॉडल :–

राजधानी के नगरीय क्षेत्रों में तीन चरणों वाला मॉडल तैयार किया गया–

⇒ पहले चरण को नामित चरण कहा जाता है, इसके अंतर्गत विद्यालयों के शिक्षकों द्वारा छात्रों का नामांकन किया जाता है।

⇒ इस चरण को चयन चरण कहते हैं। नामांकित (Nominated) छात्रों के विज्ञान व गणितीय योग्यता परीक्षण किये गये, जिससे चुने हुए छात्रों में प्रतिभावान बच्चों को चुना जा सके।

⇒ तीसरे चरण में चुने हुये, उच्च प्रतिभावान बच्चों का समुचित शिक्षण व अन्य विशेष कार्यक्रमों द्वारा मार्ग दर्शन किया जाता है।

(3) अगस्तया इंटरनेशनल फॉउंडेशन मॉडल :–

यह मॉडल आन्ध्रप्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों पर आधारित था जहाँ शिक्षकों, अभिभावकों व समुदाय द्वारा नामांकित छात्रों की पहचान प्रतिभावान छात्रों के रूप में की गई थी। इनका स्क्रीनिंग परीक्षण विज्ञान मेलों तथा ओलम्पियाड में उनकी भूमिकाओं के आधार पर किया जा चुका था। चुने हुये छात्र समूहों को अगस्तया परिवार में भ्रमण हेतु भेजा गया। जहाँ छात्रों ने विज्ञान व गणित के विभिन्न प्रकरणों (Cases) का अध्ययन किया। वहाँ उन्हें कौशलों के प्रशिक्षण दिये गये व सामूहिक तथा व्यक्तिगत योजनाओं पर काम करने का अवसर दिया गया। छात्रों ने अपनी योग्यताओं का जिस तरह प्रदर्शन किया उसके आधार पर उनकी आगे की शिक्षा सुनिश्चित की गई।

Note:-

स्क्रीनिंग एक मूल्यांकन प्रक्रिया होती है तो अध्यापकों को ऐसे छात्रों की पहचान करने में सहायता करती है जो निशिचित सीखने के लक्ष्यों को पूरा करने की कगार पर होते हैं। इससे ये पता चलता है कि बच्चे ने क्या सीखा और क्या नहीं।

अब चर्चा करते हैं सामान्य विधियों की–

⇒ बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test) :–

प्रतिभावान बच्चों का पता लगाने के लिए शिक्षक इन परीक्षणों का उपयोग करते हैं। ये परीक्षण शाब्दिक और अशाब्दिक हो सकते हैं तथा व्यक्तिगत व सामूहिक भी हो सकते हैं। जैसे– यदि पेन–पेपर से टेस्ट लिया जाये तो वह शाब्दिक तथा जिसमें किसी activity के द्वारा test लिया जाये वो अशाब्दिक।

⇒ निष्पत्ति परीक्षण (Achievement Test) :–

यह परीक्षण बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर किया जाता है। बच्चे ने किस विषय में कैसा प्रदर्शन किया है, ये सब देखा जाता है।

⇒ प्रवणता परीक्षण (Aptitude Test) :–

इस परीक्षण में सामान्य तौर पर बच्चों को कुछ प्रश्न दिये जाते हैं तथा उनके कुछ विकल्प सही उत्तर के रूप में दिये जाते हैं। बच्चे को सही विकल्प चुनना होता है। इस परीक्षण के द्वारा बच्चों की जन्मजात विशेषताओं व योग्यताओं का पता लगाया जाता है, जो उनकी भविष्य की उन्नति के बारे में अनुमान लगाता है।

⇒ बच्चों से सम्बन्धित लोग जैसे– माता–पिता, शिक्षक, पडोसी, मित्र आदि से जानकारी लेकर भी बच्चे की योग्यता का पता लगाया जाता है।

⇒ विद्यालय में विशेष प्रतियोगिताओं का आयोजन करके भी प्रतिभाशाली बच्चों की पहचान की जा सकती है।

प्रतिभाशाली बच्चों की शिक्षा (Education of Gifted Children) :–

चूंकि इन बच्चों में कुछ विशिष्ट गुण होते हैं इसलिए शिक्षक को अध्यापन के दौरान कुछ बातों का विशेष ध्यान देना होता है।

(1) पृथकता की भावना को दूर करना (Overcome Feelings of Isolation):–

प्रतिभाशाली बच्चे शारीरिक, बौद्धिक व अन्य दृष्टि से भिन्न होते हैं, इसलिए कभी–कभी ये दूसरों से घुल–मिल नहीं पाते। ऐसे में इन्हें कई बार अलग–थलग होने के विचार आते हैं व समायोजन में समस्या आती है। शिक्षक को इन बच्चों में समायोजन की भावना विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।

(2) अभिसारी बनाम अपसारी चिन्तन (Convergent Vs divergent thinking) :–

सामान्यतः विद्यालय में किसी कार्य का मूल्यांकन एक मानक (Standard) के आधार पर किया जाता है।

ये प्रक्रिया अभिसारी चिन्तन को बढ़ावा देती है अर्थात् एक प्रश्न का एक उत्तर तय किया जाना।

अब इस स्थिति में प्रतिभाशाली बच्चों को समस्या का सामना करना पड़ता है क्योंकि वो अपसारी चिन्तन करते हैं अर्थात् एक प्रश्न की विभिन्न सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर उत्तर करते हैं। इसलिए परीक्षा प्रणाली में लचीलापन आवश्यक है जिससे सभी बच्चें अपने विचार रख सकें।

(3) आत्मालोचन (Self-criticism):–

अधिकांश प्रतिभाशाली छात्रों का लक्ष्य बहुत ऊँचा होता है। इन लक्ष्यों को सरलता से प्राप्त न कर पाने के कारण वे स्वयं की आलोचना करने लगते हैं। इन बच्चों के माता–पिता व शिक्षक भी इनसे और अधिक अपेक्षायें रखते हैं। जब इन अपेक्षाओं का भार बच्चों पर बढ़ने लगता है तो उन्हें तनाव होने लगता है। शिक्षक का चाहिए कि बच्चों को स्वतंत्र रूप से विकसित होने दें तथा उन पर ज्यादा Pressure न आने दें।

(4) नैतिक व सामाजिक मुद्दे (Moral And Social Issues):–

पढ़ाई के साथ– साथ इन बच्चों को नैतिक व सामाजिक मुद्दों के प्रति जागरुक रखना भी आवश्यक है। शिक्षक को एक योजना के तहत सभी वर्तमान मुद्दों पर बच्चों की राय जाननी चाहिए तथा उन्हें आवश्यक सूचना भी देनी चाहिए।

(5) कभी–कभी जब ये बच्चें अपने नये व असाधारण विचारों को सबके सामने रखते हैं तो उन्हें आलोचना का सामना करना पड़ता है और उनका आत्मविश्वास कम होने लगता है। ऐसे में आवश्यक है कि बच्चों को अपने विचार रखने का अवसर मिले और उन्हें प्रोत्साहित किया जाये।

(6) प्रतिभाशाली बच्चों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम को समृद्ध बनाना चाहिये। इसके लिए कुछ Concepts को add कर सकते हैं जैसे–

नागरिकता का अध्ययन, विशिष्ट योग्यताओं का प्रशिक्षण आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि पाठ्यक्रम संकीर्ण न होकर थोड़ा Open ended हो जिससे छात्रों को ज्यादा सीखने के अवसर मिलें।

(7) सभी बच्चों को चाहे वो सामान्य हों या प्रतिभाशाली सीखने के समान अवसर मिलने चाहिए।

(8) इन बच्चों की सृजनात्मक क्षमता को प्रोत्साहित करना चाहिए।

(9) शिक्षा सदैव बाल केन्द्रित होनी चाहिए अर्थात् बच्चे की आवश्यकता व क्षमता के अनुरूप होनी चाहिए।

(10) इन बच्चों की किसी एक विशेष क्षेत्र में रुचि होती है परन्तु शिक्षक का कर्त्तव्य है कि उनके सर्वांगीण विकास पर बल दें।

इन सबके अतिरिक्त कुछ अन्य सुविधायें भी इन्हें दी जा सकती हैं–

⇒ व्यक्तिगत ध्यान

⇒ विशेष कक्षा व्यवस्था

⇒ सहगामी क्रियायें (Co-Curricular Activities)

⇒ समृद्ध पाठ्यक्रम

⇒ पुस्तकालय की सुविधा

⇒ तीव्र प्रोन्नति (Promotion)

⇒ रुचि के कार्य

⇒ विशेष विद्यालय आदि।

प्रतिभावान बच्चों के लिए भारत सरकार द्वारा चलाई जाने वाली योजनाएँ :–

(1) इंस्पायर अवार्ड मानक (INSPIRE) :–

Innovation in Science Pursuit for Inspired Research एक कार्यक्रम है, जिसे भारत सरकार के विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा प्रतिवर्ष संचालित किया जाता है। छठी कक्षा से दसवीं कक्षा के छात्रों को वैज्ञानिक सिद्धांतों तथा सामाजिक संदर्भों पर आधारित नवीन कार्यों में भाग लेने के लिए Motivate किया जाता है।

(2) राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा :–

यह परीक्षा दसवीं के छात्रों के लिए NCERT करवाता है। इसमें चुने गये छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाती है।

(3) प्रधानमंत्री इनोवेटिव लर्निंग प्रोग्राम–ध्रुव :–

भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा संचालित इस कार्यक्रम का उद्देश्य प्रतिभावान बच्चों की पहचान करना है। इसके बाद उनके कौशलों (Skills) का विकास किया जाता है।

(4) ओलिम्पियाड परीक्षायें :–

इन परीक्षाओं के अन्तर्गत गणित, कम्प्यूटर, सामान्य ज्ञान व भाषा विशेष में दक्ष बच्चों की पहचान के लिए क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रतियोगितायें करायी जाती है। परीक्षा में प्राप्त ग्रेड के आधार पर छात्रों को छात्रवृत्ति, मेडल व पुरस्कार दिये जाते हैं।

(5) नवोदय विद्यालय :–

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिभाओं के विकास के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अंतर्गत जवाहर नवोदय विद्यालयों की स्थापना की गई थी। इनमें प्रवेश के लिए योग्यता परीक्षा ली जाती है और फिर विद्यालय के लिए बच्चों का चयन किया जाता है। CBSE द्वारा प्रतिवर्ष जिला स्तर पर ये परीक्षायें कराई जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित इन विद्यालयों में त्रिभाषा सूत्र लागू किया जाता है इनमें हिंदी, अंग्रेजी व एक क्षेत्रीय भाषा शामिल है।

(2) पिछड़े बच्चे (Backward Children) :–

पिछड़े बच्चों से अभिप्राय है जो बच्चे शैक्षिक रूप से पीछे रह जाते हैं। इन बच्चों की सीखने की गति या तो सामान्य बच्चों से बहुत धीमी होती है या फिर बिल्कुल न के बराबर होती है। पिछड़े बच्चों की पहचान के लिए बुद्धि–लब्धि स्तर (I.Q.) का प्रयोग नहीं करते हैं बल्कि उनकी शैक्षिक उपलब्धि व निष्पादन (Performance) को देखा जाता है।

परिभाषायें (Definitions) :–

'टी॰के॰ए॰ मेनन'– ''भारतीय स्थिति के अनुसार पिछड़े बच्चें वो हैं जो अपनी कक्षा की औसत आयु से एक से अधिक वर्ष बड़े हों।''

'सिरिलबर्ट'– ''पिछड़े बच्चें वो हैं जिनकी शैक्षिक लब्धि (बुद्धि–लब्धि) 85 से कम हो।''

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

'बार्टन हार्ट'– ''पिछड़े बच्चे वो होते हैं जिनकी शैक्षिक उपलब्धियाँ उस स्तर से कम होती है जिनके वो योग्य हैं।''

'स्कोनिल'– ''पिछड़ा बच्चा वह होता है जो अपनी आयु के अन्य बच्चों की तुलना में शैक्षिक रूप से अत्यधिक दुर्बल या कमजोर हो।''

शैक्षिक रूप से पिछड़े बच्चों की पहचान (Identification of Backward Students) :–

पिछड़ेपन के कई कारण हो सकते हैं जैसे– शारीरिक कारण, निर्धनता, परिवेश, बुरें मित्रों की संगति आदि जिसके कारण बच्चा अपनी शिक्षा को सही ढंग से नहीं कर पाता है और पिछड़ जाता है। इन बच्चों की शैक्षिक लब्धि को देखा जाता है–

$$\text{शैक्षिक लब्धि (E.Q.)} = \frac{\text{शैक्षिक आयु (E.A.)}}{\text{दैहिक आयु (C.A.)}} \times 100$$

पिछड़े बच्चों की पहचान के लिए शिक्षक कुछ मानदण्डों का प्रयोग कर सकते हैं :–

(1) सामूहिक परीक्षण (Group Test) :–

कक्षा में शिक्षक के द्वारा पिछड़े बच्चों की पहचान के लिए ये परीक्षण किया जाता है। यह परीक्षण शाब्दिक या अशाब्दिक हो सकता है। इसके अन्तर्गत बुद्धि परीक्षण, रुचि परीक्षण, अभिरुचि परीक्षण व्यक्तित्व परीक्षण आदि आते हैं।

(2) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (Individual Intelligence Test) :–

मनोवैज्ञानिक द्वारा पिछड़ेपन का कारण बच्चों का मन्दबुद्धि होना पाया जाता है। इन बच्चों का बुद्धि स्तर जानने के लिए एक मानकीकृत (Standard) परीक्षण द्वारा मानसिक आयु ज्ञात की जाती है।

$$\text{बुद्धि लब्धि (E.Q.)} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{} \times 100$$

वास्तविक आयु

$$\text{I.Q.} = \frac{\text{M.A.}}{\text{C.A.}} \times 100$$

(3) मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण (Standard Achievement Test) :–

ये परीक्षण पहले से एक मानक तय करके बनाये जाते हैं। उस आधार पर इन बच्चों की उपलब्धि का पता लगाया जाता है। ये परीक्षण वस्तुनिष्ठ (Objective) प्रकार के भी हो सकते हैं। इन परीक्षणों को तैयार करते समय शिक्षा के सभी पक्षों का समायोजन करना आवश्यक है।

(4) मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Test) :–

कभी–कभी बच्चे के पिछड़ेपन का कारण शैक्षिक या बौद्धिक न होकर मनोवैज्ञानिक होता है। जैसे– प्रेरणा व प्रोत्साहन की कमी, घर व विद्यालय में समायोजन न कर पाना, सांवेगिक समस्यायें, मानसिक द्वन्द आदि। इन सब चीजों का पता लगाने के लिए माता–पिता से बात–चीत, बच्चे का साक्षात्कार आदि किया जा सकता है।

(3) बच्चे के विभिन्न व्यवहारों के द्वारा भी इनके पिछड़ेपन का पता लगाया जा सकता है।

पिछड़े बच्चों के प्रकार (Types of Backward Children) :–

अलग–अलग मानदण्डों के आधार पर पिछड़े बच्चों को वर्गीकृत किया जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिक तंत्रिका तंत्र (Nervous System) को इसका आधार मानते हैं और तीन वर्गों में इन बच्चों को बाँटते हैं–

(1) मूढ़ बुद्धि (Moron) :–

इनमें बुद्धि–लब्धि (I.Q.) 50–70 तक होती है।

(2) हीनबुद्धि (Imbecile) :–

इनमें बुद्धि–लब्धि (I.Q.) 25–50 तक होती है।

(3) जड़बुद्धि (Idiot) :–

इनमें बुद्धि–लब्धि (I.Q.) 25 से कम होती है।

शारीरिक या जैविक आधार पर इन्हें चार भागों में बांटा जाता है–

(1) हल्की मन्दिता (Mild Mental Retardation) :–

I.Q. = 55–69

(2) साधारण मानसिक मन्दिता (Moderate Mental Retardartion) :–

I.Q. = 40–54

(3) गम्भीर मन्दिता (Severe Mental Retardartion) :–

I.Q. = 25–39

(4) गहन मानसिक मन्दिता (Profound Mental Retardartion) :–

I.Q. = Below 25

पिछड़े वर्ग की विशेषतायें (Characteristics of Backword Children) :–

⇒ पिछड़े बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि उनकी योग्यता की तुलना में काफी कम होती है।

⇒ पिछड़े बच्चें अपनी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं कर पाते हैं।

⇒ ये बच्चे अधिगम बहुत धीमी गति से करते हैं। ये बच्चें, सामान्य बच्चों के स्तर तक नहीं पहुँच पाते या कह सकते हैं कि इन्हें बहुत कठिनाई होती है।

⇒ कम बुद्धि–लब्धि वाला बालक पिछड़ा ही हो ऐसा आवश्यक नहीं है। सामान्यतः पिछड़े बालक को पहचानने के लिए शैक्षिक उपलब्धियों को ही देखा जाता है।

⇒ शैक्षिक क्षेत्र में पिछड़ जाने के कारण ये बच्चे एक ही कक्षा में 1 से अधिक वर्ष लगा देते हैं। इसको प्रवाह–विहीनता भी कहते हैं।

पिछड़े बालकों की शिक्षा (Education of Backward Children) :–

पिछड़े बच्चों की कमियों को समुचित शिक्षा व्यवस्था के द्वारा सुधारा या ठीक किया जा सकता है। अध्यापक की इसमें अहम भूमिका होती है। पिछड़े बच्चों की उचित शिक्षा के लिए निम्नलिखित कार्य किये जा सकते हैं :–

⇒ सबसे आवश्यक है कि बालक के पिछड़ेपन का कारण पता लगाया जाये। तत्पश्चात् इन बच्चों की शिक्षण प्रक्रिया सुनिश्चित की जाये।

⇒ पिछड़े बच्चों की समस्याओं को दूर करने व उन पर विशेष ध्यान देने के लिए विशिष्ट कक्षाओं व विद्यालयों की व्यवस्था की जा सकती है।

⇒ पिछड़े बच्चों को पाठ्य सहगामी क्रियाओं द्वारा सिखाने का प्रयास करें जिससे बच्चे रुचिपूर्वक सीख पायें।

⇒ माता–पिता व शिक्षकों को बच्चों के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए तथा उनकी समस्याओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

⇒ ऐस बच्चों को धीमी गति से पढ़ायें।

⇒ अधिक से अधिक दृश्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोग करें।

⇒ सामान्य अधिगम के साथ–साथ उन्हें व्यवसायिक प्रशिक्षण भी दें।

⇒ बच्चों को सदैव प्रेरित करें, इससे उनका आत्मविश्वास बढ़ता है।

⇒ इन बच्चों का उपचारात्मक कक्षाओं द्वारा मार्गदर्शन किया जाये।

⇒ उन्हें अधिक से अधिक विषयों को सरल व रचनात्मक तरीके से पढ़ाने का प्रयास करें।

⇒ यदि बच्चें एक बार में किसी बात को न समझ पायें तो उन्हें बार–बार बताया जाये।

⇒ ऐसे बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देना भी बहुत आवश्यक है।

⇒ दूषित शिक्षा प्रणाली में सुधार किया जाये।

⇒ समय–समय पर शैक्षिक भ्रमण कराया जाये।

⇒ विशेषज्ञों के द्वारा इन बच्चों को निर्देशित किया जाये।

(3) धीमी गति से सीखने वाले बच्चें (Slow Learner Children) :–

इन बच्चों की सीखने की गति बहुत धीमी होती है। ये बच्चें शैक्षिक उपलब्धियों में सामान्य से थोड़े पीछे होते हैं। इन बच्चों का मानसिक स्तर सामान्य से निम्न होता है। इनकी बुद्धि–लब्धि 75–90 के मध्य होता है।

इन बच्चों की शैक्षिक मन्दिता के कई कारण हो सकते हैं जैसे– सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक आदि। वातावरण व वंशानुक्रम भी मानसिक मन्दिता के कारण हो सकते हैं। ये बच्चें चीजों को देर से समझ पाते हैं।

परिभाषायें (Definitions) :–

'सिरिल बर्ट'– ''धीमी गति से सीखने वाले बच्चें पिछड़े बच्चें होते हैं, क्योंकि ये बच्चे अपनी आयु के सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते।''

धीमी गति से सीखने वाले बच्चों की पहचान (Identification of Slow Learners) :–

इन बच्चों की पहचान के लिए कोई विशिष्ट परीक्षण नहीं बनाया गया है। शैक्षिक निष्पादन (Performance) के द्वारा ही इनकी कमजोरियों को पहचाना जाता है। न केवल मानसिक बल्कि शारीरिक रूप से बाधित बच्चे भी मन्दगामी हो सकते हैं। इन बच्चों का सामान्य स्तर निम्न होता है इसलिए ये शैक्षिक व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते। इन बच्चों की मन्दिता का पता शिक्षण के दौरान लगाया जा सकता है। जैसे–

सीखने में असहजता बार–बार कुछ पूछना (एक ही चीज के बारे में), लिखने व पढने में असहजता होना आदि।

मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि यदि इन बच्चों को शिक्षण का एक अच्छा वातावरण तथा सहयोग दिया जाये तो इनमें काफी हद तक सुधार हो सकता है। इन बच्चों की पहचान के दो सामान्य मानदण्ड हैं–

(1) शैक्षिक उपलब्धि

(2) मानसिक स्तर

धीमी गति से सीखने वाले बच्चों की विशेषतायें (Characteristics of Slow Learner) :–

⇒ इन बच्चों की सीखने व समझने की गति मन्द होती है।

⇒ मानसिक मन्दिता में स्मृति योग्यता कम होती है।

⇒ चूँकि ये बच्चे सामान्य गति से समझ नहीं पाते हैं इसलिए ये एकाग्र (Concentrate) नही रह पाते।

⇒ इन बच्चों में सामान्य चिन्तन की क्षमता नहीं होती है। ये अधिकांशतः पाठ्यक्रम को रटते हैं।

⇒ इन बच्चों में कल्पनाशक्ति (Imagination Power) कम होती है इसलिये ये अपने विचारों की अभिव्यक्ति सही से नहीं कर पाते हैं।

⇒ इन बच्चों को शैक्षिक समस्याओं के कारण अलावा कुछ अन्य समस्यायें भी हो सकती हैं जैसे– पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक।

धीमी गति से सीखने वाले बच्चों की शिक्षा (Education of Slow Learners):–

⇒ इन बच्चों को परिवार व शिक्षकों द्वारा सदैव प्रेरित किया जाना चाहिए कि वो कर सकते हैं।

⇒ इन बच्चों को अधिगम में अतिरिक्त सहायता देने की आवश्यकता होती है।

⇒ यदि इन्हें अभिक्रमित अनुदेशन (Programmed Instructions) की पुस्तकें दी जायें तो ये बच्चे अपने आयु के बच्चों के साथ चल सकते हैं।

⇒ इन बच्चों को शिक्षा की मुख्यधारा में रखना आवश्यक है।

⇒ पाठ्यवस्तु को सहायक सामग्री की सहायता से प्रस्तुत किया जाये।

⇒ इन बच्चों के अभ्यास पर अधिक बल दिया जाये।

⇒ पाठ्यक्रम का लचीला होना।

⇒ इन बच्चों का प्रगति आलेख तैयार करना।

(4) मन्दबुद्धि बच्चें (Mental Retarded Children) :–

जिन बच्चों की औसत से कम मानसिक योग्यतायें होती हैं उन्हें मन्द बुद्धि या मानसिक रूप से मन्द बच्चे कहा जाता है। ये बच्चें अपनी क्षमताओं के अनुसार कार्य नहीं कर पाते हैं। सामान्य शब्दों में कहें तो ये बच्चे मानसिक रूप से विकसित नहीं हो पाते हैं अर्थात् अपरिपक्व होते हैं। ये बच्चें संवेगात्मक रूप से अस्थिर (Unstable) होते हैं, इसी वजह से इनमें मानसिक मन्दता आ जाती है। इन बच्चों में कुछ हीनता ग्रन्थियाँ (Inferiority Complex), भावना ग्रन्थि (Mental Complex) व कुछ श्रेष्ठ भावना ग्रन्थि (Superiority Complex) पाई जाती है।

इन बच्चों को मूढ़ बुद्धि (Dull) या अल्प–बुद्धि (Mentally Deficient) भी कहा जाता है। ये बच्चे विद्यालय व समाज में समायोजन नहीं कर पाते हैं। इस मन्दता का कारण मानसिक आघात (Mental Trauma), पारिवारिक कारण, वंश आदि हो सकते हैं।

परिभाषायें (Definitions) :–

AAMR (American Association of Mental Retardation) की ओर से

'ग्रासमैन' द्वारा– ''मानसिक मन्दता का तात्पर्य औसत से कम ऐसी बौद्धिक प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप अनुकूली व्यवहार में संगामी असमान्यता आ जाती है जो विकासात्मक अवधि के दौरान अभिव्यक्त होती है।''

ग्रासमैन की इस परिभाषा के अनुसार मानसिक मंदता के नैदानिक मापदण्ड हैं–

⇒ I.Q. 70 या उससे कम।

⇒ अनुकूलनीय व्यवहार में कमी।

⇒ 18 वर्ष की आयु तक इसका आरंभ।

'जे0डी0पेज'– ''मन्दबुद्धिता, जन्म के समय से या कुछ वर्षों के बाद बच्चों में पाई जाने वाली सामान्य से कम मानसिक विकास की ऐसी अवस्था है जो उसमें बुद्धि सम्बन्धी कमी व अक्षमता के लिए जिम्मेदार होती है।''

'पोलक व पोलक'– ''मन्द बुद्धि बच्चों को अब क्षीण बुद्धि बच्चों के समूह में नहीं रखा जाता है, जिनके लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता है। अब इन बच्चों के बारे में ये कहा जाता है कि इनके व्यक्तित्व के उतने ही विभिन्न पहलू होते हैं, जितने सामान्य बच्चों के व्यक्तित्व के होते हैं।''

'कुप्पूस्वामी'– ''शैक्षिक पिछड़ापन अनेक कारणों से होता है। अधिगम में मन्दता उत्पन्न करने के लिए अनेक कारक एक साथ मिल जाते हैं।''

मन्दबुद्धि बच्चों की विशेषतायें (Characteristics of Mental Retarded Children) :–

मानसिक रूप से अस्वस्थ बच्चों की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं–

⇒ इन बच्चों में संवेगात्मक अस्थिरता होती है।

⇒ इन बच्चों में आत्म–विश्वास की कमी होती है।

⇒ इन बच्चों को कोई भी बात आसानी से समझ नहीं आती है।

⇒ ये बच्चें सामान्यतः कक्षा में पीछे बैठते हैं।

⇒ इन बच्चों में निर्णय लेने की शक्ति नहीं होती।

⇒ मन्दबुद्धि होने के कई कारण हो सकते हैं, जैसे– मानसिक स्वास्थ्य ठीक न होना।
गम्भीर रोग से पीड़ित होना।
माता का अस्वस्थ होना।
मानसिक चिन्ता, तनाव या संघर्ष के कारण।
सन्तुलित आहार व उचित पोषण की कमी के कारण।

⇒ मानसिक मंदता एक अक्षमता है क्योंकि इससे प्रभावित व्यक्ति का मस्तिष्क सामान्य की तुलना में कम काम करने की वजह से उसकी दैनिक कार्यक्षमता सीमित हो जाती है।

⇒ व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता व अनुकूलनीय व्यवहार में कमी उसके अवधारणात्मक सामाजिक व प्रायोगिक कौशलों में दिखायी देती है।

अवधारणात्मक कौशल (Conceptual Skills) :–

- भाषा
- पढ़ना, लिखना
- धन संबंधी संकल्पना आदि।

सामाजिक कौशल (Social Skills) :–

- सरलता
- आत्म सम्मान
- जिम्मेदारी
- नियमों का पालन
- अंतर्वैयक्तिक संबंध आदि।

प्रायोगिक (Practical Skills) :–

- स्वास्थ्य संबंधी क्रियायें
- व्यवसायिक कौशल
- दैनिक क्रियायें, जैसे– नहाना, कपड़े पहनना आदि।
- सुरक्षित वातावरण संबंधी कौशल

⇒ इन बच्चों में स्थूल गामक (Gross Motor) व सूक्ष्म गामक कौशल (Fine Motor) आयु के अनुपयुक्त होता है।

⇒ आँखों व हाथों में समन्वय का अभाव।

⇒ बुद्धि–लब्धि 70 से कम।

⇒ कभी–कभी आक्रामकता व अकेले रहना।

⇒ अमूर्त।

⇒ कठिनाई।

⇒ कमजोर स्मृति व सोचने की सीमित क्षमता।

⇒ सहपाठियों व अध्यापकों से सम्बन्ध स्थापित करने में कठिनाई।

वर्गीकरण (Classification) :–

I.Q.	आवश्यक सहायता के आधार पर	मनोवैज्ञानिक आधार पर	शैक्षणिक वर्गीकरण
50–70	असतत (Intermittent)	सौम्य मानसिक मंदता (Mild)	शिक्षणीय मानसिक मंदता (EMR)
35–49	सीमित सहायता (Limited)	मध्यम मानसिक मंदता (Moderate)	प्रशिक्षणीय मानसिक मंदता (TMR)
20–34	विस्तृत सहायता (Extensive)	गंभीर मानसिक मंदता (Severe)	TMR
20 से कम	अति व्यापक सहायता (Pervasive)	अति गंभीर मानसिक मंदता (Profound)	संरक्षणीय मानसिक मंदता (CMR)

Note -

EMR	**-**	**Educable Mental Retardation**
TMR	**-**	**Trainable Mental Retardation**
CMR	**-**	**Custodial Mintal Retardation**
EAHCA	**-**	**Education of All Handicapped Children Act 1975**
IEDC	**-**	**Integrated Education for disabled Children**
NIMH	**-**	**National Institute for the Mentally Handicapped**
NPE	**-**	**National Policy on Education 1986**
PWD Act	**-**	**Persons With Disabilities Act**
WHO	**-**	**World Health Organization**

मन्दबुद्धि बच्चों की समस्यायें (Problem of Mentally Retarded Children):–

मन्दबुद्धि बच्चों की सबसे बड़ी समस्या है समायोजन (Adjustment) की। आइये बात करते हैं इन समस्याओं की–

(1) पारिवारिक समायोजन (Family Adjustment) :–

इस अक्षमता के कारण बच्चों को अपने भाई–बहन, माता–पिता व अन्य सदस्यों से समायोजन करने में समस्या होती है। आवश्यकता इस बात की है कि परिवार के सदस्यों को बच्चे को समझना चाहिए व उसकी आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए।

(2) विद्यालय में समायोजन (School Adjustment) :–

विद्यालय में शिक्षकों को इन बच्चों की आवश्यकता का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। इनकी शिक्षा के लिए समान समूह विधि (Homogenious Grouping) का

उपयोग करना चाहिए। इस विधि में बच्चों को मानसिक योग्यता के आधार पर समूहों में बाँटना चाहिए। इससे बच्चे ज्यादा सरलता से सीख पाते हैं।

(3) समाज में समायोजन (Social Adjustment) :–

मन्दबुद्धि बच्चों को आस–पड़ोस व समाज से समायोजन करने में भी दिक्कत होती है। ये बच्चें लोगों से बात कम करते हैं जिससे कम लोगों से सम्बन्ध बना पाते हैं। कई बार लोग ही ऐसे बच्चों से दूर भागते हैं जिससे बच्चों में हीन भावना आ सकती है। इन बच्चों के साथ सभी को सामान्य बच्चों की ही तरह व्यवहार करना चाहिए जिससे ये अपने आप को अलग न समझें।

(4) शारीरिक व मानसिक विकास सही न होने के कारण भी बच्चों को समस्या होती है। जैसे– सही से न चल पाना, समझने में परेशानी होना आदि।

रोकथाम व उपचार (Preventive and Remedial Measures) :–

यदि कुछ बिंदुओं पर ध्यान दिया जाये तो बच्चे की इस समस्या को सुधारा जा सकता है –

(1) माता–पिता के द्वारा :–

जब बच्चा माता के गर्भ में होता है तो समय–समय पर बीमारियों की जाँच होना बहुत आवश्यक है जिससे इसे पहले ही रोका जा सके। बाल्यावस्था में यदि किसी मानसिक या शारीरिक क्षति के कारण ये समस्या होती है तो उचित देखभाल के द्वारा इसकी रोकथाम व उपचार किया जाना चाहिए।

(2) जन्म दर पर नियन्त्रण :–

जब माता ज्यादा बच्चों को जन्म देती है तो वे शारीरिक व मानसिक दोनों रूप से कमजोर हो सकती है और इसका प्रभाव उनके बच्चे पर भी पड़ सकता है। जन्म दर नियन्त्रण भी आवश्यक है।

(3) वातावरण (Environment) :–

बच्चे के आस पास का वातावरण यदि स्वस्थ व अच्छा होगा तो बच्चे का मानसिक स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा। वातावरण बच्चे के सर्वांगीण विकास को प्रभावित करता है इसलिये वातावरण का बच्चे के अनुकूल होना बहुत आवश्यक है।

(4) विद्यालय व शिक्षक :–

बच्चों में ऐसी अक्षमता सामने आने पर उन्हें विशेष मार्गदर्शन व परामर्श की आवश्यकता होती है। ऐसे में शिक्षकों को बच्चों की रुचि, योग्यता, आवश्यकता का पता लगाकर उसके अनुरूप शिक्षण करना चाहिए। शिक्षकों व विद्यालयों को मिलकर विशेष व्यवस्था द्वारा बच्चों को अधिगम प्रक्रियाओं से जोड़ना चाहिए। कक्षा में बच्चों को अपनी बात रखने का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए।

(5) धैर्य (Patience) :–

इन बच्चों से Deal करने के लिए माता–पिता व शिक्षक में धैर्य होना बहुत आवश्यक है। ये बच्चे देर से समझते व सीखते हैं इसलिये इन्हें आराम से व धीरे–धीरे सिखाना चाहिए।

समस्याओं का समाधान ढूँढने, नवीन वस्तुओं का निर्माण करने, नई परिस्थितियों में समायोजन करने व व्यवहार करने की योग्यता को सृजनात्मकता कहा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति भिन्न होता है तथा उसमें कुछ न कुछ सृजनात्मकता पाई जाती है। जो लोग अपने इस विशिष्ट गुण को जान पाते हैं तथा इसका सही दिशा में उपयोग करते हैं वे सृजनात्मक कहलाते हैं। समाज के लिए आवश्यक वस्तुओं व संप्रत्ययों का निर्माण बहुत आवश्यक होता है, इसके लिए सृजनात्मकता की आवश्यकता होती है। विद्यालयों में ऐसे बच्चों की योग्यता के अनुसार शिक्षा व्यवस्था करना बहुत आवश्यक है जिससे वे अपनी क्षमताओं को भली–भाँति उपयोग कर सकें। आगे चलकर ये बच्चें ही समाज व राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते

हैं। साधारण शब्दों में इसका तात्पर्य नये विचार देना, कोई नई वस्तु बनाना, नई खोज करना आदि से है।

परिभाषायें (Definitions) :–

'क्रो व क्रो'– ''सृजनात्मकता एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जो मौलिक परिणामों को अभिव्यक्त करती है।''

'गिलफोर्ड'– ''सृजनात्मक बच्चों में सामान्य गुण ही होते हैं, उनमें न केवल मौलिक गुण होते हैं बल्कि उनमें प्रेरणा, लचीलापन (Flexibility) प्रवाहमय (Fluency) व संयमता (Temperament) के गुण भी होते हैं।''

'लूथी'– ''किसी चीज को वास्तव में उत्पन्न करने, बनाने या अभिव्यक्त करने की योग्यता, जो कम से कम एक भाग में स्वयं से उत्पन्न होती है, सृजनात्मकता कहलाती है।''

'मेडनिक'– ''सृजनात्मक चिन्तन में साहचर्य (Associative) के तत्वों का मिश्रण होता है जो विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लाभदायक होते हैं। नये संयोग के विचारों में जितनी अधिक आपसी दूरी होगी, सृजनात्मकता की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी।''

'स्टेन'– ''वह कार्य जिसका परिणाम नवीन हो तथा किसी समय, किसी तरह, किसी समूह द्वारा उपयोगी व सन्तोषजनक रूप से स्वीकार किया जाये, सृजनात्मकता कहलाता है।''

'टॉरेन्स'– ''कठिनाइयों, समस्याओं, ज्ञान में अन्तराल, अव्यवस्था आदि की पहचान करना, अनुमान लगाना, परीक्षण करना और अन्त में परिणामों तक पहुँचने की प्रक्रिया ही सृजनात्मकता है।''

NOTE –

वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार– ''क्रियेटिविटी' शब्द की उत्पत्ति 'केरे' शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ है– अस्तित्व में आना।''

बच्चों में सृजनात्मकता विकसित करने के उपाय (Some Measures for Development of Creativity Among Children) :–

सृजनात्मकता एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है जो लगभग सभी में होती है। बच्चों में इस प्रवृत्ति को जाग्रत करने के लिए शिक्षकों के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। शिक्षकों को बच्चों के इन विशेष गुणों की पहचान करके उन्हें आगे बढ़ने के अवसर प्रदान करने चाहिए। क्या–क्या उपाय किये जा सकते हैं, आइये उनकी चर्चा करते हैं–

⇒ सबसे पहले आवश्यक है बच्चों में सृजनात्मकता की पहचान करना। ये जानना कि वह बच्चा किस विशेष क्षेत्र में विशिष्ट योग्यता रखता है?

⇒ सृजनशील बच्चों में कुछ विशेषतायें होती हैं जैसे–

- जिज्ञासा (Curisity)
- स्वतन्त्र निर्णय लेने की क्षमता
- नई तथ्यों को जानने की उत्सुकता
- संवेदनशील
- एकान्तप्रिय
- सरल स्वभाव
- समस्या–समाधान करने की प्रवृत्ति

⇒ बच्चे के रुचि के क्षेत्रों को जानने का प्रयास करना चाहिए।

⇒ बच्चों को समस्या समाधान के लिए आवश्यक तथ्यों को सिखाना चाहिए।

⇒ बच्चों को समस्या का हल अपने तरीके से निकालने का समय दें तथा उन्हें प्रेरित करें।

⇒ समस्या समाधान की योग्यता दो बातों पर निर्भर करती है–

(1) व्यक्ति में अधिगम करने की क्षमता व बुद्धि

(2) क्या व्यक्ति ने क्षमता का अधिगम पा लिया है?

⇒ सृजनात्मकता को विकसित करने के लिए मानसिक स्वास्थ्य का अच्छा होना बहुत आवश्यक है।

⇒ बच्चों में कल्पनाशक्ति के विकास के लिए उन्हें पर्याप्त अवसर दें।

⇒ बच्चों द्वारा किये गये कार्यों को, उन्हें स्वयं भी मूल्यांकित करने को कहें।

⇒ पाठ्य सहगामी क्रियायें जैसे– वाद–विवाद, निबन्ध व पोस्टर प्रतियोगिता, खेलकूद NCC, NSS आदि के द्वारा बच्चों को सृजनात्मक बनने का अवसर दें।

⇒ सृजनात्मकता का बुद्धि–लब्धि से कोई सम्बन्ध नहीं है (गिलफोर्ड के अनुसार) सृजनात्मकता, वातावरण के प्रभाव से विकसित की जाती है।

⇒ सृजनशील बच्चों पर व्यक्तिगत ध्यान भी दिया जाना चाहिए।

(6) आंशिक रूप से शारीरिक अक्षम बच्चे (Partially Disabled Children):–

आंशिक रूप से शारीरिक अक्षम बच्चों को अपंग, असमर्थी आदि भी कहा जाता है। जब शरीर के किसी अंग में, आंशिक रूप से कोई समस्या होती है तो उन्हें आंशिक रूप से शारीरिक अक्षम बच्चा कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि इन बच्चों में शारीरिक दोष होता है तथा इसके कारण इनके कार्य करने की क्षमता भी प्रभावित होती है। इस अक्षमता के कारण ये बच्चे समायोजन (adjustment) में समस्याओं का सामना भी करते हैं। शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों को विशिष्ट शिक्षा की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जाता है–

(i) अस्थि बाधित (Orthopedically Disabled)

(ii) स्वास्थ्य बाधित (Health Disabled)

'समाज कल्याण मन्त्रालय' के द्वारा कहा गया है कि "शारीरिक रूप से अक्षम बच्चे उन्हें कहते हैं जिनकी शारीरिक या स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के कारण समाज व सामान्य बच्चों से अन्तः क्रिया नहीं हो पाती है। इन बच्चों को विशिष्ट सेवाओं की आवश्यकता होती

है। इन बच्चों में अनेक प्रकार की अक्षमतायें होती हैं जिनका कारण सामान्यतः रोग (Disease) होते हैं।''

रोग जैसे–

चक्षु रोग (Eye Disease)
पोलियो
मस्तिष्क पक्षाघात (Cerebral Palsy)
अजीर्ण रोग (Indigestion Disease)
मेरुदण्ड की वक्रता (Curvature of Spine) आदि।

सामान्य रूप से, आंशिक रूप से शारीरिक अक्षम बच्चों को चार भागों में बाँटते हैं–

(1) दृष्टिबाधित (Visually Impaired)

(2) श्रवण बाधित (Hearing Impaired)

(3) वाक्दोष (Speech Defect)

(4) अस्थि बाधित (Orthopedically Impaired)

दृष्टिबाधित बच्चे (Visually Impaired Children)

जो बच्चे ठीक प्रकार से नहीं देख पाते हैं उन्हें दृष्टिबाधित बालक कहा जाता है। आंशिक रूप से दृष्टिबाधित बच्चें वे होते हैं जो मोटे छापे की पठन–सामग्री या पुस्तकों को पढ़ पाते हैं परन्तु छोटे अक्षरों को नहीं पढ़ पाते हैं।

आंशिक रूप से दृष्टिबाधित बच्चें काम कर पाते हैं परन्तु जो गम्भीर रूप से दृष्टि बाधित होते हैं उन्हें विशेष अधिगम विधियों की आवश्यकता होती है। ये बच्चें सामान्य विधियों या देखने की विधियों द्वारा अध्ययन नहीं कर पाते हैं। जो बच्चें पूर्ण रूप से दृष्टि खो देते हैं वो अन्धेपन के रोग के शिकार हो जाते हैं तथा कुछ भी नहीं देख पाते।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

आंशिक रूप से दृष्टिबाधित बच्चों के नेत्रों में प्रतिबिम्ब (Reflection) की तीव्रता बहुत कम होती है। मध्यम रूप में दृष्टिबाधितों के नेत्रों के देखने की क्षमता 20/70 फीट होती है अर्थात् सामान्य बच्चें यदि 70 फीट से किसी वस्तु को देख सकते हैं तो आंशिक रूप से अक्षम बच्चें उसे 20 फीट पर से ही देख सकते हैं। इस बाधिता का कारण नेत्र से सम्बन्धित मांसपेशियों का ठीक से काम न करना या नेत्र रोग या नेत्र तारे की कमजोरी हो सकती है।

भारत सरकार के समाज कल्याण मन्त्रालय के (1987) अनुसार,

''आंशिक रूप से दृष्टिबाधित बच्चें वह हैं जो चश्मे की सहायता से मुद्रित पाठ्क्रम तथा दृश्य सामग्री का उपयोग कर लेते हैं।''

ये बच्चे उत्तल दर्पण की सहायता से पढ़ सकते हैं। इन बच्चों को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(1) जिनकी दृष्टि एक्युटी (20/70) व (20/200) के बीच होती है।
(2) जो बच्चे गम्भीर या बढ़ने वाली दृष्टिबाधिता से पीड़ित है।
(3) ऐसे बच्चे जो नेत्र सम्बन्धी रोगों से पीड़ित है।
(4) ऐसे बच्चे जो ऊपर के इन 3 तरह के बच्चों में शामिल नहीं है और जिनके पास औसत मस्तिष्क है। जो बच्चें डॉक्टरों व शिक्षा शास्त्रियों के अनुसार कम देखने वाले बच्चों को दिये गये साधनों व सामान द्वारा लाभान्वित हो सकते हैं।

विभिन्न मतों के आधार पर दृष्टिबाधित बच्चों को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(1) पूर्ण रूप से दृष्टिबाधित या अन्धे बच्चें

(2) आंशिक रूप से या निम्न दृष्टिबाधित बच्चें।

(1) पूर्ण रूप से दृष्टिबाधित बच्चे :–

⇒ 'अमेरिका के मेडिकल संघ' ने वर्ष 1934 में एक परिभाषा दी–

कानूनी दृष्टि से पूर्ण रूप से दृष्टिबाधित उन्हें माना जाता है–

(1) जिनकी दृष्टि क्षमता (20/200) व इससे कम हो, उनकी आँखों में सुधार के बाद उत्तम हो।

या

(2) जिनका दृष्टि का क्षेत्र सीमित हो और 20^0 का कोण बनाती है, उनकी आँखे सुधार के बाद उत्तम हो।

⇒ इन बच्चों को मौखिक या ब्रेल लिपि के माध्यम से शिक्षा की आवश्यकता होती है।

(2) आंशिक रूप से दृष्टिबाधित बच्चे :–

ये बच्चें ठीक प्रकार से नहीं देख पाते हैं। मोटे छापे की किताबों से ये पढ़ सकते हैं। यदि दृष्टि समस्या ज्यादा गम्भीर नहीं है तो ये सामान्य वातावरण में शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं परन्तु गम्भीर रूप से दृष्टिबाधित बच्चें दृश्य विधियों द्वारा शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते हैं। इन बच्चों की देखने की क्षमता स्नैलन चार्ट से मापी जाती है। ये बच्चें चश्मे की सहायता से पढ़ सकते हैं। कम दृष्टि में जैसे– दृष्टि का धुंधलापन, आँख पर परत, अत्यधिक नजदीक या दूरदृष्टिपन, आँखों के आगे धब्बे, रंगों की विकृति (Distortion), रात्रि अंधता, प्रकाश के प्रति संवेदनशीलता (Sensitivity) आदि समस्यायें आती हैं।

दूसरे शब्दों में कहें तो जिन बच्चों की दृष्टि क्रियाशीलता (Visual Functioning) में, उपचार के बाद भी दोष होता है किन्तु वे सहायक उपकरणों (Equipment) के साथ कार्यों को करने में सक्षम होते हैं। इन बच्चों को को पढ़ने–लिखने, चलने–फिरने या फिर सामान्य कार्यों को करने में समस्या आती है।

दृष्टिबाधिता के कारण (Reasons for Visually Impairedness) :–

⇒ विटामिन 'A' की कमी के कारण

⇒ गर्भावस्था के दौरान कुछ असमान्यताओं से उत्पन्न सहज मोतियाबिन्द (Cataracts) या वंशानुगत (Hereditary)।

⇒ मोतिबिन्द प्रायः उच्च आयु में होता है। ऐसी स्थिति को शल्य चिकित्सा (Surgery) के द्वारा ठीक किया जा सकता है।

⇒ ग्लूकोमा– आँख में उच्च दबाव (Pressure) के परिणामस्वरूप रेटिना को नुकसान।

⇒ परिवार में किसी को दृष्टिदोष होना।

⇒ गर्भवती माता का स्वास्थ्य खराब होना।

⇒ समय से पहले प्रसव (Delivery)।

⇒ बाल्यावस्था में किसी संक्रामक रोग के कारण।

⇒ नेत्र या मस्तिष्क पर चोट लगना।

⇒ आँख में हुए संक्रमण (Infection) के कारण।

दृष्टिबाधिता के कारणों को निम्न प्रकार भी वर्गीकृत कर सकते हैं–

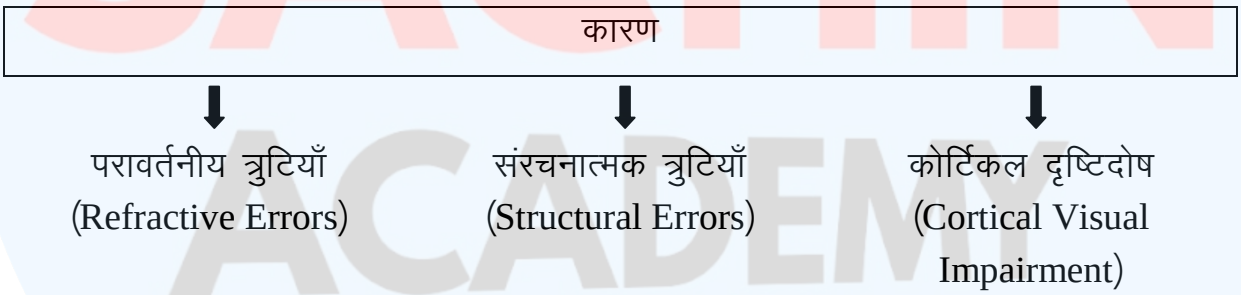

(1) परावर्तनीय त्रुटियाँ (Refractive Errors) :–

इस अवस्था में प्रकाश की समानान्तर किरणें रेटिना पर केन्द्रित नहीं होती, इसलिए रेटिना पर बनने वाली प्रतिबिम्ब (Reflection) धुंधली (Dim) प्रतीत होता है। इसमें दूरदृष्टिदोष, निकटदृष्टि दोष, अबिन्दुकता व जरा दूर दर्शिता की अवस्थायें होती हैं।

(a) दूरदृष्टि दोष (Hyperopia/Hypermetropia) :–

इसमें दूर की वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं, परन्तु पास की वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई नहीं देती हैं।

इसका कारण है, प्रतिबिम्ब का सीधे रेटिना पर न बनकर उसके पीछे बनना। इस त्रुटि को उत्तल लेंस की सहायता से ठीक किया जा सकता है।

(b) निकट दृष्टि दोष (Myopia) :–

इस दोष में पास की वस्तुएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं परन्तु दूर की स्पष्ट दिखाई नहीं देती। प्रतिबिम्ब सीधे रेटिना पर न बनकर उसके आगे बनता है। इस त्रुटि को अवतल लेन्स की सहायता से ठीक किया जा सकता है।

(c) अबिन्दुता (Astigmatism) :–

इस स्थिति में लेंस या कार्निया के अनियमित होने के कारण स्पष्ट प्रतिबिम्ब का निर्माण नहीं हो पाता। इसे बेलनाकार (Cylindrical) लेंस की सहायता से सुधारा जा सकता है।

(d) जरा दूरदर्शिता (Presbyopia) :–

यह स्थिति उम्र के साथ आँखों के स्वरूप व स्वास्थ्य में प्राकृतिक रूप से गिरावट से सम्बन्धित है। उम्र बढ़ने के साथ लेंस का लचीलापन कम हो जाता है जिससे स्पष्ट रूप से देखने में कठिनाई आती है। इसमें व्यक्ति को निकट व दूरदृष्टि दोष एक साथ होता है। इस समस्या को दूर करने के लिए द्विफोकसी (Bifocal) लेंस का प्रयोग करते हैं जिसका ऊपरी भाग अवतल लेंस (Concave) व नीचे का भाग उत्तल (Convex) लेंस की तरह कार्य करता है।

(2) संरचनात्मक त्रुटियाँ (Structural Impairment) :–

इस स्थिति में नेत्र की ऑप्टिकल या माँसपेशीय संरचना के एक या एक से अधिक हिस्सों में क्षति आती है। इसके अन्तर्गत निम्न स्थितियाँ आती हैं–

(a) मोतियाबिन्द (Cataract) :–

नेत्र के लेंस में अपारदर्शिता आने की स्थिति मोतियाबिन्द कहलाती है। यह एक नेत्र या दोनों नेत्रों में हो सकती है। इसमें लेंस की अपारदर्शिता प्रकाश को लेंस से गुजरने से रोकती है जिससे वस्तु स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ती। ये जन्मजात (By birth) भी हो सकती है। इसे ऑपरेशन द्वारा सुधारा जाना ही एक मात्र रास्ता है।

(b) कालामोतिया (Glaucoma) :–

यह नेत्रों में आंतरिक दबाव बढ़ने के कारण होता है। नेत्रों में आंतरिक दबाव के कारण Optic Nerve (वह तंत्रिका जो नेत्र को मस्तिष्क से जोड़ती है) को क्षति पहुँचती है। इसमें बिना दर्द के धीरे–धीरे परिधीय दृष्टि (Peripheral Vision) के नष्ट होने के साथ लगातार बढ़ता जाता है।

(c) वर्ण हीनता (Albinism) :–

यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें शरीर के सभी या कुछ भागों में मेलानिन (शरीर व बालों को रंग देने वाला पदार्थ) नहीं होता।

इसमें कार्निया में प्रकाश असहनीयता हो जाती है। व्यक्ति की दृष्टि कम हो जाती है।

(d) डायबेटिक रेटिनापैथी (Diabetic Retinopathy) :–

यदि कोई व्यक्ति लम्बे समय तक मधुमेह से पीड़ित रह जाता है, तब उसका दुष्प्रभाव उसकी रेटिना पर पड़ सकता है जिससे उसकी आँखों की स्पष्ट (Clear) देख पाने की क्षमता प्रभावित होती है।

(e) एनीरिडिया (Aniridia) :–

इस स्थिति में आइरिस (आँख की पुतली) पूर्ण रूप से विकसित नहीं होती है।

(f) रोहे (Trachoma) :–

इस स्थिति में नेत्र बैक्टीरिया द्वारा गंभीर रूप से संक्रमित हो जाते हैं। यह विश्व में दृष्टिहीनता का प्रमुख कारण है।

(g) रेटिनोब्लास्टोमा (Retinoblastoma) :–

यह रेटिना में ट्यूमर के विकसित होने की स्थिति है।

(h) रेटिनाइटिस पिग्मेन्टोसा (Retinitis Pigmentosa) :–

यह एक आनुवंशिक (Genetic) बीमारी है जो कि प्रारंभिक बाल्यावस्था या प्रारंभिक वयस्कता (Adulthood) में प्रकट होना शुरु होती है तथा धीरे–धीरे बढ़ती जाती है। यह रेटिना की कोशिकाओं का धीरे–धीरे ह्रास (Depreciation) होने से होता है।

(i) रेटिनल डिटैचमेंट (Retinal Detachment) :–

इस स्थिति में रेटिना जिस परत के ऊपर लगा होता है वहाँ से उतर जाता है।

(j) जीरोथ्थेलमिया (Xerophthalmia) :–

यह विटामिन A की कमी से बाल्यावस्था (Childhood) में होने वाली दृष्टिहीनता का सबसे सामान्य कारण है। इसमें Conjunctiva व कॉर्निया में शुष्कता (Dryness) आने लगती है।

(3) कोर्टिकल दृष्टिदोष (Cortical Visual Impairment) :–

इस दोष में आँखें पूर्णतः सामान्य होती हैं परन्तु Optic Nerve, जो आँखों से सूचनाओं को मस्तिष्क तक पहुँचाती है वह क्षतिग्रस्त (Damage) हो जाती है।

दृष्टिबाधित बच्चों के लक्षण/विशेषतायें (Characteristics of Visually Impaired Children) :–

जिस प्रकार सामान्य बच्चों में वैयक्तिक भिन्नतायें (Individual Differences) पायी जाती है उसी प्रकार दृष्टिबाधित बच्चों में भी पायी जाती हैं। वैसे तो ये बच्चें/व्यक्ति सामान्य बच्चों या व्यक्तियों की तरह होते हैं परन्तु इनकी दृष्टि क्षमता (Capacity) सामान्य से भिन्न होती है। इस प्रकार दृष्टिबाधित होने के कारण इन्हें बहुत सी समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है जैसे– देख न पाने के कारण या कम देख पाने के कारण बहुत से अनुभवों से वंचित (Deprived) रह जाना, अधिकांश कार्यों में दूसरों की मदद लेना आदि।

दृष्टिबाधित बच्चों के लक्षण या विशेषतायें बहुत से कारकों से प्रभावित होती है जैसे– किस उम्र से दृष्टिबाधिता है, प्रकार क्या है, कितनी दृष्टि है, उनके पास क्या–क्या सहायक उपकरण (Accessories) उपलब्ध है, परिवार व समाज का उनके साथ व्यवहार आदि।

इन बच्चों में जो कुछ सामान्य विशेषतायें पायी जाती हैं, वो इस प्रकार हैं–

(1) भाषा विकास (Language Development) :–

हमारे लिए वो अनुभव यादगार (Memorable) होते हैं जिन्हें हम देखकर सीखते हैं। वैसे तो दृष्टिबाधित बच्चों में कोई भाषा का दोष या कमी नहीं होती है क्योंकि ये बच्चे ठीक प्रकार बोल व सुन पाते हैं लेकिन सामान्य बच्चों की अपेक्षा न देख पाने के कारण थोड़ा प्रभाव तो पड़ता है।

ये बच्चे सुनने, स्पर्श (Touch) करने और बोलने पर निर्भर रहते हैं। कई बार ये बच्चें ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनका वे सटीक (Accurate) अर्थ नहीं जानते हैं। इन बच्चों का भाषा सीखने का ढंग, सामान्य बच्चों से अलग होता है। न देख पाने के कारण इन बच्चों को रंगों की भी जानकारी नहीं हो पाती है। भाषा के साथ–साथ संवेगों (Emotions) के उतार–चढ़ाव तथा चेहरे के भाव (Facial Expressions) का भी अभाव होता है।

(2) संज्ञानात्मक व सम्प्रत्यय विकास (Cognitive and Concept Development) :–

संज्ञानात्मक व सम्प्रत्यय विकास में दृष्टिबाधित बच्चें सामान्य बच्चों से कहीं न कहीं पीछे रह सकते हैं परन्तु पर्याप्त अनुभव व प्रशिक्षण (Training) के द्वारा उनका काफी हद तक विकास किया जा सकता है। सभी दृष्टिबाधित बच्चों में ये विकास देर से नहीं होता है, ये उनकी दृष्टि क्षय (loss) की मात्रा पर निर्भर करता है। ये बच्चें बौद्धिक परीक्षणों (Intellectual Tests) में लगभग दृष्टिवान बच्चों की तरह ही प्राप्तांकों (Scores) को प्रदर्शित करते हैं।

दृष्टिहीनता के कारण ये बच्चें पहाड़, जानवर, नदियाँ, दूरी आदि का बोध (Understand) नहीं कर पाते हैं। इन बच्चों में सम्प्रत्ययों (Concepts) का विकास स्पर्श व श्रवण द्वारा ही होता है।

दो प्रकार के स्पर्श अनुभव होते हैं–

(a) विश्लेषण स्पर्श (Analysis Touch) :–

इसके अन्तर्गत बच्चें वस्तु का स्पर्श करके अपने मस्तिष्क में उसका प्रत्यक्षीकरण (Manifestation) या उसे चिन्हित (Mark) करते हैं।

(b) संश्लेषण स्पर्श (Synthesis Touch) :–

इसके अन्तर्गत बच्चें छोटी–बड़ी वस्तुओं को स्पर्श करके उनके एक–एक भाग को अनुभव करते हैं।

(3) सामाजिक विकास (Social Development) :–

दृष्टिबाधित होने के कारण ये बच्चें पूर्ण रूप से सामाजिक अनुभव नहीं कर पाते हैं और न ही पूर्ण रूप से समाज के लोगों से अन्तःक्रिया (Interaction) कर पाते हैं। बच्चें बहुत से सामाजिक व्यवहार व कौशलों (Skills) को सामाजिक अन्तः क्रिया व दूसरों को देखकर सीखते हैं, जिसमें दृष्टिहीन बच्चों को कठिनाई होती है। इस कारण इन बच्चों में अकेलापन व सामाजिक अपरिपक्वता (Immaturity) देखने को मिलती है। इन बच्चों का सामाजिक विकास इनके उम्र के अन्य बच्चों से धीमे होता है। ऐसे बच्चों से की गई

अपेक्षायें (Expectation) उचित व प्राप्त योग्य होनी चाहिए। इन बच्चों की सामाजिक कार्यक्रमों में दृष्टिवान बच्चों जैसी ही सहभागिता (Participation) सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

(4) शैक्षणिक उपलब्धि (Educational Achievements) :–

इन बच्चों की बौद्धिक क्षमता तो सामान्य बच्चों जैसी ही होती है परन्तु इनकी शैक्षिक उपलब्धि कम होती है। शैक्षिक उपलब्धि विशेषकर पढ़ना, लिखना व भाषा में इन्हें कठिनाई होती है। ये बच्चे पाठ्यभाग (Text), लेखाचित्र (Graphics), सांकेतिक सूचनाओं (Gestural Cues) को प्राप्त करने, प्रयोग करने व प्रदर्शित करने में समस्या महसूस करते हैं।

विभिन्न माध्यम जैसे– ब्रेल, प्रिन्ट की आकार इनकी दृष्टिक्षमता के अनुसार, श्रव्य सामग्री का प्रयोग व सहायक तकनीकियों को उपलब्ध कराके इनकी उपलब्धि में बहुत सुधार किया जा सकता है।

(5) गामक व चलन (Movement) :–

कई बार ये बच्चे चलने–फिरने में सामान्य बच्चों से पीछे रह जाते हैं। इसका कारण दृष्टि उद्दीपनों (Stimulation) में कमी, दृश्य अनुकरणों के माध्यम से न सीख पाना व वातावरणीय कारक (Environmental Factors) जैसे– समाज का नकारात्मक दृष्टिकोण, माता–पिता द्वारा अतिसुरक्षा प्राप्त होना है। इन बच्चों में स्थान विभेद की क्षमता (Location Discrimination), दिशाबोध (Direction Sense) तथा सूक्ष्म गामक कौशलों (Fine Motor Skills) का विकास देर से होता है।

(6) दृष्टिक्रियात्मकता (Visual Function) :–

अल्पदृष्टि वाले बच्चों के लिए–

⇒ ये बच्चें अपने आपको प्रकाश स्त्रोत (Light Source) के पास रखने का प्रयास करते हैं जैसे– खिड़की, लाइट आदि।

⇒ ये वस्तुओं को आँख के बहुत पास लाकर देखते हैं।

⇒ बोर्ड से लिखते समय, साथियों की कॉपी देखकर लिखते हैं।

दृष्टिबाधित बच्चों की पहचान (identification of Visually Impaired Children) :–

दृष्टिबाधित बच्चों की पहचान के लिये स्नैलन चार्ट का प्रयोग किया जाता है। इन बच्चों की पहचान कुछ व्यवहारिक लक्षणों के आधार पर भी की जा सकती है। जन्म से दृष्टि हीनता की स्थिति सामान्यतः 1 वर्ष की आयु के अन्दर ही पहचाना जा सकता है। यह माता–पिता के लिए स्वाभाविक होता है क्योंकि इस स्थिति में छोटा बच्चा उनकी तरफ देखता नहीं है या हिलती हुई वस्तुयें, जो बच्चे को आकर्षित करती हैं उनके लिए वो किसी प्रकार की प्रतिक्रिया (Reaction) नहीं करता। बच्चों में आंशिक दृष्टि हीनता की पहचान तब तक नहीं हो पाती जब तक ये विद्यालय जाना प्रारम्भ नहीं करते। दृष्टिबाधिता की औपचारिक पहचान के लिये नेत्र विशेषज्ञ (Optithalmologist) की आवश्यकता होती है जिसके लिए विभिन्न परीक्षण होते हैं– स्नैलन चार्ट, डेनेबर आई परीक्षण आदि।

माता–पिता तथा प्रारम्भिक विद्यालयी जीवन के अध्यापक की भूमिका इनके शीघ्र पहचान में अति महत्वपूर्ण होती है। माता–पिता व अध्यापक द्वारा अल्पदृष्टि वाले बच्चों की पहचान इनकी आँखों की बाह्य आकृति (Shape), आँखों के प्रयोग के साथ जुड़ी शिकायतें तथा उनके देखने सम्बन्धी व्यवहार के अवलोकन (Observation) के माध्यम से किया जा सकता है, जैसे–

⇒ बच्चा अक्सर आँखे मलता है

⇒ बार–बार पलकों को झपकाता है

⇒ आँखों से पानी आना

⇒ सिरदर्द होना

⇒ आँखे लाल रहना

⇒ वस्तुओं को पास लाकर देखना

⇒ प्रकाश के प्रति अति संवेदनशील होना।

दृष्टिबाधित बच्चों की समस्यायें (Problems of Visually Impaired Children) :–

दृष्टिबाधित बच्चों को अनेक प्रकार की समस्यायें होती हैं जैसे–

⇒ सामाजिक समायोजन की समस्या

⇒ अध्ययन सम्बन्धी समस्या

⇒ व्यवहार सम्बन्धित समस्या

⇒ भाषा विकास में समस्या

⇒ बुद्धि–लब्धि (I.Q.) स्तर सामान्य से कम होना।

⇒ आत्मविश्वास में कमी होना।

दृष्टिबाधित बच्चों की शिक्षा (Education of Visually Impaired Children):–

दृष्टिबाधिता की पहचान के बाद बच्चों की क्षमता (Capacity), स्तर (Level), अभिरुचि (Interest) के अनुसार उनके लिए शैक्षिक व्यवस्था की जानी चाहिए। इन बच्चों को निम्न प्रकार शिक्षा दी जानी चाहिए–

⇒ इन बच्चों के लिए विशेष कक्षा का आयोजन किया जाये और उनकी आवश्यकतानुसार सुविधायें दी जायें।

⇒ दृष्टिबाधित बच्चों को सामान्य विद्यालय व कक्षा में, सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा का अवसर प्रदान किया जाता है। इस व्यवस्था में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों

को सामान्य शिक्षा कार्यक्रमों में शामिल तो किया परन्तु उन्हें विशेष शिक्षा के विद्यार्थी के रूप में माना गया और उन्हें विशेष प्रशिक्षण की देख–रेख में रखा गया।

⇒ समावेशी शिक्षा व्यवस्था में शारीरिक, बौद्धिक, सांवेगिक, सामाजिक, भाषायी या अन्य किसी भेदभाव के बिना सभी बच्चों को शामिल किया जाता है।

⇒ मुक्त व दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थी अपने घर पर रहकर पत्राचार या अन्य सम्प्रेषण साधनों जैसे– रेडियो, टी0वी0, कम्प्यूटर आदि की सहायता से अध्ययन करते हैं।

⇒ इन बच्चों की देखभाल व अधिगम पर विशेष ध्यान की आवश्यकता होती है।

श्रवणबाधित बच्चे (Hearing Handicapped Children)

वे बच्चें जो सुनने की क्षमता पूर्ण रूप से खो देते हैं श्रवणबाधित बच्चें कहलाते हैं। सभी बच्चों की श्रवणबाधिता का स्तर समान नहीं होता है। ये बच्चें या तो बहुत कम सुन पाते हैं या फिर पूर्ण रूप से नहीं सुन पाते हैं अर्थात् बहरे होते हैं। आंशिक रूप से कम सुनने वाले बच्चें, अपनी श्रवण क्षमता को कुछ सीमा तक खो देते हैं। इन बच्चों को जोर से की गई ध्वनि को सुनने के लिए श्रवणयन्त्र की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसे बच्चों को सामान्य स्कूलों में तथा सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा देने में कठिनाई नहीं आती है। जब बच्चे के श्रवण अंगों में कोई दोष होता है तो इसे श्रवण बाधित कहते हैं। ये दोष कान के अन्दर, बाहर या मध्य में हो सकता है। गम्भीर श्रवणबाधित बच्चें वे होते हैं जो जोर से की गई ध्वनि को भी नहीं सुन पाते। ये बच्चें श्रवण यन्त्र के द्वारा सुन सकते हैं। ऐसे बच्चों की आवश्यकतायें क्या होती हैं ये तो बच्चे की श्रवण क्षमता (Capacity) पर निर्भर करता है।

कुछ बच्चें जन्म से ही श्रवण बाधित होते हैं और कुछ जन्म के बाद किसी रोग या चोट के कारण हो जाते हैं। इन बच्चों की श्रवण इन्द्री ठीक प्रकार से कार्य नहीं करती है। कई बार कुछ बच्चों को श्रवण के साथ वाणी दोष भी हो जाता है। श्रवण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें ध्वनि की पहचान, भिन्नता व समझने का बोध होता है। भाषा के विकास के लिए 'सुनना' एक जरूरी प्रक्रिया है। इस बाधिता को पहचानने के लिए सूक्ष्म निरीक्षण (Micro

Inspection) किया जा सकता है। ये दोष व्यक्ति के स्वतंत्र रूप से सीखने व सोचने को भी बहुत प्रभावित करता है। ध्वनि की सूक्ष्मता को मापने की इकाई डेसिबल (db) है।

निःशक्त जन अधिनियम 1995 के अनुसार–

''अगर किसी व्यक्ति को सामान्य वार्तालाप के दौरान व्यवहार की गयी आवृत्तियों (Frequencies) में अपने बेहतर कान से 60 db या उससे तेज आवाज को सुनने में कठिनाई होती है तो वह श्रवणबाधित कहलाता है।''

'WHO' के अनुसार–

''श्रवण हानि अति अल्प से गंभीर की वे आमतौर पर बोली जाने वाली भाषा के माध्यम से संवाद करते हैं तथा इन्हें श्रवण उपकरणों (Hearing Aids), कर्णावत प्रत्यारोपण (Ear Transplant) व सुनने के लिए सहायक सामग्री से लाभ हो सकता है।''

वर्गीकरण (Classification):–

(1) 'क्लार्क' के अनुसार–

db	स्तर
10–25	सामान्य
26–40	अति अल्प
41–55	अल्प
56–70	अल्पतम
71–90	गंभीर
90+	अति गंभीर

(2) 'WHO' के अनुसार–

db	स्तर
0–25	सामान्य

26–40	अति अल्प
41–55	अल्प
56–70	अल्पतम
71–90	गंभीर
90+	अति गंभीर

श्रवण बाधित बच्चों के लक्षण (Indicators of Hearing Impaired Children) :–

⇒ एक जैसी ध्वनि के शब्दों से भ्रम हो जाना।

⇒ बिना जानकारी के बड़बड़ाना।

⇒ कान में दर्द होना।

⇒ व्यवहार में एकाग्रता (Concentration) की कमी।

⇒ सिर को एक ओर झुकाकर सुनना।

⇒ कक्षा में एक ध्वनि स्त्रोत (Source) को न जान पाना।

⇒ भाषा का पूर्ण विकास न हो पाना।

⇒ ज्यादा तेज या धीरे बोलना।

⇒ शाब्दिक निर्देशन को समझने में कठिनाई।

⇒ अध्यापक को प्रश्न दोहराने के लिए कहना।

श्रवण बाधित बच्चों की विशेषतायें/समस्यायें (Charactersitcs of Hearing Impaired Children) :–

⇒ इन बच्चों को याद रखने में दिक्कत होती है। इन्हें चित्रों के माध्यम से याद कराना चाहिए।

⇒ इन बच्चों का भाषा विकास ठीक से नहीं हो पाता है।

⇒ शिक्षकों व सहपाठियों (Classmates) की बात को समझने में कठिनाई होती है।

⇒ शैक्षिक रूप से ये बच्चे सामान्यतः कठिनाई का अनुभव करते हैं जैसे पढ़ने, लिखने व समझने में।

⇒ कक्षा में बच्चों के साथ जुड़ने में भी इन बच्चों को समस्या आती है क्योंकि सामने वाले की बात को ये ठीक से समझ नहीं पाते हैं।

⇒ इन बच्चों की बौद्धिक क्षमता तो सामान्य बच्चों जैसी ही होती है परन्तु इनकी उपलब्धि अमौखिक बौद्धिक परीक्षणों में बेहतर होती है।

⇒ अपने दोष के कारण ये बच्चे सामाजिक कार्यक्रमों का हिस्सा बनने में हिचकिचाते हैं।

⇒ लोगों के साथ न जुड़ पाने के कारण कई बार इनमें नकारात्मक भावना विकसित होने लगती है।

श्रवणबाधित बच्चों की शिक्षा (Education of Hearing Impaired Children):–

श्रवणबाधित बच्चों की शिक्षा के लिए विकल्प उनकी बाधिता की प्रकृति व गम्भीरता पर निर्भर करता है। अतिअल्प एवं अल्पतम रूप से बाधित बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ, सामान्य विद्यालयों में शिक्षा दी जा सकती है तथा गम्भीर रूप से बाधित बच्चों को प्रारम्भिक प्रशिक्षण विशेष विद्यालयों में आसानी से दिया जा सकता है। इन बच्चों की शिक्षा को निम्नलिखित रूप से व्यवस्थित किया जा सकता है–

⇒ विशेष सम्प्रेषण तकनीक (Communication Techniques) के द्वारा जिसमें संकेत भाषा का प्रयोग, ओष्ठ (Lip) पठन विधि, स्पर्श विधि, गतिविधियों द्वारा ध्वनिप्रवर्धक यंत्रों द्वारा इनकी शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।

⇒ चिन्ह भाषा (Sign Language) के प्रशिक्षण (Tranining) द्वारा इन बच्चों को शिक्षा दी जा सकती है।

⇒ इन बच्चों के लिए सहायक सामग्री जैसे– चित्र, मॉडल, संकेत शब्द, आकृतियाँ आदि का प्रयोग किया जा सकता है।

⇒ कम्प्यूटर अनुदेशन विधि का उपयोग किया जा सकता है।

⇒ विशेष प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा शिक्षण।

⇒ इन बच्चों के लिए पृथक कक्षाओं की व्यवस्था।

⇒ इन बच्चों को इस प्रकार प्रशिक्षित (Trained) किया जाये जिससे ये बच्चे सामान्य कक्षा में भी अधिगम कर सकें।

⇒ इन बच्चों को सहायक उपकरण, कक्षा का समुचित प्रबन्ध, व्यवसायिक प्रशिक्षण, विद्यालय का वातावरण के उचित मार्गदर्शन द्वारा अधिगम कराया जा सकता है।

⇒ इन बच्चों की योग्यता, क्षमता व रुचि को ध्यान में रखते हुये, इन्हें शैक्षिक निर्देशन दिया जाये।

⇒ परिवार, विद्यालय व समाज का ये कर्त्तव्य है कि इन बच्चों का आगे बढ़ने में साथ दें।

⇒ इन बच्चों के लिये आवासीय विद्यालय भी होते हैं जहाँ पर अन्य श्रवणबाधित बच्चों के साथ शैक्षिक प्रगति व सामंजस्य हेतु आवश्यक शिक्षा व प्रशिक्षण मिलता है।

श्रवण बाधित बच्चों का सामान्य वर्गीकरण (General Classification of Hearing Impaired Children):–

श्रवण बाधिता	db स्तर	बाधिता प्रतिशत
कम बाधित बच्चे	35–51	40%
मन्द बाधित बच्चे	55–69	(40–50)%
गम्भीर बाधित बच्चे	70–89	(50–75)%
पूर्ण/गहन बाधित बच्चे	90–100	100%

वाक दोष से ग्रसित बच्चें (Speech Impaired Children)

जिन बच्चों को भाषा व बोलने में समस्या होती है, वो पूर्ण रूप से वाक दोष बच्चे होते हैं। भाषा एक ऐसा माध्यम है जिससे हम अपने विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। बच्चों में भाषा सम्बन्धी कई दोष पाये जाते हैं। ये बच्चें शब्दों को बोलने में ज्यादा समय लेते हैं, शब्दों को तोड़–मरोड़कर प्रयोग करते हैं। ये बच्चें शब्दों का तालमेल नहीं कर पाते, बोलते व लिखते समय शब्दों को छोड़ देते हैं या बदल देते हैं या फिर अपनी तरफ से कुछ जोड़ देते हैं। शरीर के अंगों में समस्या के कारण से दोष होता है।

बच्चों में वाक दोष सामान्यतया तीन प्रकार का होता है–

(1) बालकों में उच्चारण में अस्पष्टता होना

(2) बालकों की आवाज का अस्थिर होना

(3) रुक–रुक कर बोला, धाराप्रवाह (Flow) में कमी होना, हकलाना (Stammer)।

अक्सर देखा जाता है कि जिन बच्चों में वाकदोष पाया जाता है उनमें ध्वनि स्थानान्तरण, विकृति (Distortion), विचलन (Deviation) आदि देखने को मिलता है जैसे–पानी को मानी, अमरुद को अरमूद, आदि। यह दोष वातावरणीय प्रभाव कण्ठ, तालू, मूर्धा, दन्त व श्रवण आदि इन्द्रियों में कमी के कारण होता है। वाचन परेशानी सेरेब्रल पल्सी व मस्तिष्क चोट के कारण भी होता है।

परिभाषायें (Definitions):–

'लाहन व काफमैन'– ''वाणी मुखर भाषा के ध्वनि की क्रमबद्ध व व्यवहारिक अभिव्यक्ति है।''

'राइपर'– ''बच्चे जिनको सम्प्रेषण में समस्या होती है और उनका स्वर या वाणी अन्य बच्चों से भिन्न प्रकार की होती है। वह स्वयं भी सजग होता है कि अपनी बात कहने में असमर्थ है। उसकी वाणी मधुर नहीं होती है।''

'पारकिन्स'– ''जब व्याकरण की दृष्टि से तथा सांस्कृतिक रूप से वाणी असंतोषजनक हो, जिसका कारण वाणी अंग का क्षतिग्रस्त होना हो तब उसे वाक दोष कहा जाता है।''

'पिण्टर आट सेन्सन'– ''जब बच्चें सरल रूप से न सीख पायें तब वाणी दोष हो सकता है। वाक दोष बच्चें का स्वर भी अच्छा नहीं होता। बच्चें अपनी आयु व बुद्धि के स्तर के अनुरूप बातचीत नहीं कर पाते।''

'किर्क व गालाघर' के अनुसार भाषा–दोष से ग्रसित बच्चों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) गूंगे बालक (Dumb Children) :–

गूंगे बच्चों की श्रेणी में उन बच्चों को रख सकते हैं जो चाहकर भी अपनी इच्छा को अर्थपूर्ण भाषा के रूप में अभिव्यक्त नहीं कर पाते। ये बच्चे संकेतों (Sign) के माध्यम से ही अपने आप को व्यक्त करते हैं।

(2) उच्चारण सम्बन्धी दोष वाले बालक (Children with Articulation Disorders) :–

ये दोष स्कूल के बच्चों में अधिक देखने को मिलता है। ये बच्चें प्रायः शब्दों का गलत उच्चारण करते हैं। जैसे– दरवाजा को वाजा कहना, रोटी को तोती कहना आदि।

(3) आवाज सम्बन्धी दोष वाले बालक (Children with Voice Disorder):–

जब बच्चे द्वारा बोले गये शब्द की आवाज के गुण, उच्चता या तारत्व (Pitch) में असामान्यता होती है, तो यह भी एक भाषा दोष होता है। नाक में बोलने वाले या कर्कश आवाज में बोलने वाले बच्चे इस श्रेणी में आते हैं।

(4) प्रवाहिता सम्बन्धी दोष वाले बालक (Children with Influency Disorder) :–

वे बच्चे जिनकी सामान्य वाणी प्रवाहिता (Flow) बाधित हो जाता है जैसे– हकलाने (Stammer) वाले बच्चे।

(5) व्याख्यान सम्बन्धी दोष वाले बालक (Children with Language Disorder) :–

वे बच्चे जिन्हें खास–खास शब्दों को बोलने में कठिनाई होती है।

वाक दोष बच्चों की विशेषतायें (Characteristics of Speech Impaired Children) :–

वाक दोष से ग्रसित बच्चों की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं–

⇒ नाक से बोलना

⇒ बोली में लय व क्रम का अभाव होना

⇒ संवाद करने में कठिनाई

⇒ उच्चारण में विकार/कमी

⇒ कर्कश आवाज होना

⇒ शब्दों को तोड़–मरोड़कर बोलना

⇒ हकलाना (Stammer)

⇒ बोलते समय शब्दों को कम करना या बदल देना

⇒ श्रवण दोष होना

⇒ फुसफुसाहट के साथ बोलना

⇒ तुतलाना (Stutter)

⇒ आवाज में मधुरता (Sweetness) न होना।

⇒ श्वसन क्रिया असमान्य होना

वाक दोष बच्चों की समस्यायें (Problems of Speech Impaired Children):–

वाक दोष से पीड़ित बच्चों को अनेक समस्यायें होती हैं–

⇒ इन बच्चों को समायोजन (Adjustment) में परेशानी होती है।

⇒ इस दोष के कारण इन बच्चों में उत्तेजना व भय की भावना आ जाती है।

⇒ मानसिक विकास धीमी गति से होने के कारण, ये बच्चे अधिगम में समस्या का सामना करते हैं।

⇒ इस दोष के कारण इन बच्चों में नेतृत्व के गुणों का भी कम विकास होता है।

वाक् दोष वाले बच्चों की शिक्षा (Education of Speech Impaired Children) :–

इन बच्चों की शिक्षा के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जा सकता है–

⇒ ऐसे बच्चों के लिए सबसे आवश्यक है कि अनेक माता–पिता व शिक्षक उन्हें प्रेरित करें। प्रेरित होकर बच्चें सीखने के लिए उत्सुक होंगे।

⇒ इन बच्चों को समुचित व पर्याप्त वाक् अभ्यास कराना चाहिए।

⇒ शिक्षक को वाक्दोष वाले बच्चों के दोष स्तर पर अधिक बल नहीं देना चाहिए अन्यथा वे हतोत्साहित (Discouraged) हो जायेंगे।

⇒ वाक् दोष वाले बच्चों को शिक्षा देने से पूर्व उनकी आवश्यताओं को जानना बहुत आवश्यक है। उसी के आधार पर निदान (Diagnose) किया जाना चाहिए।

⇒ कुछ दोष सांवेगिक कारणों जैसे– चिन्ता, तनाव आदि से भी होते हैं। इसलिये कक्षा का वातावरण सुखद व मैत्रीपूर्ण होना चाहिए।

⇒ शिक्षक को बच्चों के प्रति मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखना चाहिए।

⇒ इन बच्चों को अपनी बात रखने के समुचित अवसर व पर्याप्त समय दें।

⇒ इन बच्चों को कक्षा में आगे बैठाने की व्यवस्था कर सकते हैं।

(4) अस्थि बाधित बच्चें (Orthopaedic Handicapped Children) :–

अस्थि बाधित बच्चें वे होते हैं जिनकी अस्थियां (Bones) व उनके जोड़ (Joints) या फिर मांसपेशियां (Muscles) ठीक तरह से काम नहीं कर पाती हैं। अस्थि या मांसपेशी की कार्य करने की क्षमता या मात्रा इतनी कम होती है कि उन्हें कृत्रिम (Artificial) रूप से हाथ या पैर की जरूरत होती है। कई बार कुछ बच्चें मस्तिष्क (Brain) के ठीक से कार्य न कर पाने के कारण, शारीरिक रूप से दुर्बल हो जाते हैं। इन बच्चों को अपंग (Handicapped) या शारीरिक रूप से बाधित (Physically Handicapped) भी कहा जाता है। अस्थि बाधित बच्चों को सामान्यतः दो भागों में बाँटा जाता है।

(1) स्वास्थ्य बाधित बच्चे (Health Impaired)

(2) अस्थि बाधित बच्चे (Orthopaedically Impaired)

ये बच्चें मानसिक या इन्द्रिय दोष से बाधित न होकर शारीरिक रूप से बाधित होते हैं। सामान्य कार्य करने के लिये इन बच्चों को कुछ सहायक यन्त्र जैसे– बैशाखी, व्हील चेयर आदि की आवश्यकता होती है। इन बच्चों को अस्थि बाधित कहा जाता है। जो बच्चें अजीर्ण रोग से ग्रस्त होते हैं उन्हें विशिष्ट स्वास्थ्य समस्यात्मक बच्चें कुछ भी करने में समर्थ नहीं होते हैं तथा अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं।

परिभाषायें (Definitions) :–

"वे बच्चें जिनकी एक या एक से अधिक हड्डियों में दोष होता है, जिससे वे सामान्य बच्चों की तरह शारीरिक कार्य नहीं कर पाते हैं, अस्थि बाधित कहलाते हैं। इन बच्चों की अस्थियों या मांसपेशियों में किसी कारण से दोष/कमी आ जाती है।"

'समाज कल्याण मन्त्रालय द्वारा' :–

"अस्थि बाधित बच्चें वे होते हैं जो गम्भीर रूप से अस्थि/अंग बाधित होते हैं और उन्हें अधिगम में भी कठिनाई होती है। अस्थि बाधित जैसे हाथ या पैर का वक्र होना, टूट जाना, जल जाना, किसी अंग का न होना।"

"वे बच्चें जिन्हें किसी बीमारी के कारण सम्प्रेषण (Communication) में कठिनाई हो, सीमित क्षमता (Capacity) हो या फिर जिन्हें गम्भीर स्वास्थ्य समस्या होती है जैसे– मधुमेह (Diabetes), दमा (Asthma), क्षय रोग (TB) आदि।

"यदि किसी बच्चे की मांसपेशियों (Muscles) या हड्डियों में वक्रता आ जाये, जन्म से कोई गम्भीर रोग हो, कोई दुर्घटना (Accident) हो जाये, जिसके कारण बच्चा सामान्य कार्य करने में भी असमर्थ हो तो उन्हें अस्थि बाधित कहा जाता है।"

अस्थिबाधित बच्चों की विशेषतायें (Characteristics of Orthopaedic Handicapped Children) :–

अस्थिबाधित बच्चों की मानसिक क्षमता सामान्य या सामान्य से अधिक होती है, परन्तु इन बच्चों की आवश्यकतायें भिन्न–भिन्न प्रकार की होती हैं। जिन कृत्रिम अंगों का प्रयोग ये बच्चें करते हैं, उनके साथ समायोजन (Adjustment) करना भी शुरुआत में मुश्किल होता है। ये बच्चें दोष के कारण कम active होते हैं। इन बच्चों में एकाग्रता की कमी भी देखने को मिलती है। ये बच्चें अपने कार्यों के लिए दूसरों पर आश्रित रहते हैं। इन बच्चों को सामाजिक अन्तःक्रिया (Social Interaction) करने में भी समस्या होती है।

अस्थिबाधिता के निम्न आठ प्रकारों का वर्णन चिकित्सा विज्ञान में मिलता है–

(1) पांव फिरा (Club Foot)

(2) लूले–लंगड़े, हथकटे

(3) मेरुदण्ड का वक्र होना

(4) एक या एक से अधिक अंगों का लकवा

(5) मांसपेशीय असमर्थता (Muscular Dystrophy)

(6) विकृत नितम्ब (Male Formed hips)

(7) मेरुदण्डीय द्विशामुखी (Spinal bifida)

(8) मस्तिष्कीय पक्षाघात (Cerebral Palsy)

अस्थिबाधित बच्चों की पहचान (Identification of Orthopaedic Handicapped Children) :–

इन बच्चों की पहचान निम्नलिखित लक्षणों के आधार पर की जा सकती है–

⇒ जोड़ों में दर्द रहना

⇒ चलते–चलते गिर जाना

⇒ अंगों का असामान्य होना

⇒ अंगों पर सही से नियन्त्रण न होना

⇒ लड़खड़ाना

⇒ कृत्रिम अंगों का प्रयोग करना

⇒ बैशाखी की सहायता से चलना

⇒ वस्तुओं को उठाने व रखने में कठिनाई

⇒ ज्यादा न चल पाना

अस्थिबाधिता के कारण (Cause of Orthopaedic Disability) :–

⇒ बीमारी के कारण

⇒ दुर्घटना (Accident) के कारण

⇒ जन्मजात (By birth)

अस्थिबाधित बच्चों की शिक्षा (Education of Orthopaedic Handicapped Children) :–

ऐसे बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था निम्न प्रकार की जा सकती है–

⇒ इन बच्चों को आवश्यकता के अनुसार उपचार सुविधायें प्रदान की जायें।

⇒ इन बच्चों के लिए अतिरिक्त कक्षाओं की व्यवस्था की जा सकती है। स्कूल के बाद या छुट्टियों में उन्हें अतिरिक्त कक्षायें दी जायें।

⇒ इन कक्षाओं में शिक्षक बच्चों की व्यक्तिगत समस्याओं पर ध्यान दे सकते हैं।

⇒ प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा शिक्षण किया जाये।

⇒ इन बच्चों के अधिगम के लिये विशेष विद्यालयों का निर्माण किया जा सकता है।

⇒ पाठ्यक्रम को बच्चों की आवश्यकता के अनुसार बनाकर।

⇒ इन बच्चों की शिक्षा के लिये मनोवैज्ञानिकों द्वारा परामर्श लिया जा सकता है।

⇒ सहायक सामग्री का प्रयोग करना चाहिये।

⇒ बहुत से अस्थि बाधित बच्चें, सामान्य बच्चों के साथ सम्पूर्ण रूप से शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते हैं, इसलिये उनके लिये विशेष कक्षा की व्यवस्था की जा सकती है।

⇒ विद्यालय में शारीरिक उपचार कक्ष भी होना चाहिये।

गति प्रेरक बाधिता (Motor Impaired Child) :–

गति प्रेरक बाधिता शरीर की एक ऐसी स्थिति है जो बच्चे को विद्यालय में सामान्य प्रगति करने से रोकता है। ऐसे बच्चों व सामान्य बच्चों में उनके मनोवैज्ञानिक बनावट में बहुत अधिक अन्तर नहीं होता है।

कारण (Cause) :–

(1) प्रमस्तिष्क पक्षाघात (Cerebral Palsy) :–

इस दोष में मस्तिष्क की परिपक्वता से पूर्व मस्तिष्क के गति क्षेत्रों की क्षति हो जाती है। CP के अधिकतर मामले जन्म से पहले या जन्म के दौरान होते हैं। यह एक प्रकार की चोट है।

(2) आर्थराइटिस :–

इसमें जोड़ों में दर्द होता है जो गति के विस्तार को कम करता है। यह एक क्रोनिक सिन्ड्रोम है।

(3) मेरुरज्जू की चोट के कारण (Spinal Cord)

(4) सिर की चोट के कारण

(5) अंगों या अंगुलियों की हानि

(6) पार्किन्सन बीमारी के कारण–

इसमें मांसपेशियों में दृढ़ता, गति, संचालन में धीमापन व अद्वितीय प्रकार का कम्पन हो सकता है।

(7) मल्टीपल स्क्लेरोसिस, जिसमें तंत्रिका तन्तुओं (Nerve Fibre) को ढकने वाली पृथक्करण सामग्री का विनाश हो जाता है।

(8) मांसपेशीय कुपोषण (Malnutrition) के कारण

(4) समस्यायें (Problems) :–

⇒ कमजोरी व थकान
⇒ चलने, बोलने, समझने में परेशानी
⇒ मांसपेशियों का खराब नियंत्रण
⇒ अंगों का उपयोग करने में दिक्कत

अपवंचित वर्ग के बच्चे (Deprived Children) :–

अपवंचित वर्ग में वो बच्चे आते हैं जो कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण शिक्षा का सुचारू रूप से प्राप्त नहीं कर पाते। इन बच्चों को शिक्षा के लिये पर्याप्त नहीं मिल जाती हैं। इस कारण इन बच्चों का शारीरिक शोषण व मानसिक विकास भी प्रभावित होता है। UNESCO ने अपने भारतीय अध्ययन रिपोर्ट में चार प्रकार के असुविधा सम्पन्न समूहों की चर्चा की है। यह अध्ययन अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग व अल्पसंख्यकों के अध्ययन पर आधारित है। इस समूह में–

(1) अनुसूचित जाति (Schedule Caste)

(2) अनुसूचित जनजाति (Schedule Tribe)

(3) भ्रमणकारी जनजाति (Nounadic Tribe)

(4) सन्दर्भित जनजाति (Denotified Tribe)

(5) पिछड़ी जाति (Backward Caste)

(6) श्रमिक परिवारों के बच्चें

इन बच्चों में लक्षण (Symptoms) :–

⇒ बौद्धिक रूप से मन्द
⇒ भाषा विपन्नता (Deprivation)
⇒ निम्न महत्वकांक्षा (Desire)
⇒ निम्न शैक्षिक उपलब्धि (Achievement)
⇒ Hyper Activeness
⇒ सामाजिक कुशलता की कमी
⇒ पढ़ाई के प्रति उदासीनता (Neutral)
⇒ कक्षाओं को छोड़ना आदि

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

शैक्षिक रूप से अपवंचित होने के कारण :–

⇒ अशिक्षित परिवार से होना

⇒ आर्थिक रूप से कमजोर होना

⇒ उचित पाठ्यक्रम का अभाव होना

⇒ निवास के आस–पास विद्यालय न होना

अपवंचित बच्चों की शिक्षा :–

इस प्रकार के बच्चों के लिए विद्यालय का वातावरण तथा परिवेश अनुकूल नहीं होता है। 'रथ' ने अपवंचित बच्चों की समस्याओं का विश्लेषण करते हुये तीन विशिष्ट उपायों को बताया है–

(1) पूर्व विद्यालय वातावरण के कारण उत्पन्न अधिगम समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया जाये।

(2) विशिष्ट विषयों में न्यूनताओं को दूर करने का प्रयास किया जाये।

(3) वंचित बच्चों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास किया जाये।

⇒ इसके अतिरिक्त बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण करना।

⇒ बच्चों को प्रेरित करना।

⇒ समय–समय पर बच्चों को परामर्श देना व उनका मार्गदर्शन करना।

⇒ बच्चों की क्षमताओं का मूल्यांकन करना।

⇒ विद्यालय, परिवार व समाज के द्वारा इन बच्चों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

⇒ सभी वैज्ञानिकों का यह दायित्व है कि इस दिशा में जन चेतना को जाग्रत करें और उपायों की खोज करें।

लड़कियों के लिए शिक्षा (Education for Girls) :–

भारत के संविधान में लड़के–लड़कियों सभी को समान अवसर प्रदान किये गये हैं परन्तु वास्तविक रूप में देखा जाये तो लड़कियाँ आज भी सुविधावंचित समूह का अंग बनी हुई हैं। समाज में लड़के–लड़कियों के पालन–पोषण में तथा शिक्षा में भेदभाव किया जाता है। समाज में यह मान्यता है कि महिलायें, पुरुषों के समान कार्य नहीं कर सकती हैं। लड़के–लड़कियों की भूमिकाओं को भी ये समाज निर्धारित करता है जैसे– लड़कियाँ घर का काम करती हैं, बाहर नहीं जाती हैं आदि।

समाज में उत्पन्न इन कुप्रथाओं का असर विद्यालयी पाठ्यक्रम, पाठ्य–पुस्तकों व कक्षा में लड़कियों के साथ होने वाले व्यवहार पर भी पड़ता है।

एक अध्यापक को निम्नलिखित बिन्दुओं पर बल देना चाहिए–

⇒ लड़कियों की क्षमता को उजागर करना।
⇒ स्वस्थ प्रतिस्पर्धा पर बल देना।
⇒ महिलाओं की भूमिका व छवि को लेकर सही प्रतिनिधित्व होना।
⇒ बच्चों को सिखाना कि 'पुरुषों के कार्य' या 'महिलाओं के कार्य' में कोई विभाजन नहीं होता है।
⇒ लड़कियों को स्वावलम्बी बनने के लिये प्रोत्साहित किया जाये।

समस्यात्मक बच्चें (Problematic Children) :–

समस्यात्मक बच्चें वे बच्चें होते हैं जो परिवार व कक्षा में विभिन्न समस्यायें उत्पन्न करते हैं। इन बच्चों का व्यवहार सामान्य बच्चों से भिन्न होता है।

कहीं न कहीं ये बच्चें, अध्यापकों के लिए भी समस्या उत्पन्न करते हैं। ये बच्चें कई प्रकार के हो सकते हैं। जैसे– गुस्सा करने वाले, झूठ बोलने वाले, चोरी करने वाले, गृहकार्य न करने वाले, विद्यालय से भाग जाने वाले आदि ऐसे बच्चों के गलत व्यवहार के कारणों का पता लगाकर उनमें सुधार लाया जा सकता है। इन बच्चों के गलत व्यवहार करने के अनेक कारण हो सकते हैं जैसे– अत्यधिक लाड़–प्यार, कठोर अनुशासन, आवश्यकता पूरी न हो पाना आदि।

इन बच्चों की समस्या को जानकर मनोवैज्ञानिक ढंग से सुधार व शिक्षण कार्य किया जाना चाहिए।

समस्यात्मक बच्चों की पहचान (Identification of Problematic Children):–

इन बच्चों की पहचान निम्न प्रकार से की जा सकती है–

⇒ साक्षात्कार द्वारा (Interview)
⇒ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा
⇒ निरीक्षण विधि द्वारा (Inspection)
⇒ संचयी अभिलेख द्वारा (Cumulative Record)
⇒ अभिभावक व शिक्षकों से बातचीत द्वारा

समस्यात्मक बच्चों के लक्षण (Symptoms of Problematic Children) :–

⇒ अनुशासन का विरोध करना
⇒ सन्देह करना
⇒ चोरी करना
⇒ स्कूल के कार्यों में Active न होना
⇒ बुरा व्यवहार
⇒ हीन भावना का शिकार होना
⇒ चिड़चिड़ा होना

समस्यात्मक व्यवहार के कारण (Cause of Problematic Behaviour) :–

⇒ शारीरिक कारण
⇒ आनुवंशिक कारण
⇒ संवेगात्मक कारण (Emotional)

⇒ सामाजिक कारण

⇒ परिवेशीय कारण

समस्यात्मक बच्चों की शिक्षा (Education of Problematic Children) :–

समस्यात्मक बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था निम्न प्रकार की जा सकती है–

⇒ बच्चों को नैतिक शिक्षा प्रदान करके।

⇒ बच्चों को अच्छे कार्यों के लिये प्रोत्साहित (Motivate) करके।

⇒ बच्चों को व्यक्तिगत आवश्यकताओं को जानकर।

⇒ बच्चों के प्रति प्रेम, सहानुभूति व सहयोगात्मक व्यवहार करके।

⇒ बच्चों में आत्म अनुशासन (Self Discipline) की भावना विकसित करके।

⇒ विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन करके।

विशिष्ट आवश्कयता वाले बच्चों की शिक्षा व्यवस्था (Education of Children with special need) :–

शिक्षा के अधिकार कानून के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का समान अधिकार है। प्रत्येक बच्चे को अपनी क्षमता व सामर्थ्य के अनुसार शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार है। अधिकांश कक्षा–कक्ष में कुछ ऐसे बच्चें अवश्य होते हैं जिन्हें अधिगम के लिए विशेष सहायता की आवश्यकता होती है। इन बच्चों की शिक्षा के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षक इनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर ध्यान दें। कई बार इन बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष शिक्षा कार्यक्रमों व अधिगम सामग्री की भी आवश्यकता पड़ती है। शारीरिक रूप से बाधित बच्चों के लिए कुछ उपकरणों की भी जरूरत होती है जैसे– श्रवण यन्त्र, व्हीलचेयर आदि।

विशिष्ट बच्चों की शिक्षा के दौरान मुख्य रूप से तीन समस्यायें आती हैं– विशिष्ट बच्चों को समझने की समस्या व व्यवसायिक प्रशिक्षण की समस्या। विशिष्ट बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था निम्न आधार पर की जा सकती है–

(1) विशिष्ट बच्चों की पहचान व आंकलन (Assessment) करना :–

यदि विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान न हो पाये तो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे होगी। इसलिये सबसे आवश्यक है इन बच्चों की पहचान करके उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना। बच्चों को चिकित्सीय व मनोवैज्ञानिक (Psychological) सलाह देने का प्रयास करना चाहिए।

(2) सेवाओं का स्थापन (Establishment of Services) :–

बच्चों की पहचान करने के बाद उन बच्चों को उपयुक्त श्रेणी (Category) व शिक्षण संस्था में रखा जाना चाहिए। शारीरिक व मानसिक रूप से बाधित बच्चों को सामान्य कक्षा में पूर्णकालिक (Full time) स्थापन के द्वारा, सामान्य कक्षा में तथा विशिष्ट कक्षा में बारी–बारी अंशकालिक (Part time) स्थापन द्वारा, विशिष्ट कक्षाओं में पूर्णकालिक स्थापन द्वारा, आवासीय शिक्षा संस्थाओं में पूर्णकालिक स्थापन द्वारा बच्चों को लाभान्वित किया जा सकता है। हमारे देश में आमतौर पर ये बच्चें सामान्य शिक्षण संस्थाओं में ही शिक्षा ग्रहण करते हैं। पुणे में प्रतिभाशाली बच्चों के लिए 'ज्ञान प्रबोधिनी' नामक संस्था है।

(3) वैयक्तिकता पर बल (Focus on Individuality) :–

प्रत्येक बच्चे की अपनी–अपनी विशेषतायें होती हैं। बच्चों को उनकी योग्यता के आधार पर विभिन्न समूहों में बाँटा जा सकता है। इस प्रकार उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए।

(4) अधिगम पर बल (Focus on Learing) :–

यह बिल्कुल भी आवश्यक नहीं है कि जिस प्रकार शिक्षक बच्चों को सिखा रहे हैं, उसी प्रकार बच्चें सीखें। वर्तमान समय में शिक्षा की अपेक्षा अधिगम अर्थात् सीखने पर अधिक बल देना आवश्यक है।

(5) विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं का स्वरूप (Form of Specific Education Institutions) :–

विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं को इस प्रकार संचालित किया जाना चाहिए जिससे सभी विशिष्ट बच्चें उससे लाभान्वित हो सकें। विशिष्ट विद्यालय में प्रशिक्षित अध्यापक संसाधनों, उपकरणों व अन्य सहायक सामग्री की सहायता से शिक्षण करते हैं। कुछ ही सरकारी संस्थाओं को छोड़कर यह देखने को मिलता है कि विशिष्ट शिक्षा पर पर्याप्त धन खर्च करना पड़ता है।

(6) समन्वित शिक्षा का स्थापन (Establishment of Services) :–

समन्वित शिक्षा के अन्तर्गत बाधित बच्चों व सामान्य बच्चों को एक साथ सामान्य शिक्षण संस्थाओं में शिक्षण दिया जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार– ''जहाँ तक संभव होगा आंशिक रूप से बाधित बच्चों व हाथ–पैर से अक्षम बच्चों की शिक्षा सामान्य बच्चों की शिक्षा के समान ही होगी।'' प्रत्येक दशा में गम्भीर रूप से बाधित बच्चों की शिक्षा को प्रेरित किया जाये।

(7) भत्तों का प्रावधान (Provision of Allowances) :–

भारत सरकार द्वारा शारीरिक रूप से बाधित बच्चों की शिक्षा के लिये कुछ भत्तों का प्रावधान किया गया है, जैसे– वर्दी भत्ता, किराया भत्ता, पुस्तक खरीदना, छात्रवृत्ति आदि।

(8) सामान्य शिक्षा से पूर्व तैयारी हेतु प्रशिक्षण (Training) :–

बाधित बच्चों को सामान्य विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने से पहले कुछ तैयारी करवानी चाहिए। यह तैयारी विशिष्ट शिक्षा संस्थान, बाल–वाड़ी, बच्चों के शिक्षा केन्द्र आदि में करायी जा सकती है। इस तैयारी के लिए बच्चों का सामान्य परीक्षण (Test) किया जाना चाहिए। जिससे ये पता लगाया जा सके कि बच्चा कितना और क्या–क्या काम कर सकता है और कितना सक्षम है। अब बच्चे की आवश्यकता के अनुसार उसे प्रशिक्षण दिया

जाये। बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ कैसे समन्वित होना है तथा उन्हें साहस व आत्मविश्वास से जीवन का सामना करने के योग्य बनाने का प्रयास करना चाहिए।

(9) सहायक सामग्री व उपकरण :–

बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें संसाधन युक्त कक्षा व सुविधा देने बहुत आवश्यक है। जैसे–दृष्टिबाधित बच्चों के लिए ब्रेललिपि सामग्री, मोटे छापे की पठन सामग्री, श्रवणयन्त्र तथा खेल–खिलौने आदि।

विशिष्ट शिक्षा (Special Education)

विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को परिवार, समाज व विद्यालय में समायोजित (Adjust) करने का प्रयास किया जाता है। विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत उन बच्चों को शिक्षा दी जाती है जो सामान्य बच्चों से शारीरिक, मानसिक व सामाजिक क्षेत्रों में कुछ अलग होते हैं अर्थात् उन्हें विशेष निर्देशन की आवश्यकता होती है। विशिष्ट शिक्षा के माध्यम से इन बच्चों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षित व सक्षम बनाने का प्रयास किया जाता है।

विशिष्ट शिक्षा, विशिष्ट रूप से तैयार किया गया एक शैक्षिक अनुदेशन (instructions) है जिससे शैक्षिक गतिविधियों, विशेष पाठ्यक्रम व विशेष शिक्षक के द्वारा, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अधिगम सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। विशिष्ट शिक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को, अलग विद्यालय में विशेष रूप से शिक्षा दी जाती है।

परिभाषायें (Definitions) :–

'किर्क'– ''विशिष्ट शिक्षा शब्द शिक्षा के उन पहलुओं को बताता है जिसे विकलांग व प्रतिभाशाली बच्चों के लिए किया जाता है, लेकिन औसत (Average) बच्चों के मामले में प्रयुक्त नहीं होता।''

'हल्लहन व कॉफमैन'– ''विशेष शिक्षा का अर्थ विशेष रूप से तैयार किये गये साधनों के द्वारा विशिष्ट बच्चों को प्रशिक्षण देना है। इसके लिए विशिष्ट साधन, तकनीक, उपकरण आदि सुविधाओं की आवश्यकता होती है।''

'विकलांग शिक्षा अधिनियम' के अनुसार– ''विशिष्ट शिक्षा विशिष्ट रूप से डिजाइन किया गया अनुदेशन (Instruction) है जो विकलांग बच्चों की अतुलनीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो।''

⇒ विशिष्ट शिक्षा विशिष्ट बच्चों जैसे– दृष्टिबाधित, श्रवण बाधित मानसिक रूप से मंद, अधिगम अक्षम, प्रतिभाशाली बच्चों के लिये विशेष रूप से तैयार किया गया अनुदेशन है।

⇒ विशेष शिक्षा में ब्रेल, Abacus, Sign, Language आदि का प्रयोग किया जाता है।

⇒ विशेष प्रकार की शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है।

⇒ अनुच्छेद 29(1) में कहा गया है कि कोई भी नागरिक धर्म, जाति, मूल, भाषा आदि के आधार पर राज्य निधि से सहायता प्राप्त शैक्षिक संस्थानों में नामांकन (Registration) से वंचित नहीं हो सकता।

⇒ अनुच्छेद 45 के अनुसार सभी बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा दी जायेगी।

⇒ अनुच्छेद 21 (क) के अनुसार 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा दी जायेगी।

कोठारी आयोग :–

⇒ कोठारी आयोग की सिफारिश पर 1974 में कल्याण मंत्रालय ने एकीकृत शिक्षा (Integrated Education) योजना को शुरु किया।

⇒ 1975 में कल्याण मंत्रालय द्वारा 'विकलांग व्यक्तियों के लिये एकीकृत शिक्षा परियोजना' शुरु की गई।

⇒ कोठारी आयोग के अनुसार एक विकलांग बच्चे के लिए शिक्षा का पहला कार्य यह है कि सामान्य बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उन्हें तैयार करें। यह

आवश्यक है कि विकलांग बच्चों की शिक्षा सामान्य प्रणाली का ही एक अभिन्न अंग हो। अंतर केवल बच्चे को पढ़ाने की विधि व उसको अधिगम में सहायता करने वाले साधनों में होगा।

⇒ 2005 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने I.E.D. योजना में 14 से 18 वर्ष आयु के निःशक्त युवाओं को शामिल करके ''निःशक्त बच्चों व युवाओं के लिए समावेशी शिक्षा'' योजना को शुरु किया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) (National Education Policy) :–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार– शिक्षा सबके लिए तभी मायने रखती है जब विकलांग बच्चों को भी शिक्षा का अवसर दिया जाये।

इस नीति द्वारा विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिये निम्न सुझाव दिये गये–

⇒ जहाँ तक सम्भव हो कर्मेन्द्रिय दोष व मामूली निःशक्तता वाले बच्चों की शिक्षा दूसरे बच्चों के साथ होगी।

⇒ गंभीर रूप से विकलांग बच्चों के लिए जहाँ तक सम्भव हो, जिला मुख्यालयों पर छात्रावास से युक्त विशेष विद्यालय की व्यवस्था की जाये।

⇒ विशेष कठिनाइयों का सामना करने के लिये अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जायें।

सर्व शिक्षा अभियान (2000) :–

सर्व शिक्षा अभियान का उद्देश्य सभी बस्तियों को स्कूली सुविधा, शत–प्रतिशत नामांकन व संतोषजनक उपलब्धि स्तर प्राप्त करना है।

इस कार्यक्रम के तहत 2005 तक सभी बच्चों के लिए प्रारम्भिक विद्यालय (Primary School), शिक्षा गारंटी केन्द्र, वैकल्पिक विद्यालय, बैंक टू स्कूल शिविर आदि उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा था।

निःशक्त व्यक्ति अधिनियम (1995) (Person with Disability Act) :–

इस अधिनियम के अध्याय–5 में विकलांग बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था किये जाने का प्रावधान है। इस अधिनियम की धारा (क) में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि समुचित सरकारें व प्राधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि प्रत्येक विकलांग बच्चे को 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने तक उचित वातावरण में निःशुल्क शिक्षा प्राप्त हो सके।

राष्ट्रीय न्यास अधिनियम (1999) (National Trust Act) :–

इस अधिनियम का उद्देश्य विकलांग व्यक्तियों के परिवारों को सशक्त बनाना है ताकि वे विकलांग व्यक्तियों को परिवार में रख सकें। ये विकलांग व्यक्ति व उसके परिवार को कई तरह की सेवायें प्रदान करते हैं।

विशिष्ट शिक्षा का कार्यक्षेत्र (Working area of Special Education) :–

विशिष्ट शिक्षा के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत विशिष्ट बच्चों व उनके व्यक्तित्व से संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत बच्चों की पहचान, निर्देशन, शिक्षा आदि का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित समस्याओं पर विचार किया जाता है–

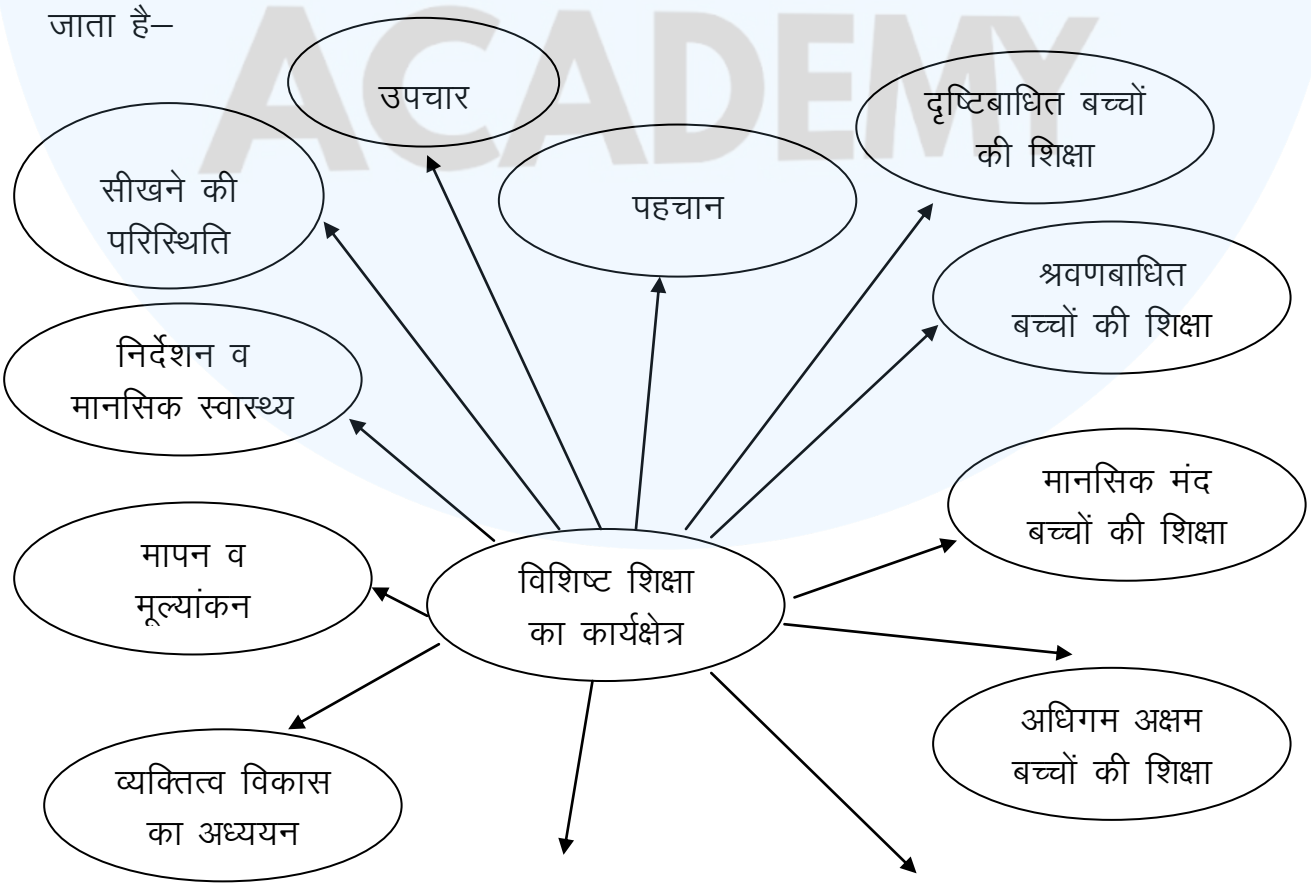

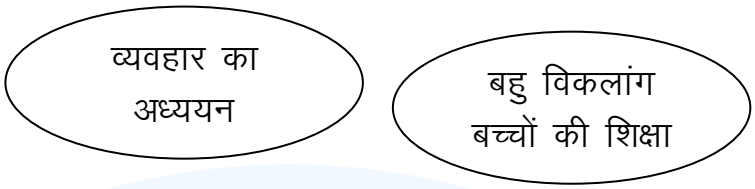

(1) पहचान (Identification) :–

विशिष्ट बच्चों की पहचान करना, विशिष्ट शिक्षा का मुख्य कार्य है। इसमें दृष्टिबाधित, श्रवणबाधित, अधिगम अक्षम, मानसिक मंद आदि बच्चों की पहचान, उनकी विशेषताओं के आधार पर की जाती है। इनकी पहचान के लिये अलग–अलग विधियों का प्रयोग किया जाता है जैसे दृष्टिबाधित बच्चों की पहचान के लिये स्नैलेन चार्ट, श्रवणबाधित बच्चों की पहचान के लिए ऑडियोमीटर आदि।

(2) दृष्टिबाधित बच्चों की शिक्षा :–

ये बच्चें ठीक प्रकार से देख नहीं पाते हैं। ये भी दो प्रकार के होते हैं– पूर्ण दृष्टिबाधित व अल्प बाधित। विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत इन बच्चों की शैक्षिक आवश्यकतायें जैसे– ब्रेल, अबेकस, ट्रेलर फ्रेम आदि पर बल दिया जाता है।

(3) श्रवणबाधित बच्चों की शिक्षा :–

श्रवण बाधित बच्चें ठीक प्रकार से या पूर्ण रूप से ही सुनने की क्षमता खो देते हैं। इन बच्चों की शिक्षण विधि में ओष्ठ पठन, फिंगर स्पेलिंग, संकेत भाषा, स्पीच रीडिंग आदि का उपयोग किया जाता है।

(4) मानसिक मंद बच्चों की शिक्षा :–

इन बच्चों का बुद्धि स्तर व सोचने समझने की क्षमता, सामान्य बच्चों से कम होती है। इन बच्चों की पहचान, कारण, प्रकार व शिक्षा से संबंधित समस्याओं का अध्ययन विशिष्ट शिक्षा में किया जाता है।

(5) अधिगम अक्षम बालकों की शिक्षा :–

वे बच्चें जिनकी बुद्धि–लब्धि (I.Q.) सामान्य बच्चों के समान होती है परन्तु इन बच्चों को पढ़ने–लिखने आदि क्रियाओं में कठिनाई होती है। विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत इन बच्चों की समस्या व शिक्षण विधियों का अध्ययन किया जाता है।

(5) बहुविकलांग बच्चों की शिक्षा :–

बहुविकलांग ऐसे बच्चे होते हैं जिन्हें एक से अधिक विकलांगता होती है। इन बच्चों की शिक्षा का प्रबंध भी विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत किया जाता है।

(6) व्यवहार का अध्ययन :–

विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत इन सभी बच्चों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है तथा उसके अनुसार ही इन बच्चों की शिक्षा को व्यवस्थित किया जाता है।

(7) व्यक्तित्व विकास का अध्ययन :–

विशिष्ट बच्चों के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया, निर्धारक व कारकों का अध्ययन विशिष्ट शिक्षा में किया जाता है।

(8) मापन व मूल्यांकन :–

विशिष्ट बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन व मूल्यांकन किया जाता है। इसके अन्तर्गत बच्चों की बुद्धि, रुचि, क्षमता आदि का मापन व उनकी उपलब्धि का मूल्यांकन किया जाता है।

(9) निर्देशन व मानसिक स्वास्थ्य :–

विशिष्ट बच्चों को निर्देशन तीन स्तरों पर दिया जाता है–

वैयक्तिक निर्देशन (Individual guidance), शैक्षिक निर्देशन व व्यवसायिक निर्देशन। शिक्षक इन तीनों प्रकार के निर्देशनों का उचित प्रबंध करते हैं। साथ ही साथ बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य का भी ध्यान रखा जाता है।

(10) सीखने की परिस्थिति :–

सीखने की परिस्थिति, सीखने की प्रक्रिया को बहुत प्रभावित करती है। जब सीखने की परिस्थिति ऐसी हो जिसमें बच्चों की मनोवृत्ति अनुकूल होती है, विशिष्ट बच्चों के बैठने की उचित व्यवस्था होती है, कमरा साफ व रोशनी की अच्छी व्यवस्था होती है तो शिक्षा अधिक अर्थपूर्ण होती है।

(11) उपचार (Treatment) :–

विशिष्ट बच्चों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुये विभिन्न विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। जैसे– साइकोलॉजिस्ट, पैथोलॉजिस्ट, ऑडियोलॉजिस्ट, डॉक्टर आदि। विशिष्ट शिक्षा के अन्तर्गत बच्चों के उपचार का भी पूरा प्रबंध किया जाता है।

(12) पुनर्वास (Rehabilitation) :–

विशिष्ट शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य विकलांग व्यक्तियों को मानसिक, सामाजिक व व्यवसायिक रूप से पुनर्वासित करना है। पुनर्वास का अर्थ है इन व्यक्तियों को शारीरिक, बौद्धिक, सांवेगिक व सामाजिक क्षेत्र में जिसमें भी व्यक्ति विकलांगता के कारण पिछड़ा हो तो पुनर्वास प्रक्रिया के द्वारा वह व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार अधिकतम स्तर को प्राप्त कर सके।

विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य :–

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए उन्हें समाज को एक स्वतंत्र, उत्तरदायी व सक्रिय (active) सदस्य बनाने की प्रक्रिया ही विशिष्ट शिक्षा का उद्देश्य है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है और उन्हें पूरा करने का प्रयास किया जाता है। विशिष्ट शिक्षा के उद्देश्य, सामान्य शिक्षा के उद्देश्यों से

बिल्कुल अलग नहीं है परन्तु विशिष्ट बच्चों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये कुछ व्यापक हो जाते हैं–

⇒ विशिष्ट बच्चों की पहचान, निदान व आंकलन।

⇒ बच्चों को मार्गदर्शन व परामर्श देना (Guidance and Counselling)

⇒ शीघ्र हस्तक्षेप करना (Intervention)

⇒ शैक्षिक हस्तक्षेप

⇒ पुनर्वास करना (Rehablitation)

⇒ माता–पिता व समाज को जागरूक करना।

(1) विशिष्ट बच्चों की पहचान, निदान व आकलन (Identification, Diagnosis and Assessment of Special Child) :–

इसके अन्तर्गत बच्चों की शारीरिक, मानसिक व शैक्षिक आवश्यकताओं की पहचान कर उसका निदान किया जाता है और उसके बाद क्षति का आंकलन किया जाये जिससे उसके सहायक उपकरणों व शैक्षिक कार्यक्रमों को भी तैयार किया जा सके। विशिष्ट बच्चे की पहचान उसके व्यवहार के प्रेक्षण (Observation), चिकित्सकीय व मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा की जा सकती है।

(2) विशिष्ट बच्चों को मार्गदर्शन व परामर्श देना (Guidance and Counselling):–

विशिष्ट बच्चों को शैक्षिक व सामाजिक समायोजन करने में बहुत समस्या आती है। मार्गदर्शन बच्चों को अपने प्रति व समाज में समायोजन करने में मदद करता है। मुख्य रूप से तीन क्षेत्रों में इन बच्चों को ज्यादा समस्या होती है–

⇒ शिक्षा संबंधी समस्या

⇒ व्यक्तिगत व मनोवैज्ञानिक समस्या

⇒ व्यवसाय संबंधी समस्या

(3) शीघ्र हस्तक्षेप (Intervention) :–

इन बच्चों की समस्याओं व आवश्यकताओं को जितनी जल्दी समझकर, उसकी गंभीरता को रोका जा सके उतना ही अच्छा है। जितना जल्दी आप बच्चों की आवश्यकताओं के अनुसार उन्हें प्रशिक्षण व उपकरण उपलब्ध करायेंगे, उतनी ही जल्दी उनमें क्षमताओं व कौशलों (Skills) का विकास शुरु हो सकेगा।

(4) शैक्षिक हस्तक्षेप :–

विशिष्ट बच्चों को कई बार अधिगम सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन बच्चों की शैक्षिक हस्तक्षेप की आवश्यकता होती जैसे विद्यालय में अतिरिक्त सुविधायें आदि उपलब्ध कराना। शैक्षिक रूप से इन बच्चों को मुख्य धारा में लाने के लिए कुछ विशिष्ट माध्यमों का प्रयोग किया जाता है।

(i) विशिष्ट विद्यालय (Special School) :–

जिन विशिष्ट बच्चों को सामान्य विद्यालय में पढ़ने से कोई विशेष लाभ नहीं होता है, उन्हें विशिष्ट विद्यालय की आवश्यकता होती है। विशिष्ट विद्यालय ऐसे विद्यालय होते हैं जिनमें विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की विशिष्ट शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। इनमें विशिष्ट शिक्षण प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक व कर्मचारी होते हैं। इनमें बच्चों के लिये चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक आदि भी उपलब्ध होते हैं।

(ii) समन्वित विद्यालय (Integrated School) :–

समन्वित विद्यालयों में विशिष्ट बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए शैक्षिक अवसर प्रदान किये जाते हैं। एक सामान्य विद्यालय को समन्वित विद्यालय के रूप में, कई तरह की सहायक सुविधायें उपलब्ध कराना आवश्यक है जैसे–

⇒ **संसाधन कक्ष (Resource Room) :–**

संसाधन कक्ष में विशिष्ट बच्चें पूरी विद्यालय अवधि के दौरान आधे से अधिक समय बिताते हैं। यह कक्ष विशिष्ट अनुदेशन सामग्री से युक्त होता है।

⇒ **संसाधन शिक्षक (Resource Teachers) :–**

ये विशिष्ट शिक्षा में विशिष्ट योग्यताधारी वो शिक्षक होते हैं जो किसी भी परिस्थिति में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ा सकते हैं। ये शिक्षक दृष्टि, श्रवण, मानसिक विकलांगता आदि के क्षेत्र में डिप्लोमा/डिग्री के साथ–साथ भारतीय पुनर्वास परिषद (Rehabilitation Council of India) से पंजीकृत (Registered) भी होते हैं।

⇒ अन्य विशेषज्ञ जैसे– चिकित्सक, कान विशेषज्ञ, नेत्र विशेषज्ञ, दन्त विशेषज्ञ, अस्थि विशेषज्ञ आदि।

⇒ सामान्य शिक्षक

⇒ परामर्शदाता (Counsellor)

⇒ समवय समूह (Peer Groups)

(5) अभिभावक को परामर्श देना :–

विशिष्ट बच्चों की समस्या के उपचार, रोकथाम, देखभाल तथा विभिन्न कौशल जैसे– स्व सहायता कौशल, संचारण कौशल आदि के प्रशिक्षण (Training) के लिये बच्चे के माता–पिता को परामर्श उपलब्ध कराना, विशिष्ट शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इस प्रकार माता–पिता बच्चों को आवश्यक कौशलों का प्रशिक्षण विद्यालय आने से पूर्व ही दे सकते हैं।

(6) अभिभावकों व समुदाय को जागरूक करना :–

अभिभावकों व समाज के लोगों को विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों की क्षमता व आवश्यकताओं से परिचित व जागरूक कराना बहुत आवश्यक है। बच्चा सबसे पहले इन्हीं लोगों के सम्पर्क में आता है। इसलिये इन लोगों को जागरूक रखना बहुत आवश्यक है।

(7) पुनर्वास करना (Rehabilitation) :–

बच्चे की बाधिता के कारण उत्पन्न अक्षमता, उसे समुदाय से अलग–थलग कर देती है जिससे बच्चा मानसिक रूप से प्रभावित होता है। बच्चे को समाज में पुर्नस्थापित करना ही पुनर्वास करना है। इसके अन्तर्गत

⇒ शैक्षिक पुनर्वास करना
⇒ चिकित्सकीय पुनर्वास करना
⇒ वैयक्तिक पुनर्वास करना
⇒ आर्थिक पुनर्वास करना
⇒ व्यवसायिक पुनर्वास करना

विशिष्ट शिक्षा के सिद्धान्त (Principles of Special Education) :–

विशिष्ट शिक्षा के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

(1) व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर शिक्षा दी जाये।
(2) शारीरिक रूप से बाधित सभी बच्चों को निःशुल्क शिक्षा मिलनी चाहिये।
(3) प्रत्येक बच्चे का व्यक्तिगत रूप से मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
(4) जिन बच्चों को विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता है उन्हें विशिष्ट कार्यक्रम या विशिष्ट कक्षाओं में शिक्षा दी जा सकती है।
(5) जहाँ तक सम्भव हो शारीरिक रूप से बाधित बच्चों व सामान्य बच्चों की शिक्षा एक ही कक्षा में साथ–साथ होनी चाहिये।
(6) विशिष्ट शिक्षा में समुदाय की भागीदारी भी बहुत महत्वपूर्ण है।
(7) शिक्षक को समय–समय पर, बच्चों को प्रेरित करना चाहिये।

विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता (Need of Special Education) :–

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

⇒ विशिष्ट बच्चों की यह विशेषता होती है कि सामान्य बच्चों की तरह उनकी देखने, बोलने या समझने की क्षमता कम विकसित होती है, इसलिये उन्हें विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता होती है।

⇒ इन बच्चों विशेष निर्देशन व परामर्श की भी आवश्यकता होती है।

⇒ ये बच्चें सामान्य कक्षा में ठीक प्रकार से शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते, इसलिए इन्हें विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता होती है।

⇒ विशिष्ट शिक्षा इन बच्चों को सामाजिक समायोजन के लिए भी तैयार करती हैं।

⇒ बच्चों के लिये शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक व व्यवसायिक सेवायें भी विशिष्ट शिक्षा में उपलब्ध करायी जाती हैं।

⇒ विशिष्ट कक्षाओं में बुद्धिमान बच्चों को अग्रसर होने का अवसर दिया जाता है।

एकीकृत शिक्षा (Integrated Education) :–

एकीकृत शब्द का अर्थ है अलग हुए लोगों को जोड़ना। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य विद्यालय में शैक्षिक सुविधायें व अवसर उपलब्ध कराना ही 'एकीकृत शिक्षा' है।

इसमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सामान्य विद्यालय में ही विशेष कक्षा में पढ़ाया जाता है। विशेष कक्षा में शिक्षा ग्रहण करने के बावजूद ये बच्चें कक्षा के बाहर दूसरे कार्य सामान्य बच्चों के साथ ही करते हैं। एकीकृत शिक्षा का उद्देश्य विशेष बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा देना है। भारत में एकीकृत शिक्षा की शुरुआत 1974 में कल्याण मंत्रालय द्वारा की गई जिसको ''विकलांग बच्चों के लिये एकीकृत शिक्षा'' कहा गया (I.E.D.C.) एकीकृत शिक्षा मुख्य रूप से विद्यार्थी को समाज के अनुकूल बनाने का प्रयास करती है। एकीकृत शिक्षा चार प्रकार के सीखने के सिद्धान्त पर बल देती है–

(1) जानने के लिए सीखना
(2) करने के लिए सीखना
(3) एक साथ रहने के लिए सीखना
(4) पूरी शिक्षा के एकीकरण के लिए सीखना।

एकीकृत शिक्षा का क्षेत्र (Area of Integrated Education) :–

एकीकृत शिक्षा के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं–

⇒ सर्वप्रथम बच्चों में विकलांगता के प्रकार व मात्रा की पहचान करना।

⇒ जिला स्तर व ब्लॉक स्तर पर संसाधन केन्द्र स्थापित करना।

⇒ बच्चों के लिए शैक्षिक सुविधायें प्रदान करना।

⇒ बच्चों के लिए पुनर्वास सहायता उपलब्ध कराना।

⇒ विकलांग बच्चों को विद्यालय पूर्व प्रशिक्षण देना।

⇒ विकलांग बच्चों के माता–पिता को परामर्श देना।

⇒ विकलांग बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर तक करना।

⇒ बच्चों के लिए व्यवसायिक पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना।

⇒ बच्चों का समय–समय पर शैक्षिक व चिकित्सीय आकलन करना।

विकलांग बच्चों के लिए कुछ मुख्य सुविधायें :–

⇒ विद्यालय की ड्रेस के लिये 200/ प्रतिवर्ष।

⇒ किताबों व स्टेशनरी के लिए 400/ प्रतिवर्ष।

⇒ प्रत्येक महीने में 50/ परिवहन भत्ता।

⇒ दृष्टिबाधित बच्चों को कक्षा 5 के बाद पढ़ने वाले के लिए (रीडर अलॉवेन्स) 50/ प्रति महीना।

⇒ उपकरण के लिए 2000/ प्रत्येक वर्ष, पाँच वर्ष तक।

⇒ गंभीर रूप से गामक विकलांगता के लिए 75/ प्रति महीना।

एकीकृत शिक्षा का प्रारूप (Modes of Integrated Education) :–

एकीकृत शिक्षा कैसे दी जाती है तथा इसकी प्रक्रिया क्या है आइये जानते हैं इसके विभिन्न प्रारूपों को –

(1) संसाधन कक्ष प्रारूप

(2) परिश्रमी अध्यापक प्रारूप

(3) संयुक्त प्रारूप

(4) समूह प्रारूप

(5) सहयोगी प्रारूप

(6) द्विशिक्षण प्रारूप

(7) बहुकौशल शिक्षण प्रारूप

(1) संसाधन कक्ष प्रारूप (Resource Room Model) :–

सामान्य विद्यालय में एक विशेष कक्ष होता है जिसे संसाधन कक्ष कहते हैं। इसमें विकलांग बच्चों के लिए विशेष प्रशिक्षण हेतु विशेष सामग्री होती है जैसे– ब्रेल लेखन, पठन सामग्री, प्रशिक्षण सामग्री आदि।

(2) परिश्रमी अध्यापक प्रारूप (Itinerant Teacher Model) :–

इस प्रारूप में विकलांग बच्चे घर के पास सामान्य विद्यालय में प्रवेश लेते हैं तथा परिश्रमी अध्यापक जो कि एक विशेष अध्यापक होता है, अलग–अलग विद्यालयों में जाकर इन बच्चों को आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण देता है। इस अध्यापक के पास एक संसाधन किट होती है जिसमें इन बच्चों की विशेष आवश्यकता की पूर्ति हेतु विशेष सामग्री होती है जैसे– ब्रेल उपकरण, श्रव्य सामग्री आदि।

(3) संयुक्त प्रारूप (Combined Model) :–

इसके अन्तर्गत कई योजनायें आती हैं। इसमें किसी भी शहर/कस्बे के कुछ विद्यालय संसाधन कक्ष के आधार पर विकलांग बच्चों को शिक्षा देते हैं तथा कुछ बच्चों को परिश्रमी प्रारूप के आधार पर। यदि संसाधन कक्ष वाले विद्यालय में विकलांग विद्यार्थियों की संख्या कम होती तो इस स्थिति में संयुक्त प्रारूप उपयोगी होता है।

(4) समूह प्रारूप (Group Model) :–

इस प्रारूप में विकलांग विद्यार्थियों की शिक्षा के लिये समूह योजना होती है। इसके अन्तर्गत एक मुख्य संसाधन केन्द्र होता है जिसमें अनेक क्षेत्रीय संसाधन केन्द्र होते हैं। प्रत्येक क्षेत्रीय संसाधन केन्द्र अपने समूह के बच्चों की आवश्यकता के आधार पर शैक्षिक सुविधायें उपलब्ध कराता है। प्रत्येक क्षेत्रीय संसाधन केन्द्र के अन्तर्गत अधिकतम 8 विकलांग बच्चे होते हैं।

जैसे– पहाड़ी स्थानों पर परिवहन के साधन उपलब्ध होने पर भी थोड़ी दूरी की तय करने में काफी समय लग जाता है, तब वहाँ पर ये प्रारूप उपयुक्त होता है।

(5) सहयोगी प्रारूप (Co-operative Model) :–

इस प्रारूप में सहयोग के आधार पर विशेष बच्चों को एकीकृत शिक्षा के अन्तर्गत सामान्य विद्यालय की कक्षाओं में शिक्षण प्रदान किया जाता है। सामान्य विद्यालय के अन्तर्गत ही एक विशेष सेल होता है। इसमें कुछ कमरे होते हैं जिनमें बच्चें शिक्षा ग्रहण करते हैं। कुछ विषयों के लिए इन बच्चों को इनकी आयु के समकक्ष कक्षा में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा जाता है।

(6) द्विशिक्षण प्रारूप (Dual Teaching Model) :–

इस प्रारूप के अन्तर्गत सामान्य शिक्षक ही विशेष शिक्षक की भूमिका निभाते हैं। जहाँ पर विशेष शिक्षक उपलब्ध नहीं होते वहाँ पर सामान्य शिक्षक को ही प्रशिक्षित करके कुछ समय के लिये तैयार किया जाता है।

(7) बहुकौशल शिक्षण प्रारूप (Multi Skilled Teaching Model) :–

इसमें एक विशेष शिक्षक एक ही विद्यालय में विभिन्न प्रकार के विकलांग बच्चों को पढ़ाता है। इसके लिए शिक्षक को बहुकौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेना चाहिये।

एकीकृत शिक्षा का महत्व (Importance of Integrated Education) :–

(1) विकलांग बच्चों के लिए महत्व :–

एकीकृत शिक्षा को विकलांग बच्चों की सुविधा व शिक्षा के लिये ही शुरु किया गया। पहले जहाँ इन बच्चों की शिक्षा विशेष विद्यालय में होती थी, जो समाज से दूर था और बच्चें अपने परिवार से दूर रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे, वहीं एकीकृत शिक्षा के शुरु होने से ये बच्चें अपने परिवार के साथ रहकर ही शिक्षा ले सकेंगे। एकीकृत शिक्षा के द्वारा बच्चों को नये दोस्त बनाने व अनुभव सांझा करने का अवसर मिलता है। इसके साथ–साथ बच्चों में आत्मविश्वास बढ़ता है। बच्चा सामाजिक गुणों को सीखता है।

(2) विकलांग बच्चों के माता–पिता के लिए महत्व :–

एकीकृत शिक्षा के माध्यम से विकलांग बच्चें हमेशा माता–पिता के सम्पर्क में रहते हैं। उनके माता–पिता को अपने बच्चों की विकलांगता का भी कम एहसास होता है। एकीकृत शिक्षा में अपने बच्चें की आयु के दूसरे बच्चे की शारीरिक या मानसिक स्थिति देखकर, अपने बच्चें में कहाँ कमी है, यह बात माता–पिता को समझने में आसानी होती है।

समावेशी शिक्षा (Inclusive Education)

हमारे देश में सभी नागरिकों को समान अवसर होने के बावजूद भी बहुत अधिक भेदभाव देखने को मिलता है। शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक आदि गुणोंके आधार पर भेदभाव किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में ये भेदभाव देखने को मिलता रहा है। कुछ बच्चों को शिक्षा के समान अवसर नहीं मिल पाते हैं, इसके कई कारण है जैसे– किसी विशेष जाति, धर्म या संप्रदाय से होना, अधिगम अक्षमता या विकलांगता का होना, शारीरिक या मानसिक रूप से सामान्य बच्चों से अलग होना आदि। इन सब समस्याओं को देखते हुए राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाओं ने बिना किस भेदभाव के सभी बच्चों को स्कूल में शामिल करने का समर्थन किया है। उनका मानना है कि ऐसी शिक्षा योजनायें व नीतियाँ लागू हों जो सभी बच्चों को समान अवसर प्रदान करें। यही सिद्धान्त शिक्षा के क्षेत्र में समावेशी शिक्षा के नाम से शुरु किया गया। समावेशी शिक्षा विभिन्नताओं को महत्व देती है।

'रविन्द्र नाथ टैगोर' के अनुसार– ''समस्या मतभेदों का सफाया करने की नहीं है बल्कि मतभेदों को बरकरार रखकर कैसे एकजुट हुआ जाये, की है।''

बच्चों को समूह को एक एकाई (Unit) के रूप में मानकर, उनकी व्यक्तिगत आवश्यकता को ध्यान में रखकर, उन्हें अच्छी शिक्षा प्रदान करने के विचार को ही समावेशी शिक्षा कहते हैं। समावेशी शिक्षा उन सभी बच्चों को शिक्षा देने का तरीका है जो शिक्षा प्रणाली में उपेक्षित (Ignored) होने के कारण, शिक्षा छोड़ने की कगार पर हैं। माता–पिता, समाज, शिक्षक, अधिकारी व पॉलिसी बनाने वाले लोग, इन सभी को इन बच्चों की विभिन्न आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील (Sensitive) होना होगा।

समावेशी शिक्षा की आवश्यकता तथा महत्व (Need and Importance of Inclusive Education) :–

समावेशी शिक्षा के महत्व व आवश्यकता को समझने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में समावेशी शिक्षा के महत्व को समझते हैं–

शिक्षा :–

मनोवैज्ञानिक व शिक्षाविदों का यह मानना है कि समावेशित वातावरण में बच्चें शैक्षिक व सामाजिक रूप से बेहतर प्रदर्शन करते हैं। बच्चें एक–दूसरे से अपने ज्ञान व अनुभव को साझा करते हैं।

मानवाधिकार (Human Right) :–

सभी बच्चों को साथ में सीखने का अधिकार भी है और आवश्यकता भी। कोई भी अधिगम क्षमता, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण बच्चों में भेद–भाव नहीं कर सकता है।

सामाजिक (Social) :–

समावेशन में बच्चें आपस में अच्छे संबंध बनाते हैं तथा उनमें मैत्री क्षमता विकसित होती है।

सहपाठियों के बीच आपसी सम्मान, समझ व करुणा बढ़ती है तथा बच्चों में आत्मविश्वास बढ़ता है।

मनोवैज्ञानिक (Psychological) :–

बच्चों में समावेशन के द्वारा समूह में सुरक्षित होने की भावना विकसित होती है। बच्चें मानसिक रूप से Positive रहते हैं। इसमें एक ऐसा वातावरण तैयार किया जाता है जिससे बच्चा पूर्ण रूप से विकसित हो सके।

समावेशी शिक्षा के लाभ (Advantage of Inclusive Education) :–

⇒ समावेशी शिक्षा एक समावेशित समाज की नीव डालती है जो विविधता को स्वीकारता है।

⇒ समावेशी शिक्षा बच्चों को उनके परिवारों और समुदायों के साथ रहने के लिए प्रोत्साहित करती है।

⇒ यह शिक्षा गरीबी तथा वंचित वर्ग के चक्र को तोड़ने में मदद करती है।

⇒ समाज में फैले भेदभाव को ये दूर करने का प्रयास करती है।

⇒ यह शिक्षा राष्ट्र के विकास में सभी लोगों के योगदान पर बल देती है।

⇒ यह शिक्षा विकलांग बच्चों द्वारा अपनी कमी के प्रति हीनता को भी कम करने का प्रयास करती है।

⇒ यह शिक्षा बच्चों को एक सामान्य वातावरण देने का प्रयास करती है जिससे बच्चें सामान्य रूप से विकसित हो सकें।

⇒ समावेशी शिक्षा के द्वारा बच्चों को मुख्यधारा (Main Stream) में लाने का प्रयास किया जाता है अर्थात् बच्चों को सामान्य बच्चों की भाँति समाज से जोड़ना।

समावेशी शिक्षा व एकीकृत शिक्षा में अन्तर (Difference Between Special Education and Integrated Education) :–

वैसे तो दोनों ही शिक्षाओं का उद्देश्य विकलांग बच्चों को सामान्य स्कूलों में स्थान देना है लेकिन दोनों की कार्यशैली थोड़ी अलग है। एकीकृत शिक्षा में विकलांग बच्चों को सामान्य स्कूल में 'फिट' करने पर जोर है। जैसे– कम सुनने वाले बच्चों को सुनने में सहायक यंत्र लगाना, सुनने व बोलने का प्रशिक्षण संसाधन कक्ष में देना।

समावेशी शिक्षा एक कार्य करने का तरीका है व नई सोच लेकर आता है जिसमें सभी बच्चों के लिए सभी संदर्भों (References) को ध्यान में रखा जाता है। समावेशन बच्चों में परिवर्तन लाने के बजाय व्यवस्था (System) में परिवर्तन लाने पर जोर देता है। इसमें विकलांग बच्चों के अतिरिक्त और भी बच्चों के समूह जिन्हें शिक्षा पाने में कोई खतरा है, सामान्य शिक्षा वाली कक्षा के सदस्य होते हैं।

एकीकृत शिक्षा	समावेशी शिक्षा
विकलांग बच्चों को सामान्य स्कूलों में स्थान देना	विकलांग बच्चों के साथ–साथ जिन बच्चों को शिक्षा पाने में खतरा है, उन्हें भी स्थान देना।
विकलांग का पृथक्करण नहीं करना।	विकलांग बच्चों, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रूप से वंचित बच्चों का पृथक्करण नहीं।
बच्चों को मौजूदा शिक्षा व्यवस्था के लिए तैयार करना	शिक्षा व्यवस्था में आवश्यक बदलाव करना।
अतिरिक्त सहायता के लिए बच्चों को संसाधन कक्ष में भेजना	बच्चे की जरूरत की सब चीजें उसे सामान्य कक्षा में मिलेगी।
बच्चे की अक्षमताओं को उजागर करना	बच्चें को कभी महसूस न होने देना कि वे अक्षम हैं।

समावेशी शिक्षा शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Inclusive Education) :–

समावेशी शिक्षा को संचालित करते समय ऐसे बहुत से कारक हैं जो इसे प्रभाावित करते हैं जैसे–

(1) शिक्षार्थिया में विविधता (Diversity in Students) :–

एक ही आयु के एक बच्चों के समूह में भी बहुत विविधता होती है। उनकी प्रेरणा, सीखने की क्षमता, रूचि, अभिवृत्ति आदि एक दूसरे से भिन्न होती है। इस प्रकार के समूह को भी एक साथ शिक्षा देने में काफी बातों को ध्यान में रखा जाता है।

(2) शिक्षकों की तैयारी :–

शिक्षक को बच्चों की आवश्यकता को पहचानना बहुत आवश्यक है। इसके लिए शिक्षकों को पूर्ण प्रशिक्षण व तैयारी की आवश्यकता होती है।

(3) भौतिक सुविधायें :–

समावेशी शिक्षा के लिए कक्षा का स्थान, जगह व व्यवस्था एक महत्वपूर्ण कारक हैं। कई स्कूलों में अधिगम के लिए उपयुक्त मूल सुविधायें भी उपलब्ध नहीं हैं। जैसे– स्वच्छ कमरें, खेलने का मैदान, पाठ्य सहगामी वस्तुयें आदि।

(4) कुछ विद्यालयों में मनोवैज्ञानिक, ऑडियोलॉजिस्ट, भाषा पैथोलोजिस्ट, फिजियोथैरेपिस्ट आदि बच्चों के लिए उपलब्ध नहीं होते हैं।

(5) हमारी परीक्षा व्यवस्था कठोर होने के कारण बच्चों का आकलन ठीक से नहीं हो पाता है। विविध मूल्यांकन व्यवस्था की जरूरत है।

'एल्बर्ट आइन्सटाइन' के अनुसार–

''हर कोई प्रतिभाशाली हैं परंतु यदि मछली की पेड़ पर चढ़ने की क्षमता का मूल्यांकन होगा तो वह पूरा जीवन यह मानती रहेगी कि वह बुद्धू है।''

समावेशी शिक्षा की विशेषतायें (Characteristics of Inclusive Education):–

समावेशी शिक्षा की निम्नलिखित विशेषतायें हैं–

(1) समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत अपंग बच्चों को कम से कम प्रतिबन्धित रखने का प्रयास किया जाता है जिससे वे सामान्य बच्चों की तरह जीवन जी सकें।

(2) इस शिक्षा में विकलांग तथा वंचित वर्ग के बच्चों को भी सामान्य बच्चों की तरह महत्वपूर्ण माना जाता है।

(3) समावेशी शिक्षा के माध्यम से अपने अधिकारों से वंचित बच्चों को उनके अधिकार देने का प्रयास किया जाता है।

(4) समावेशी शिक्षा में माता–पिता, शिक्षक तथा समाज की सामूहिक रूप से भूमिका होती है।

(5) इस शिक्षा के अन्तर्गत शारीरिक रूप से बाधित बच्चें व सामान्य बच्चें सामान्य कक्षा में ही शिक्षा ग्रहण करते हैं।

(6) समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत बच्चों को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया जाता है।

समावेशी शिक्षा के सिद्धान्त (Principle of Inclusive Education) :–

समावेशी शिक्षा का मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक बच्चे को समान अवसर, अधिकार व भागीदारी मिलनी चाहिए। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

⇒ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को अतिरिक्त सहायता प्रदान करना।

⇒ समुदाय द्वारा सहायता व भागीदारी सुनिश्चित करना।

⇒ विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति सभी की जिम्मेदारी व उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना।

⇒ प्रत्येक बच्चे को यह अवसर मिल सके कि वह चुनौतियों का सामना कर सके व जिम्मेदारी ले सके।

शैक्षिक समावेशन की पहचान (Recognition of Education Inclusive) :–

शैक्षिक समावेशन के लिए बच्चों को निम्न आधार पर पहचाना जा सकता है–

⇒ जब बच्चे को अपने कार्य करने में कठिनाई होती है।

⇒ जब बच्चा कक्षा में प्रश्नों के उत्तर सही से नहीं दे पाता है।

⇒ बच्चा दिये गये अनुदेशनों (Instructions) को समझ नहीं पाता है।

⇒ बायें (Left) व दायें (Right) का अन्तर न समझ पाना।

⇒ पढ़ते समय लाइन या शब्दों को छोड़ देना।

⇒ बच्चे का बहुत उत्तेजित (Excicted) होना।

⇒ शब्दों को जोड़कर पढ़ने में कठिनाई होना।

⇒ शब्दों को उल्टा पढ़ना तथा अक्षरों का क्रम गलत कर देना।

समावेशन के लिये आवश्यक सामग्री उपकरण, विधियाँ, TLM :–

समावेशन के लिए किन–किन विधियों, उपकरणों व सामग्री का प्रयोग किया जाता है, यह जानना भी बहुत आवश्यक है। आइये जानते हैं–

(1) पाठ्यक्रम का अनुकूलन (Adaptation of Curriculum) :–

समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत विशेष बच्चों के लिए पाठ्यक्रम को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाये जिससे बच्चों को सीखने में आसानी हो। पाठ्यक्रम को सरल से कठिन की ओर व्यवस्थित किया जाये।

(2) योजना विधि (Project Method) :–

जिन बच्चों को सीखने में समस्या होती है उन्हें इस विधि द्वारा सिखाया जा सकता है। बच्चों के जीवन से सम्बन्धित कुछ कार्यों को योजना के रूप में दें तथा बच्चें उस कार्य को करने का प्रयास करें।

(3) कालांश की अवधि (Duration of Periods) :–

विशेष बच्चों को ध्यान में रखते हुये ज्यादा लम्बे कालांश नहीं होने चाहिये। बच्चें थकान का अनुभव करने लगते हैं। इसी प्रकार पाठ्यवस्तु को भी एक साथ प्रस्तुत न करके छोटे–छोटे भागों में सिखाया जाये।

(4) **करके सीखना (Learning by doing) :–**

बच्चों को अधिक से अधिक करके सीखने का अवसर दें। करके सीखना सबसे अधिक प्रभावशाली माना जाता है। खुद से करने पर बच्चा रुचिपूर्ण ढंग से सीखता है।

(5) **पुनरावृत्ति व अभ्यास (Repetition And Practice) :–**

जो बच्चें सीखने में अक्षम हैं अर्थात् देर से सीख पाते हैं, उनके लिए पाठ्यवस्तु का अभ्यास बहुत ही आवश्यक है। बहुत ज्यादा समय तक किसी विषयवस्तु को याद रख पाना इन बच्चों के लिये थोड़ा कठिन होता है।

(6) **व्यक्तिगत शिक्षा (Individualisation) :–**

बच्चों की आवश्यकता व रुचि के अनुसार उन्हें अपने तरीके से भी सीखने का अवसर दिया जाये साथ–साथ उन्हें समूह में सीखने के भी अवसर दिये जायें जिससे वे सामाजिक गुणों को सीख सकें।

(7) बच्चों में अधिगम को प्रेरित करने के लिए उन्हें समुचित साधन उपलब्ध कराये जाने चाहिये। जैसे–अधिगम सामग्री, सहायक उपकरण जैसे– व्हीलचेयर, ब्रेल आदि।

(8) बच्चों को मनोवैज्ञानिक व सामाजिक रूप से मजबूत बनाने के लिये विद्यालय में परामर्श व निर्देशन की भी व्यवस्था होनी चाहिये।

(9) बच्चों की आवश्यकताओं के अनुसार विशिष्ट कक्षाओं का प्रबन्ध किया जाये।

(10) इन सबमें शिक्षक की भूमिका सबसे अहम है। शिक्षक को बच्चों के प्रति मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखना चाहिये जिससे बच्चें अपनी समस्या को उनसे आसानी से बता सकें।

(11) **ब्रेल लिपि :–**

यह दृष्टिबाधित बच्चों के पढ़ने की लिपि है जिसे वो हाथ से छूकर पढ़ते हैं। दृष्टिबाधित बच्चों के अधिगम को सुगम बनाने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

(12) पूर्ण रूप से श्रवणबाधित बच्चों के लिए नोट लेने वाला योग्य सहायक प्रदान किया जाना चाहिये। इस सहायक को विषय का अच्छा ज्ञान होना चाहिए, शैक्षिक उपलब्धि अच्छी होनी चाहिए।

विशेष बच्चों की शिक्षा से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय नीतियाँ व कानून (International Policies And Laws Related To Education Of Special Children) :–

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ का घोषणा पत्र :–

संयुक्त राष्ट्र संघ ने विकलांग व्यक्तियों/बच्चों के अधिकारों के लिए 9 दिसम्बर 1975 को एक घोषणा पत्र जारी किया। यह पत्र विकलांग बच्चों के मानव अधिकारों की रक्षा के लिए लाया गया–

⇒ विकलांग व्यक्ति अन्य सामान्य लोगों के समान ही सभी मूलभूत अधिकारों के योग्य हैं, चाहे उनकी विकलांगता का कारण या प्रकृति तथा गंभीरता कितनी भी हो।

⇒ विकलांग व्यक्ति को अपने परिवारों के साथ रहने और सभी सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने का अधिकार है।

⇒ विकलांग व्यक्तियों को सम्मानजनक जीवन जीने व क्षमता के अनुरुप नौकरी पाने का भी अधिकार है।

बच्चों के अधिकारों का अधिवेशन :–

20 नवम्बर 1989 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने बच्चों के अधिकारों पर अधिवेशन किया। इस अधिवेशन के अन्तर्गत–

⇒ इस अधिवेशन के दौरान दिये गये अधिकारों को प्रत्येक राज्य, प्रत्येक बच्चे को बिना किसी भेदभाव के प्रदान करेगा।

⇒ राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि शारीरिक या मानसिक विकलांग बच्चा संतोषजनक जीवन, समाज में जी सके।

⇒ राज्य विकलांग बच्चे के अधिकारों को पहचानते हुये उनके लिए विशेष देखभाल की व्यवस्था करें।

⇒ अधिवेशन के अनुच्छेद 43 व 44 में कहा गया है कि इस अधिवेशन में कहे गये दायित्व की राज्य द्वारा प्रगति का मूल्यांकन किया जाएगा।

सभी के लिए शिक्षा पर घोषणा पत्र :–

1990 में जोमेटिन (थाईलैण्ड) में, ''सभी के लिए शिक्षा पर विश्व सम्मेलन'' का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में 155 राष्ट्र के प्रतिनिध तथा 150 गैर–सरकारी संस्थाओं ने भाग लिया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य था शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के लिए तथा निरक्षरता हटाने के लिए उपायों पर विचार करना।

सालामांका स्टेटमेंट व विशेष शिक्षण पर कार्ययोजना :–

1994 में स्पेन के सालामांका शहर में ''विशेष आवश्यकता शिक्षण पर विश्व सम्मेलन'' का आयोजन यूनेस्को व स्पेन की सरकार ने मिलकर किया था। इस सम्मेलन में 92 देशों के सरकारी प्रतिनिधि व अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने भाग लिया था।

इस सम्मेलन में मुख्य रूप से समावेशित शिक्षा की चर्चा हुई–

⇒ स्कूल में सभी बच्चों को समावेशित किया जाये चाहे उनकी शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक या अन्य दशायें कैसी भी हों।

⇒ समावेशित दिशा–निर्देशन युक्त, सामान्य स्कूल, भेदभाव पूर्ण दृष्टिकोण से निपटने के लिए सबसे प्रभावशाली माध्यम है।

बिवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क फॉर एक्शन :–

22 मई, 2002 को एशिया पेसफिक क्षेत्र ने बिवाको मिलेनियम फ्रेमवर्क फॉर एक्शन को स्वीकार किया। इसका मुख्य उद्देश्य था 'अवरोध रहित व अधिकार आधारित एक समावेशित समाज का निर्माण करना।'

इसके सात प्राथमिक क्षेत्र हैं–

(1) विकलांग व्यक्तियों, परिवारों व अभिभावकों के संघ के स्वयं सहायता संगठन (Self Help Group)।

(2) विकलांग महिलायें

(3) शीघ्र निदान, शीघ्र हस्तक्षेप व शिक्षा

(4) स्व रोजगार सहित, प्रशिक्षण व रोजगार

(5) निर्मित वातावरण व सार्वजनिक वाहनों की उपलब्धि

(6) सूचना व संपर्क तक पहुँच जिसमें सूचना, संपर्क व सहयोगी प्रौद्योगिकी भी शामिल हो।

(7) क्षमता निर्माण, सामाजिक सुरक्षा व अविरल रोजगार कार्यक्रमों द्वारा गरीबी उन्मूलन संभव हो।

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ अधिवेशन :–

विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों पर अधिवेशन जिसको संक्षेप में U.N.C.R.P.D. कहते हैं।

संयुक्त राट्र संघ महासभा ने इस संधिपत्र को 13 दिसम्बर, 2006 को हस्ताक्षर करने के लिए रखा। 82 देशों ने इस पर हस्ताक्षर किये।

⇒ अनुच्छेद 6– विकलांग महिलाओं के बारे में है जिसमें सरकार विकलांग महिलाओं के विकास व अधिकारिता के लिए सही कदम उठाये।

⇒ अनुच्छेद 7– ये विकलांग बच्चों के बारे में है जिसमें बच्चों के अधिकारों, स्वतंत्रता व अच्छे जीवन के लिए कार्य करें।

⇒ अनुच्छेद 9– इसमें कहा गया है कि विकलांगों को सशक्त करने हेतु अत्याधुनिक तकनीक से बने विशेष उपकरण उपलब्ध कराये जायें।

⇒ अनुच्छेद 10– इसमें कहा गया है कि विकलांग व्यक्तियों को भी सामान्य व्यक्तियों के समान सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार है।

⇒ अनुच्छेद 24– विकलांग बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था सरकार करे जिससे वे अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकें।

⇒ अनुच्छेद 27– प्रत्येक विकलांग व्यक्ति को हर तरह के काम जो उसके योग्य हैं, करने का अधिकार है।

राष्ट्रीय नीतियाँ और कानून (National Policies And Laws) :–

संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provision) :–

भारतीय संविधान के अनुच्छेद (Article) 14 के अनुसार कानून के सामने सभी नगरिक एक समान हैं।

⇒ अनुच्छेद 15 के अनुसार राज्य किसी भी नागरिक को धर्म, नस्ल, लिंग, जाति या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

⇒ अनुच्छेद 45 के अनुसार राज्य 6 वर्ष तक की आयु वाले बच्चों को प्रारम्भिक बाल्यावस्था (Early Childhood) देखभाल व शिक्षा देने का प्रयास करें।

⇒ भारतीय संविधान के 86 वें संशोधन 2002 के द्वारा अनुच्छेद 21 (1) में 6–14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है।

⇒ शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 यह सुनिश्चित करता है है कि शिक्षा प्रत्येक बच्चे का अधिकार है तथा राज्य को अनिवार्य रूप से उनको ये अधिकार देने होंगे व उनसे कोई शुल्क (Charge) नहीं लिया जायेगा।

मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम (Mental Health Act) :–

मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम 1987 का उद्देश्य मानसिक रोगी व्यक्तियों की जल्दी पहचान करके उनका उपचार करना है। मानसिक रोगियों को किसी का दुर्व्यवहार न सहना पड़े। आवश्यकता होने पर देखभाल के लिए अभिभावक उपलब्ध कराया जाये।

भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम (Indian Rehabilitation Council Act):–

R.C.I. Act 1992 में पारित हुआ व 1993 में लागू हुआ। सन् 200 में इसमें संशोधन किया गया। इस अधिनियम के उद्देश्य हैं–

⇒ मान्यता प्राप्त पुनर्वास योग्यता रखने वाले व्यक्तियों की सूची केन्द्रीय पुनर्वास पंजीकरण में रखना।

⇒ पुनर्वास एवं विशेष शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान को प्रोत्साहित करना।

⇒ विकलांग व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए प्रशिक्षण नीतियों व कार्यक्रमों को संचालित किया जाये।

⇒ पूरे देश में एकरुपता लाने के लिए सभी प्रशिक्षण संस्थानों में न्यूनतम मानकों को नियमित करना।

विकलांग व्यक्तियों के लिए अधिनियम :– 7 फरवरी 1996 (लागू)

विकलांग व्यक्तियों के लिए अधिनियम 1995 में पारित हुआ था–

विकलांग व्यक्ति अधिनियम 1995। इन अधिनियम के अन्तर्गत सात विकलांगतायें आती हैं–

(1) अंधत्व (Blidness)

(2) अल्पदृष्टि (Low Vision)

(3) मानसिक रोग (Mentall Illness)

(4) श्रवण बाधा (Hearing Impairment)

(5) गामक बाधा (Locomotor Impairement)

(6) मानसिक विकलांगता (Mental Retardation)

(7) कोढ़ उपचरित (Leprosy Cured)

भारत में इस समय विकलांग लोगों को जो सुविधायें दी जाती हैं, उसके लिए जरूरी है कि वह विकलांग व्यक्ति उपर्युक्त सात विकलांगताओं में से किसी एक श्रेणी में हो तथा विकलांगता का प्रतिशत कम से कम 40% हो।

राष्ट्रीय न्यास अधिनियम (National Trust Act) :–

राष्ट्रीय न्यास अधिनियम (स्वालीनता, प्रमस्तिक पक्षाघात, मानसिक विकलांगता, व बहुविकलांगता प्रभावित लोगों के कल्याण हेतु) 1999 में पारित हुआ। इसके अन्तर्गत निम्न उद्देश्य आते हैं–

⇒ विकलांग व्यक्ति पूर्णता के साथ जी सके तथा उन्हें सशक्त किया जा सके।

⇒ विकलांग व्यक्ति के अभिभावक की मृत्यु हो जाने पर उसकी देखभाल की व्यवस्था करना।

⇒ विकलांग व्यक्तियों को समान अवसर व अधिकार देना।

विकलांग व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति :– 10 जनवरी, 2006

विकलांग व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय नीति 10 जनवरी, 2006 को पारित हुई थी। इसका निर्माण विकलांग व्यक्तियों के लिए समान अवसर व उनके अधिकारों के संरक्षण के लिए किया गया। इसके अन्तर्गत–

⇒ विकलांगता की रोकथाम के लिए कार्यक्रमों पर बल दिया गया।

⇒ पुनर्वास कार्यवाही तीन ग्रुपों में होगी।

(1) शारीरिक पुनर्वास

(2) शैक्षिक पुनर्वास

(3) आर्थिक पुनर्वास

⇒ विकलांग लोगों के बारे में नियमित रूप से आंकड़ें एकत्र करना।

⇒ विकलांग औरतों को अपने बच्चों की देखभाल करने में परेशानी होती है इसलिए सरकार को इनकी मदद करनी चाहिए।

⇒ सरकार को इन विकलांग बच्चों की देखभाल व सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहिए।

⇒ विकलांग व्यक्तियों के लिए सार्वजनिक स्थलों पर अवरोध मुक्त व सामान्य वातावरण बनाया जाये।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम (Right to Education Act) :– 01 अप्रैल, 2010 (लागू)

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में पारित हुआ। इसके अन्तर्गत 6–14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा देने की बात कही गयी जो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21A में लिखा है। इसके अन्तर्गत–

अध्याय 2– निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का अधिकार

अध्याय 3– उपयुक्त सरकार, स्थानीय प्राधिकरण व माता–पिता के कर्त्तव्यों के बारे में।

अध्याय 4– विद्यालय व शिक्षकों के उत्तरदायित्व के बारे में।

अध्याय 5– प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम व संपादन के बारे में।

अध्याय 6– बच्चों के अधिकारों के संरक्षण के बारे में।

इसमें कुल सात अध्याय हैं।

समावेशी बच्चों हेतु निर्देशन व परामर्श (Guidance and Counselling for Inclusive Children) :–

सभी बच्चों को ये अधिकार है कि वे अपनी क्षमता के अनुसार अपना विकास कर सकें। विशिष्ट बच्चों को मुख्य धारा से जोड़ने के लिए निर्देशन व परामर्श दिया जाता है।

निर्देशन (Guidance) :–

किसी भी बच्चे को उसकी क्षमताओं को समझने, उनका उपयोग करने व अपनी समस्याओं का हल निकालने में सहायता करना ही निर्देशन है। इस प्रक्रिया में दो व्यक्ति होते हैं– एक जिसे निर्देशन दिया जाता है तथा दूसरा जो निर्देशन दे रहा है। निर्देशन के द्वारा बच्चा अपनी क्षमता व योग्यता के अनुसार ज्ञान प्राप्त करता है। निर्देशन के द्वारा बच्चा अपनी समस्याओं को स्वयं हल करने के योग्य बनता है। बच्चा यदि अपनी क्षमताओं को विकसित कर लेता है तो वह समाज के विकास में अपना योगदान दे सकता है।

परिभाषायें (Definitions) :–

'जोन्स'– ''निर्देशन एक ऐसी व्यक्तिगत सहायता है जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रदान करता है ताकि व अपने जीवन के लक्ष्य को पूरा करने के लिए प्रयासरत रहे।''

'मॉरिस'– ''निर्देशन का अर्थ व्यक्ति को सहायता प्रदान करने वाली उस प्रक्रिया से है जो व्यक्ति को स्वयं अपनी क्षमताओं का पता लगाने व उन्हें विकसित करने की कोशिश करती है, जिससे व्यक्ति का सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन सार्थक हो सके।''

'स्किनर'– ''निर्देशन किसी व्यक्ति को सहायता देने की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वह अपने व दूसरों के साथ समायोजन करना सीखता है।''

'लेस्टर डी॰ क्रो'– ''निर्देशन का अर्थ किसी दूसरे पर अपने विचारों को थोपना नहीं है और न ही किसी दूसरे के लिए निर्णय (Decision) लेना है बल्कि एक योग्य व्यक्ति

द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को उसके निर्णय स्वयं लेने, अपनी क्षमताओं का सही प्रयोग करने तथा अपना स्वयं का दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता करना ही निर्देशन है।''

'चाइशोम'– ''निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति में निहित सजीव (Alive) तथा क्रियात्मक शक्तियों का विकास करना है, जिसकी सहायता से वह अपने जीवन की समस्याओं का हल आसानी से निकाल पाये।''

'रिन्कल व गिलक्रस्ट'– ''छात्रों में प्राप्त हो सकने वाले लक्ष्यों का निर्धारण व वांछित योग्यताओं का विकास करने के लिए उन्हें सहायता देना ही निर्देशन है। इसके अन्तर्गत उद्देश्यों को निर्धारित करना, अनुकूल अनुभवों का उपयोग करना, योग्यताओं को विकसित करना तथा उद्देश्यों को प्राप्त करना आते हैं। यदि सही निर्देशन नहीं दिया जायेगा तो वह शिक्षा अपूर्ण होगी। शिक्षण व निर्देशन एक–दूसरे के पूरक (Inseparable) हैं।''

'एमरी स्ट्रप्स'– ''निर्देशन सहायता प्रदान करने की एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तिगत या सामाजिक रूप से उपयोगी क्षमताओं का विकास अधिकतम रूप से व्यक्ति में करती है।''

'डेविड वी॰ टिडमैन'– ''निर्देशन का लक्ष्य लोगों को उद्देश्यपूर्ण बनाने में, साथ ही साथ पूरी प्रक्रिया में सहायता करना है।''

'गुड'– ''निर्देशन व्यक्ति के दृष्टिकोणों तथा उसके बाद के व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्य से स्थापित आपसी सम्बन्धों का एक प्रक्रम है।''

'मायर्स'– ''व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों व अनुभव से प्राप्त क्षमताओं को विकसित करने व बनाये रखने का प्रयास ही निर्देशन है। निर्देशन की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति अपने व समाज के लिए अपनी योग्यताओं का उपयोग करता है।''

⇒ निर्देशन वह प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति अपनी मानसिक क्षमताओं का प्रयोग करके दूसरे व्यक्ति को सही मार्ग पर अग्रसर करता है, उसमें निहित क्षमताओं के साथ। किन्तु, वह स्वयं अपनी क्षमता को सही दिशा देने में असमर्थ है।''

निर्देशन के उद्देश्य (Objective of Guidance) :–

किसी भी बच्चे या व्यक्ति को जब निर्देशन दिया जाता है, तो उसका कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होता है। आइये उसकी चर्चा करते हैं–

⇒ निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति को अपने निर्णय स्वयं लेने के लिए सक्षम बनाना है।

⇒ सही निर्देशन के अभाव में शिक्षण प्रक्रिया भी अधूरी रहती है।

⇒ निर्देशन में बच्चे की योग्यताओं व आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाता है।

⇒ बच्चे के विकास में निर्देशन का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

⇒ निर्देशन के द्वारा बच्चा अपनी समस्याओं का हल करने में सक्षम होता है।

⇒ निर्देशन के द्वारा बच्चा अपनी अधिकतम क्षमता का विकास कर सकता है।

निर्देशन के प्रकार (Types of Guidance) :–

निर्देशन किस प्रकार का होगा यह समस्या पर निर्भर करता है। 'जोन्स' ने निर्देशन को आठ भागों में बांटा है–

(1) स्वास्थ्य व शारीरिक विकास से सम्बन्धित
(2) व्यक्तित्व सम्बन्धी
(3) घर व परिवार सम्बन्धित
(4) अवकाश के समय से सम्बन्धित
(5) धार्मिक
(6) सामाजिक
(7) व्यवसायिक
(8) विद्यालय सम्बन्धित

'मेयर्स' के अनुसार–

(1) व्यवसायिक निर्देशन
(2) शैक्षिक निर्देशन

(3) नागरिकता निर्देशन

(4) सामुदायिक सेवा निर्देशन

(5) स्वास्थ्य निर्देशन

(6) नेतृत्व निर्देशन

(7) सामाजिक व नैतिक निर्देशन

(8) मनोरंजनात्मक निर्देशन

सामान्य रूप से निर्देशन को चार भागों में बाँटा जाता है–

(1) शैक्षिक निर्देशन

(2) व्यवसायिक निर्देशन

(3) व्यक्तिगत निर्देशन

(4) सामूहिक निर्देशन

(1) शैक्षिक निर्देशन (Educational Guidance) :–

शैक्षिक निर्देशन शिक्षा व विद्यालय से सम्बन्धित है। इसके माध्यम से विद्यार्थी अपनी प्रतिभा का अधिकतम उपयोग कर पाते हैं। इसके अन्तर्गत विद्यार्थी के शैक्षिक समायोजन में आने वाली समस्याओं के समाधान को रखा जाता है। विद्यार्थी जीवन में आने वाली ज्ञान प्राप्ति से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने में जब हम सहायता करते हैं तब यह प्रक्रिया शैक्षिक निर्देशन कहलाती है।

परिभाषायें (Definitions) :–

'किट्सन'– ''शिक्षा का वैयक्तिकरण करने का प्रयास ही निर्देशन है।''

'जोन्स'– ''शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध छात्रों को प्रदान की जाने वाली उस मदद से है जो उन्हें विद्यालयों व पाठ्यक्रमों के जीवन से सम्बद्ध चुनावों व समायोजन के लिए दी जाती है।''

(2) व्यवसायिक निर्देशन (Professional Guidance) :–

व्यवसायिक निर्देशन बच्चों के भावी जीवन के लिए दिया जाता है। यदि वर्तमान समय की बात की जाये तो शिक्षा ग्रहण करने का एक मुख्य उद्देश्य जीविकोपार्जन करना भी है। बच्चों की योग्यता, रुचि व क्षमता के अनुसार उन्हें सही दिशा में निर्देशन देना है। व्यवसायिक निर्देशन द्वारा व्यक्ति उपयुक्त व्यवसाय का चयन कर पाता है। यह व्यक्ति को व्यवसाय के चुनाव, उसके लिए तैयार होना व आगे बढ़ने में सहायता करने की प्रतिक्रिया है।

परिभाषायें (Definitions) :–

'क्रो एण्ड क्रो'–

''व्यवसायिक निर्देशन की व्याख्या सामान्य रूप से विद्यार्थी को व्यवसाय का चयन, तैयारी व विकास करने वाली प्रक्रिया के रूप में की जाती है।''

'मेसर्स'–

''निर्देशन किसी व्यक्ति को व्यवसाय में समायोजन करने, मानव शक्ति व क्षमता का उपयोग का उपयोग करने में सहायता करने वाली व समाज के आर्थिक विकास को सुगम बनाने की एक प्रक्रिया है।''

(3) व्यक्तिगत निर्देशन (Personal Guidance) :–

किसी भी प्रकार का निर्देशन जो किसी व्यक्ति विशेष को अकेले में दिया जाता है उसे व्यक्तिगत निर्देशन कहते हैं।

'पैट्रसन' के अनुसार–

''व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए जो निर्देशन प्रदान करते हैं उसे व्यक्तिगत निर्देशन कहते हैं।''

व्यक्तिगत निर्देशन के दो प्रकार निर्धारित किये जाते हैं–

(1) व्यक्तिगत रूप से प्रदान किया जाने वाला निर्देशन।

(2) व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए प्रदान किया जाने वाला निर्देशन।

(4) सामूहिक निर्देशन (Collective Guidance) :–

किसी भी प्रकार का निर्देशन यदि समूह में दिया जाये तो उसे सामूहिक निर्देशन कहा जाता है। वे सभी समस्यायें जो सामूहिक रूप से समाधान के योग्य होती है उनके लिए दिया जाने वाला निर्देशन सामूहिक निर्देशन कहलाता है।

निर्देशन की विधियाँ (Methods of Guidance) :–

व्यक्तिगत रूप से शैक्षिक निर्देशन के लिए व्यक्ति के बारे में निम्नलिखित सूचनायें प्राप्त करना आवश्यक हैं–

⇒ बौद्धिक स्तर (Intelligence level)
⇒ मानसिक योग्यतायें (Mental Abilities)
⇒ रुचि (Interest)
⇒ व्यक्तित्व (Personality)
⇒ स्वास्थ्य (Health)
⇒ अभिवृत्ति (Attitude)

ये सभी सूचनायें प्राप्त करने के बाद पाठ्य–वस्तु, स्कूल आदि के बारे में सूचनायें प्राप्त की जाती हैं। इन सूचनाओं को एकत्र करके निर्देशन दिया जाता है।

सामूहिक शैक्षिक निर्देशन विधि :–

सामूहिक शैक्षिक निर्देशन के लिए आवश्यक सामग्री है–

⇒ मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Test)

⇒ अनुस्थापन वार्ता (Orientation Talk)

⇒ विद्यालय से जानकारी

⇒ परिवार से जानकारी

⇒ बच्चे का साक्षात्कार (Interview)

⇒ पार्श्व चित्र का निर्माण (Formatin of Profile)

⇒ अनुवर्ती अध्ययन (Follow up study)

⇒ निर्देशन (Guidance)

ये सब जानकारी एकत्र करके सामूहिक शैक्षिक निर्देशन किया जा सकता है।

निर्देशन की आवश्यकता व क्षेत्र (Scope And Needs Of Guidance) :–

⇒ व्यक्तिगत व सामाजिक विकास के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है।

⇒ शैक्षिक दृष्टिकोण के लिए आवश्यक है।

⇒ मनोवैज्ञानिक रूप से सशक्त होने के लिए निर्देशन आवश्यक है।

⇒ आर्थिक दृष्टिकोण से भी निर्देशन की आवश्यकता है।

⇒ अपनी क्षमताओं व योग्यताओं को पहचानने के लिए भी निर्देशन बहुत महत्वपूर्ण है।

परामर्श (Counselling) :–

परामर्श दो लोगों के बीच व्यक्तिगत सम्पर्क होता है जिसमें परामर्शप्रार्थी, एक प्रशिक्षित व अनुभवी व्यक्ति के साथ कार्य करके अपनी समस्याओं का समाधान ढूँढता है। परामर्शप्रार्थी के सम्बन्ध में सभी जानकारी एकत्र करके तथा उसकी समस्या को जानकर उसे प्रत्यक्ष रूप से सहायता दी जाती है। परामर्श का प्रमुख उद्देश्य किसी भी व्यक्ति या विद्यार्थी में आत्मबोध (Self realization) व सामंजस्य (Consistency) की योग्यता का विकास करना है। इसमें समाधान की खोज परामर्शप्रार्थी ही करता है। परामर्श को एक त्रिध्रुवीय (Tripolar) प्रक्रिया कहा जाता है, जिसके तीन अंग हैं– लक्ष्य, परामर्शदाता व परामर्शप्रार्थी। परामर्श की सफलता के लिए उसमें निम्नलिखित चार आधारभूत (Basic) मान्यताओं का होना आवश्यक है–

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY

(1) परामर्शदाता का अनुभवी होना।

(2) छात्र का परामर्श के लिए इच्छुक होना।

(3) छात्र/व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए।

(4) परामर्श की सफलता के लिए उचित वातावरण होना आवश्यक है।

परामर्श के सोपान (Steps of Counselling) :–

परामर्श के मुख्य सोपान निम्नलिखित है :–

⇒ पहला सोपान है– व्यक्ति की सहायता के लिए आना।

⇒ दूसरे सोपान में यह जाना जाता है कि परामर्शप्रार्थी को क्या सहायता दी जा सकती है।

⇒ तीसरे सोपान में परामर्शदाता, परामर्शप्रार्थी को प्रोत्साहित करता है।

⇒ चौथे सोपान में प्रार्थी की भावनाओं को परामर्शदाता द्वारा समझा जाता है।

⇒ पांचवे सोपान में प्रार्थी अपनी बुद्धि द्वारा अपनी समस्या को समझने का प्रयास करता है।

⇒ छठे सोपान में समस्या के सम्भावित हल पर विचार किया जाता है।

⇒ सातवें सोपान में समस्या को बारीकी से समझने का प्रयास किया जाता है।

⇒ अन्तिम सोपान में प्रार्थी में समाधान करने की क्षमता का विकास हो जाता है और उसे सहायता की आवश्यकता नहीं होती।

परिभाषायें (Definitions) :–

'रैन'– "परामर्श दो लोगों के बीच एक ऐसा उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध है जिसमें प्रार्थी की आवश्यकताओं की प्रकृति के साथ प्रक्रिया भी बदलती है। इसमें प्रार्थी व परामर्शदाता की आपसी सहभागिता के द्वारा प्रार्थी की स्वयं स्पष्टता (Self Clarification) व स्वयं निर्धारण (Self-determination) पर बल दिया जाता है।"

'काल रोजर्स'– ''परामर्श एक ऐसा संरचित– स्वीकृत (Structured-Permissive) सम्बन्ध है, जो प्रार्थी को स्वयं को समझने में मदद करता है जिससे वह नये ज्ञान का सृजन करके अपना लक्ष्य प्राप्त कर सके।''

'रॉबिन्सन'– ''परामर्श के अन्तर्गत दो व्यक्तियों की ऐसी परिस्थिति आती है जिसमें प्रार्थी को अपने व वातावरण के साथ समायोजन करने में सहायता दी जाती है।''

'एरिक्सन'– ''परामर्श व्यक्ति का व्यक्ति से एक ऐसा सम्बन्ध है जिसमें एक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरे व्यक्ति से सहायता लेता है।''

परामर्श के उद्देश्य (Aim of Counselling) :–

परामर्श देने के कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होते हैं, आइये जानते हैं :–

(1) आत्म–स्वीकृति (Self-acceptance) :–

आत्म–स्वीकृति परामर्श का एक मुख्य उद्देश्य है जो व्यक्ति को उसकी प्रतिभा को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है। किसी भी प्रकार से स्वयं को कम नहीं आंकना है।

(2) आत्म–ज्ञान (Self-knowledge) :–

व्यक्ति को अपने बारे में जानने, अपनी योग्यता को पहचानने की आवश्यकता होती है। परामर्श के द्वारा व्यक्ति को खुद को पहचानने में सहायता मिलती है। परामर्श साक्षात्कार द्वारा व्यक्ति को स्वयं को जानने में मदद मिलती है।

(3) सामाजिक समंजन (Social Harmony) :–

कुछ समस्यायें व्यक्ति को समाज के साथ समायोजन न कर पाने के कारण भी होती है। परामर्श द्वारा इस प्रकार के व्यक्ति में उदारता व मित्रता आदि सामाजिक गुणों का विकास किया जा सकता है।

परामर्श प्रक्रिया के पद (Steps in Counselling Process) :–

परामर्श प्रक्रिया के लिए 'विलियमसन' व 'डरले' ने 6 पदों की चर्चा की है–

(1) विश्लेषण (Analysis) :–

इसके अन्तर्गत तथ्यों का संकलन किया जाता है ताकि प्रार्थी का अध्ययन किया जा सके।

(2) संश्लेषण (Synthesis) :–

संश्लेषण के अन्तर्गत एकत्र की गई जानकारी को संगठित किया जाता है।

(3) निदान (Diagnosis) :–

इसके अन्तर्गत समस्या के कारणों के बारे में निष्कर्ष निकाला जाता है।

(4) पूर्व अनुमान (Prognosis) :–

निदान के उपयोग के बारे में कथन देने को पूर्व–अनुमान कहा जाता है।

(5) परामर्श (Counselling) :–

इसके अन्तर्गत परामर्शदाता व प्रार्थी द्वारा उठाये गये कदम आते हैं।

(6) अनुवर्तन (Follow-up) :–

परामर्शदाता द्वारा दी गई सहायता या सेवाओं का मूल्यांकन इसमें किया जाता है।

परामर्श के प्रकार (Types of Counselling) :–

परामर्श को तीन प्रकारों में बाँटा जाता है–

(1) निर्देशात्मक परामर्श (Directive Counselling)

(2) अनिर्देशात्मक परामर्श (Non-directive Counselling)

(3) समन्वित या संकलनात्मक परामर्श (Elective Counselling)

(1) निर्देशात्मक परामर्श (Directive Counselling) :–

इस विचारधारा के प्रवर्तक ई0जी0 विलियमसन हैं। इसके अन्तर्गत परामर्शदाता प्रार्थी की समस्या को हल करने का दायित्व अपने ऊपर लेता है। परामर्शदाता निदान करता है तथा समस्या के उपचार के बारे में बताता है। इसमें परामर्शदाता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

निर्देशन परामर्श के सोपान (Steps) :–

निर्देशन परामर्श के छः सोपान दिये गये हैं–

(1) विश्लेषण (Analysis) :–

विश्लेषण के द्वारा परामर्श के बारे में सही जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक स्त्रोतों (Sources) द्वारा आधार–सामग्री एकत्र की जाती है।

(2) संश्लेषण (Synthesis) :–

संकलित की गई सामग्री को क्रमबद्ध व व्यवस्थित करके संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है। इसके द्वारा प्रार्थी के गुणों व स्थितियों का पता लगाया जाता है।

(3) निदान (Diagnosis) :–

इसके अन्तर्गत प्रार्थी द्वारा अभिव्यक्त समस्या के कारण व उसकी प्रकृति के बारे में निष्कर्ष निकाला है।

(4) पूर्व अनुमान (Prognosis) :–

प्रार्थी की समस्या के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जाती है।

(5) परामर्श या उपचार (Counselling or Treatment) :–

परामर्शदाता, प्रार्थी के समायोजन व पुनः समायोजन करने का प्रयास करता है।

(6) अनुवर्तन (Follow-up) :–

इसमें प्रार्थी की नयी समस्याओं के पुनः घटित होने की संभावनाओं से निपटने में सहायता की जाती है और दिया गया परामर्श कितना प्रभावशाली रहा है, इसका मूल्यांकन किया जाता है।

निर्देशात्मक परामर्श की विशेषतायें (Characterstics of Directive Counselling) :–

⇒ इस प्रक्रिया में परामर्शदाता मुख्य भूमिका निभाता है।
⇒ प्रार्थी, परामर्शदाता के अधीन कार्य करता है, न कि साथ।
⇒ वह प्रार्थी को सलाह देता है।
⇒ इस प्रक्रिया का मुख्य बिन्दु समस्या है।
⇒ इस परामर्श में प्रयोग किये जाने वाली विधियाँ प्रत्यक्ष, व्याख्यात्मक व प्रभावी होती है।
⇒ यह परामर्श व्यक्ति के बौद्धिक पक्ष पर अधिक बल देता है।

निर्देशात्मक परामर्श के दोष (Flaws of Directive Counselling) :–

⇒ इस परामर्श में प्रार्थी स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर पाता है।
⇒ इसमें स्वयं के अनुभवों व दृष्टिकोणों का अभाव रहता है।
⇒ परामर्शदाता, प्रार्थी को भविष्य में गलतियों को करने से बचाने में भी असमर्थ रहता है।
⇒ जानकारी के अभाव के कारण, गलत परामर्श सम्भव है।

(2) अनिर्देशात्मक परामर्श (Non- Directive Counselling) :–

यह परामर्श, प्रार्थी केन्द्रित होता है। प्रार्थी को बिना किसी प्रत्यक्ष निर्देशन के, स्वयं अपने विवेक द्वारा निर्णय लेने की ओर अग्रसर किया जाता है। इस परामर्श को प्रचलित करने का श्रेय कार्ल आर रोजर्स को जाता है। इसमें प्रार्थी, परामर्शदाता की सहायता से समस्या को समझता है व उसका मूल्यांकन करता है।

अनिर्देशात्मक परामर्श के सोपान (Steps of Non-Directive Counselling):–

(1) वार्तालाप (Conversation) :–

इसमें प्रार्थी व परामर्शदाता के बीच विभिन्न विषयों पर बातचीत होती है। परामर्शदाता का यह प्रयास रहता है कि वह प्रार्थी के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करे जिससे प्रार्थी बिना किसी संकोच के अपनी बात कह सके।

(2) जाँच पड़ताल (Probing) :–

प्रार्थी की व्यक्तिगत समस्या, परिस्थिति आदि की विस्तार से जाँच–पड़ताल की जाती है।

(3) संवेगात्मक अभिव्यक्ति (Emotional Release) :–

प्रार्थी की व्यवस्था, भावना व मानसिक तनाव को अभिव्यक्त करने का अवसर देना चाहिए।

(4) परोक्ष रूप से प्रदान किये गए सुझावों पर चर्चा (Discussion on Indirectly Given Suggestion) :–

इसमें प्रार्थी, परामर्शदाता द्वारा दिये गये सुझावों को एक आलोचनात्मक दृष्टि से देखता है।

(5) योजना का प्रतिपादन (Project Formulation) :–

प्रार्थी को अपनी समस्या का निदान प्राप्त करने के लिए योजना बनाने का अवसर दिया जाता है।

(6) योजना का क्रियान्वयन व मूल्यांकन (Project Implementation and Evaluation) :–

इसमें प्रार्थी द्वारा बनाई गई योजना को क्रियान्वित किया जाता है तथा उसकी प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है।

अनिर्देशात्मक परामर्श की विशेषतायें (Characteristics of Non-directive Counselling) :–

⇒ यह परामर्श प्रार्थी केन्द्रित है।

⇒ इसमें परामर्शदाता सबसे अधिक निष्क्रिय होता है।

⇒ यह इस सिद्धान्त पर आधारित कि व्यक्ति में इतनी क्षमता होती है जिससे कि उसकी वृद्धि और विकास हो सके ताकि व व्यक्ति वास्तविकता में परिस्थितियों का सामना कर सकें।

⇒ इसके द्वारा मनोवैज्ञानिक समायोजना में भी सुधार होता है।

⇒ इसमें प्रार्थी का व्यवहार संवेगात्मक रूप से अधिक परिपक्व माना जाता है।

⇒ इसमें परामर्शदाता का सामान्य लक्ष्य प्रार्थी के स्वयं के संगठन और कार्यशीलता में परिवर्तन लाना है।

अनिर्देशात्मक परामर्श की सीमायें (Flaws of Non-Directive Counselling) :–

⇒ यह परामर्श मनोविश्लेषण की तरह गहरा नहीं होता है।

⇒ इसमें भूतकाल के बारे में कोई खोज नहीं, कोई सुझाव नहीं, पुनः शिक्षा का कोई प्रयास नहीं होता।

⇒ इसके अन्तर्गत बहुत सी परामर्श–परिस्थितियाँ सफलतापूर्वक नहीं आती है।

⇒ यह अधिक समय खर्च करने वाली प्रक्रिया है।

⇒ यह परार्श विद्यालयों में प्रयोग करना बहुत मुश्किल है।

(3) समन्वित परामर्श (Elective Counselling) :–

इसके अन्तर्गत निर्देशात्मक व अनिर्देशात्मक दोनों परामर्श की अच्छी बातों को ग्रहण किया गया है। इस परामर्श के प्रवर्तक एफ0सी0 थोर्न हैं। इसमें व्यक्ति की आवश्यकताओं व व्यक्तित्व का अध्ययन परामर्शदाता द्वारा किया जाता है। उसके बाद वह उन प्रविधियों का चयन करता है जो व्यक्ति के लिए उपयोगी है। इसमें परामर्शदाता न तो अधिक सक्रिय होता है और न ही अधिक निष्क्रिय।

इसमें परामर्शदाता व प्रार्थी दोनों संयुक्त रूप से समस्या का समाधान करते हैं।

समन्वित परामर्श के सोपान (Steps of Elective Counselling) :–

समन्वित परामर्श के सोपान निम्नलिखित हैं–

(1) प्रार्थी की आवश्यकताओं व व्यक्तित्व की विशेषताओं का अध्ययन :–

इसके अन्तर्गत परामर्शदाता पहले प्रार्थी की आवश्यकताओं के बारे में जानता है व उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं के बारे में जानकारी एकत्र करता है।

(2) प्रविधियों का चयन (Selection of Techniques) :–

आवश्यकता के अनुसार प्रविधियों का चयन किया जाता है व उनका प्रयोग किया जाता है।

(3) प्रविधियों का प्रयोग :–

चयन की गई विधियों का आवश्यकता के अनुसार प्रयोग किया जाता है।

(4) प्रभावशीलता का मूल्यांकन (Evaluation of Effectiveness) :–

प्रयोग की गई प्रविधियाँ कितनी प्रभावशील रही हैं, इसका मूल्यांकन किया जाता है।

(5) परामर्श की तैयारी :–

प्रार्थी के पथ–प्रदर्शन (Guidance) के लिए आवश्यक तैयारी की जाती हैं।

(6) प्रार्थी व अन्य व्यक्ति की राय प्राप्त करना :–

परामर्श सम्बन्धी कार्यक्रम व अन्य उद्देश्यों व विषयों के बारे में तथा उससे सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों से राय ली जाती है।

संकलनात्मक परामर्श की विशेषतायें (Characteristics of Elective Counselling) :–

⇒ परामर्श के प्रारम्भ में प्रार्थी की सक्रियता वाली प्रविधियों का प्रयोग अधिक होता है व इसमें परामर्शदाता निष्क्रिय होता है।

⇒ इसके अन्तर्गत कार्य–कुशलता व उपचार प्राप्त करने को विशेष महत्व दिया जाता है।

⇒ इस परामर्श के लिए उपयोग की गई प्रविधियों के लिए परामर्शदाता में व्यावसायिक कुशलता व दक्षता का होना अनिवार्य है।

⇒ प्रार्थी को अवसर दिये जाते हैं ताकि व स्वयं समस्या का हल निकाल पाये।

संकलनात्मक परामर्श के दोष (Flaws of Elective Counselling) :–

⇒ परामर्श का यह प्रकार अस्पष्ट है।

⇒ निर्देशित व अनिर्देशित परामर्शों को मिश्रित नहीं किया जा सकता।

परामर्श के सिद्धांत (Principles of Counselling) :–

परामर्श के क्षेत्र में सैद्धान्तिक ज्ञान का विशाल भण्डार है। परामर्शकर्ता के लिए इन सैद्धान्तिक आधारों का परिचय आवश्यक है। अध्ययन की दृष्टि से इन्हें चार मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है–

(1) प्रभाववर्ती सिद्धान्त (Affectively Oriented Theory)

(2) व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behaviourally Oriented Theory)

(3) बोधात्मक सिद्धान्त (Cognitively Oriented Theory)

(4) व्यवस्थावादी प्रारूप सिद्धान्त (Systemetic Model Theory)

समूह परामर्श (Group Counselling) :–

समूह परामर्श में एक छोटे समूह के सदस्य सम्मिलित होते हैं जो अपने विशिष्ट लक्ष्यों को लेकर एकत्रित होते हैं, आपस में अपनी समस्याओं को बाँटते हैं, उसके बाद व्यवहार का आदान–प्रदान करते हैं। इस प्रकार समूह परामर्श वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्तियों का समूह उपबोधक के साथ मिलजुल–कर वैयक्तिक व अंतर्वैयक्तिक समस्याओं को दूर करने की कला सीखते हैं।

व्यक्तिगत परामर्श (Personal Counselling) :–

व्यक्तिगत परामर्श वह प्रक्रिया है जिसमें उपबोधक, उपबोध्य के साथ आमने–सामने बैठकर अधिक सक्रिय, प्रत्यक्ष, वैयक्तिक व फोकस होकर उपबोध्य अर्थात् प्रार्थी को स्वयं को पहचानने व समझने की शक्ति व समायोजन करने की क्षमता के विकास में सहायता

प्रदान करता है। परामर्शदाता, प्रार्थी की समस्याओं को समझने व उनका प्रार्थी के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को पहचानता है व उसके बाद लक्ष्य निर्धारित करके कार्य को शुरु करते हैं।

परामर्श की आवश्यकता व क्षेत्र (Need and Area of Counselling) :–

⇒ परामर्श, प्रार्थी को स्वयं को समझने व अपनी समस्या को हल करने में मदद करता है।

⇒ परामर्श में सहायता के द्वारा प्रार्थी स्वयं निर्णय लेता है।

⇒ प्रार्थी से सम्बन्धित सभी जानकारी एकत्र करके, लक्ष्यों को निर्धारित किया जाता है।

⇒ परामर्श द्वारा प्रार्थी को इस योग्य बनाया जाता है जिससे वह स्वयं अपनी समस्याओं को हल कर सके।

परामर्श में सहयोग देने वाले विभाग/संस्थायें :–

परामर्श में सहयोग देने वाले विभाग निम्नलिखित हैं–

(1) जिला चिकित्सालय
(2) मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
(3) पर्यवेक्षण व निरीक्षण तन्त्र
(4) मण्डलीय मनोविज्ञान केन्द्र (मण्डल स्तर पर)
(5) जिला शिक्षा व प्रशिक्षण संस्थान में प्रशिक्षित डाइट (DIET) मेण्टर

(1) जिला चिकित्सालय :–

जिला चिकित्सालय में जिले के अन्तर्गत आने वाले लोग, जो किसी भी बीमारी से पीड़ित हैं उनका उपचार किया जाता है। यहाँ पर बिल्कुल निःशुल्क उपचार किया जाता है।

यहाँ पर सभी टेस्ट, एक्सरे आदि की सुविधायें उपलब्ध होती हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न विभाग जैसे– बाल–रोग विभाग, नाक, कान, गले से सम्बन्धित विभाग आदि।

(2) मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश :–

मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद में स्थित है जहाँ पर मनोविज्ञान के अध्ययन से सम्बन्धित सभी सुविधायें उपलब्ध हैं। यहाँ पर बहुत से मनोवैज्ञानिक अनुसंधान (Research) करते हैं।

वर्तमान समय में मनोविज्ञान का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है।

मनोविज्ञान के अध्ययन से व्यक्ति को स्वयं को व दूसरे व्यक्तियों को समझने में मदद मिलती है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत बहुत से नियमों का प्रतिपादन किया गया है जैसे– शिक्षा, धर्म, व्यापार, साहित्य आदि से संबंधित।

मनोविज्ञान में अध्ययन की क्या भूमिका व उपयोगिता है, उसका मूल्यांकन निम्न क्षेत्रों द्वारा किया जा सकता है–

⇒ सामाजिक क्षेत्र (Social Field)
⇒ स्वास्थ्य (Health)
⇒ मनोचिकित्सा (Therapy)
⇒ आत्म ज्ञान (Self-knowledge)
⇒ बच्चों को समझने में
⇒ राजनीति में (In Politics)
⇒ व्यवहार में (Behaviour)
⇒ भावनाओं को समझने में।

(3) पर्यवेक्षण व निरीक्षण तन्त्र (Supervision and Inspection) :–

पर्यवेक्षण (Supervision) :–

पर्यवेक्षण शब्द दो शब्दों परि + अवेक्षण से मिलकर बना है जिसका अर्थ है ऐसी दृष्टि जो अत्यन्त सूक्ष्म हो अर्थात् जो चारों ओर देख पाये व अवलोकन (Observation) कर पाये।

पर्यवेक्षण के अन्तर्गत अवलोकन करके सम्बन्धित कार्य के विकास के लिए सुझाव दिया जाता है।

परिभाषायें (Definitions) :–

'किम्बाल'– ''पर्यवेक्षण सीखने की परिस्थिति व शिक्षण के लिए सहायक होता है।''

'एडम्स व डिक्के'– ''पर्यवेक्षण एक ऐसा कार्यक्रम है जिसके द्वारा शिक्षण को सुधारा जा सकता है।''

'फ्रैड सी0 अय्यर'– ''पर्यवेक्षण सभी शैक्षिक कार्यों उत्तम व गत्यात्मक (Dynamic) है। यह सर्वाधिक सृजनात्मक (Creative) है।''

'चेस्टर टी0 मैकनर्वे'– ''पर्यवेक्षण के अन्तर्गत आलोचनात्मक मूल्यांकन व निर्देशन दिया जाता है तथा इसका उद्देश्य छात्रों को शिक्षा द्वारा विभिन्न स्तरों पर योग्य बनाना है।''

पर्यवेक्षण की विशेषतायें (Characteristics of Supervision) :–

पर्यवेक्षण की विशेषतायें निम्नलिखित हैं–

⇒ पर्यवेक्षण की सहयोग की भावना द्वारा प्रेरित है। शिक्षक, प्रधानाचार्य व अन्य सम्बन्धित लोग मिलजुल कर कार्य करते हैं।

⇒ पर्यवेक्षण में नवीन व वैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जाता है।

⇒ पर्यवेक्षण के विभिन्न चरणों मे समस्या की पहचान, तथ्यों को एकत्र करना, वर्गीकरण करना, समाधान विधियों का चयन करना, व्याख्या करना आदि शामिल हैं।

⇒ पर्यवेक्षण समानता व स्वतंत्रता को महत्व देता है। पर्यवेक्षक का व्यवहार सौहार्दपूर्ण होता है।

निरीक्षण (Inspection) :–

किसी भी कार्यक्रम, परियोजना या गतिविधि की देखरेख व जाँच करना ही निरीक्षण कहलाता है। कार्यक्रम से सम्बन्धित विभिन्न जानकारी को एकत्र किया जाता है।

देखरेख का अर्थ है किसी कार्य का सूक्ष्म अवलोकन (Observation) करना कि वह कैसे आगे बढ़ रहा है।

परिभाषायें (Definitions) :–

'बार व बर्टन' के अनुसार–

"निरीक्षण के आधार पर शिक्षण में उन्नति के सभी कार्यक्रम बनाये जाते हैं।"

'डॉ॰ मुखर्जी' के अनुसार–

"वरिष्ठ अध्यापक या प्रधानाध्यापक के द्वारा किया गया मूल्यांकन ही शैक्षिक निरीक्षण कहलाता है।"

निरीक्षण की विशेषतायें (Characterstics of Inspection) :–

निरीक्षण की निम्नलिखित विशेषतायें हैं–

⇒ निरीक्षण द्वारा सीखने की क्रिया व परिस्थिति का मूल्यांकन किया जाता है।

⇒ निरीक्षण के द्वारा छात्रों के साथ–साथ शिक्षकों की भी कमियों का पता लगाया जा सकता है तथा उनमें सुधार किया जा सकता है।

⇒ निरीक्षण की प्रक्रिया में सामने वाले की क्षमताओं को पहचानना बहुत आवश्यक है।

⇒ निरीक्षण के द्वारा पाठ्यक्रम का निर्माण करने व उद्देश्य निर्धारित करने में सफलता मिलती है।

(4) मण्डलीय मनोविज्ञान केन्द्र (Psychology Centre in Division) :–

मण्डलीय मनोविज्ञान केन्द्र में अलग–अलग समस्याओं का समाधान किया जाता है जो विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित होती है। शिक्षा के क्षेत्र में इसके योगदान की चर्चा करते हैं–

⇒ बच्चों में विभिन्न अवस्थाओं जैसे– शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था आदि में विभिन्न शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व संवेगात्मक परिवर्तन होते हैं। बच्चों के विकास से सम्बन्धित, किस आयु में उन्हें किस प्रकार का ज्ञान दिया जाये, ये सब निर्धारित किया जाता है।

⇒ शिक्षण–अधिगम की पूरी प्रक्रिया में मनोविज्ञान का बहुत महत्व है। अधिगम के उद्देश्यों की प्राप्ति में मनोविज्ञान द्वारा विकसित विधियों के प्रयोग की आवश्यकता होती है।

⇒ इन केन्द्रों पर बच्चों की वैयक्तिक भिन्नताओं का विशेष ध्यान रखा जाता है।

⇒ अधिगम के मापन व मूल्यांकन के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न वस्तुनिष्ठ परीक्षायें, साक्षात्कार व निरीक्षण द्वारा बच्चों की योग्यताओं का मापन व मूल्यांकन किया जा सकता है।

⇒ मनोविज्ञान कहता है कि शिक्षक के व्यवहार व शिक्षण विधियों में सुधार करके अनुशासनहीनता को कम किया जा सकता है।

⇒ मनोविज्ञान के अनुसार बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए पाठ्य–सहगामी क्रियाओं का बहुत महत्व है।

⇒ विद्यालय का वातावरण जैसे– बैठने की व्यवस्था, प्रकाश, वायु, सहायक सामग्री का भी उचित होना आवश्यक है।

NOTE :–

उत्तर प्रदेश में 10 मनोविज्ञान मण्डलीय केन्द्र हैं– लखनऊ, कानपुर, आगरा, झाँसी, मेरठ, मुरादाबाद, बरेली, अयोध्या, गोरखपुर, वाराणसी।

(5) जिला शिक्षा व प्रशिक्षण संस्थान में प्रशिक्षित डाइट (DIET) मेण्टर :–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने जिला स्तर पर अध्यापकों की उन्नति व विकास के लिए जिला स्तर पर एक संस्था को स्थापित करने को कहा जिसे D.I.E.T. कहा गया। इसका उद्देश्य भारतीय शिक्षा के सभी स्तरों पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तरों पर सुधार व उन्नति को बढ़ावा देना है।

D.I.E.T.- District Institute of Education and Training

अक्टूबर, 1987 से DIET की स्थापना होना प्रारम्भ हुआ था। इन संस्थानों का उद्देश्य सभी शैक्षिक कार्यक्रमों को निचले स्तर पर आवश्यक सहयोग प्रदान करना है। जिले के सभी प्राथमिक विद्यालयों, शिक्षकों व निरीक्षकों की आवश्यकताओं व समस्याओं को ध्यान में रखकर उन्हें सहायता प्रदान करता है।

डाइट के विभाग (Departments) :–

⇒ कार्यानुभव विभाग
⇒ सेवापूर्व अध्यापक प्रशिक्षण विभाग
⇒ सेवारत कार्यक्रम, क्षेत्रीय सम्पर्क व प्रवर्तन समन्वय विभाग
⇒ शैक्षिक प्रौद्योगिकी विभाग
⇒ प्रौढ़ शिक्षा व अनौपचारिक शिक्षा विषयक जिला साधन इकाई
⇒ पाठ्यक्रम, सामग्री विकास का मूल्यांकन विभाग
⇒ नियोजन व प्रबन्धन विभाग

डाइट के मानवीय व भौतिक संसाधन :–

डाइट के मानवीय व भौतिक संसाधनों को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) डाइट के अधिकारी व कर्मचारी

(ii) डाइट के भौतिक संसाधन

(i) डाइट के अधिकारी व कर्मचारी :–

डाइट में एक प्राचार्य व एक स्टेनो का पद होता है। इसके अतिरिक्त

(1) सेवापूर्व अध्यापक प्रशिक्षण विभाग :–

⇒ उप प्राचार्य – 1

⇒ प्रवक्ता – 8

⇒ प्रयोगशाला सहायक – 1

(2) कार्यानुभव विभाग :–

⇒ वरिष्ठ प्रवक्ता – 1

⇒ प्रवक्ता – 1

⇒ कार्यानुभव शिक्षक – 1

(3) सेवारत कार्यक्रम, क्षेत्रीय सम्पर्क व प्रवर्तन समन्वय विभाग :–

⇒ वरिष्ठ प्रवक्ता – 1

⇒ प्रवक्ता – 1

⇒ लिपिक – 1

(4) शैक्षिक प्रौद्योगिकी विभाग :–

⇒ वरिष्ठ प्रवक्ता – 1

⇒ प्रवक्ता – 8

⇒ तकनीकी विशेषज्ञ – 1

(5) प्रौढ़ शिक्षा व अनौपचारिक शिक्षा विषयक जिला साधन इकाई :–

⇒ वरिष्ठ प्रवक्ता – 1

⇒ प्रवक्ता – 4

⇒ आशुलिपिक – 1

⇒ लिपिक – 1

(6) पाठ्यक्रम सामग्री विकास व मूल्यांकन विभाग :–

⇒ वरिष्ठ प्रवक्ता – 1

⇒ प्रवक्ता – 1

(7) पुस्तकालय विभाग :–

⇒ पुस्तकालय अध्यक्ष – 1

⇒ लिपिक – 1

(8) प्रशासनिक विभाग :–

⇒ कार्यालय अध्यक्ष – 1

⇒ लेखाकार – 1

⇒ लिपिक – 5

(9) नियोजन व प्रबन्धन विभाग :–

⇒ वरिष्ठ प्रवक्ता – 1

⇒ प्रवक्ता – 1

⇒ सांख्यिकी – 1

इस प्रकार प्रत्येक डाइट में कुल 48 पद हैं।

(ii) डाइट के भौतिक संसाधन :–

⇒ संस्थान के परिवेश का स्वच्छ होना बहुत आवश्यक है।

⇒ डाइट के कर्मचारियों में से कम से कम 50% कर्मचारियों के लिए 1, 2, 3, 4 टाइप के आवास की सुविधा होनी चाहिए।

⇒ डाइट के भवन का क्षेत्रफल 6000 वर्ग फुट होना चाहिए।

⇒ प्रशिक्षण करने वालों के लिए छात्रावास की सुविधा भी जरूरी है।

समुदाय व विकास सहयोगी समितियाँ :–

सरकारी व गैर–सरकारी संगठन (Government and Non-government Organisation) :–

शिक्षा के विकास में कुछ समितियाँ सहयोग करती हैं–

⇒ मिड–डे मिल समिति

⇒ स्वच्छता समिति

⇒ अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र समिति

अधिगम के विभिन्न स्तरों पर निर्देशन व परामर्श का महत्व :–

(1) प्राथमिक स्तर पर (Primary Level) :–

⇒ छात्रों में सहयोग की भावना को विकसित करना

⇒ छात्रों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व संवेगात्मक विकास में सहायता

⇒ समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाना

⇒ छात्रों में उचित दृष्टिकोण विकसित करना।

⇒ उच्च स्तर के लिए छात्रों को तैयार करने में सहायता करना।

(2) माध्यमिक स्तर पर (Secondary Level) :–

⇒ निर्देशन के द्वारा बच्चों की समस्याओं को दूर किया जाता है।

⇒ छात्रों को विषयों का चयन करने में सहायता करना।

⇒ बच्चों की शारीरिक व मानसिक आवश्यकताओं को जानकर उनको परामर्श देना।

⇒ छात्रों को पाठ्य सहगामी क्रियाओं के बारे में निर्देशन व परामर्श देना।

⇒ छात्रों, शिक्षकों व अन्य सहकर्मियों में सहयोग की भावना विकसित करना।

UPTET (SUPERTET) BEST NOTES

Visit Our
YouTube Channel

Download Our App

SACHIN CHOUDHARY